THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

परोपकाराय सतां विभूतयः

श्री

जैन हितबोध.

नैतिक विषयोंसें भरपूर

शांत मूर्ति मुनिराज श्री वृद्धिचंद्रजीके
शिष्याणु मुनि कर्पूरविजयजी विरचित

स्वधर्मी भाइओ व्हेनोंकों पढनेके लीये
श्री सुरत निवासी झवेरी देवचंद लालभाईकी
लडकी व्हेन वीजकोरबाइ तरफसें भेट
हिंदी गिरामे भाषांतर कराके छपाके प्रसिद्ध कर्त्ता

श्री जैन श्रेयस्कर मंडल म्हेसाणा
अमदावाद
श्री सत्यविजय प्रीन्टींग प्रेस–पांचकुवा नवा दरवाजा
संवत् १९६४ सने १९०८ वीर संवत् २४३४

प्रस्तावना.

सरस शांत रसके समुद्र, अत्यंत पवित्र गुणरत्नोंके निधान, और भविक कमलकों प्रबोधनेके वास्ते सूर्य समान अनंत गुणी श्री जिनेश्वरजीकों प्रणाम करके अनंत गुण गंभीर श्रीगौतम गणधरजीका चित्तमें ध्यान धर, और वागदेवी—साक्षात् ज्ञानमूर्ति सरस्वतिजीकों एकाग्र मनसें स्मरण चिंतवन करता हुं; क्यौंकि यथाविधि प्रमाद परिहर कर श्रीमन् महावीर स्वामीजीके साधु साध्वी, श्रावक, श्राविकाओं रुप सर्व प्रजा सदा सुखी होवै उसवास्ते; और दुषम काल आदि विषम संयोगोंकों पाकर चाहिये वैसा सम्यग् ज्ञान विवेकके विरहसें सर्वज्ञ प्रणीत उत्तम नीति रीतिकी गंभीर न्यूनतासें करके आज कल चारों और फैला हुआ अज्ञान रुप अंधकारकों भस्मीभूत करनेके वास्ते; काले मुँहवाले कुसंपादि दुर्गुण चोरोंका आगमन बंध करनेके वास्ते, सम्यग् ज्ञानोद्योत प्रकटानेके वास्ते, सर्व सुखकर सुसंपादि सुगुण रत्न निधान साधनेके वास्ते; समस्त साधर्मीजन एक दूसरेकों योग्य मदद देकर, जगहितकर श्री जिनराजके शासनकी यथा शक्ति उन्नति—प्रभावना कर सकें; पापी प्रमादके परतंत्र रहनेसें भइ हुइ या होती हुइ मलीनता दूर कर सकै; सब संक्लेश दूरकर श्रीवीतराग प्रभुका रागद्वेष मोहरुप दुष्ट दोषोंकों पीस डालनेका सदुपदेश सार्थक कर सकै, यावत् निर्मल अंतःकरणसें सुसंप जंजीर बद्ध होकर एकाग्रतासें स्वपर हितकर मार्गकोंही अवलंबकर रह सकै, वैसी ही हितशिक्षा योग्य जीवोंकों देनेके वास्ते, हर हमेशां प्रयत्नपरायण रह सकै, और

स्वपर हितकारी मार्गकाही सेवन करनेहारे सज्जनोंकी सत्कृतिका सदा अनुमोदन कर सकै, यानि उसकों लेशमात्र निंदे नहीं, ईर्ष्या या अदेखाइ जरासी भी करै नहीं, किंतु सुकृत्यकी ही वृद्धि हो सकै वैसी अंतःकरणसें दरकार रखकर-वचनद्वारा वैसा ही बोलकर और शरीरकों भी उसी प्रकार प्रवर्त्ता सकै वैसी भव्यजनों की तर्फ यथामति प्रेरण करनेके वास्ते, और सहज ही वैसी शुभ प्रवृत्ति करनेहारे प्यारे भाइ और भगिनियोकों स्वपर हितकारी मार्गमें निःस्वार्थतासें स्वार्थ भोग देकर निर्भयता और निश्चलतासें विशेष प्रकारसें उमदा शुद्ध प्रवृत्ति करानेके वास्ते, अपने आसन्नोपकारी चरम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीजीका उत्तमोत्तम चरित्र ग्रहण करना-एकाग्रपनेसें विचार लेना सो बहुत उपयोगी है, ऐसा निश्चय करकें प्रसंगोपात संक्षेपसे प्रभुका सद्वर्त्तन वर्णन कर निर्वाण कल्याणक सह अपने आपका प्रभुकी प्रजा-पुत्र पुत्री समानका कया कया कर्त्तव्य है, उनका संक्षेपसे बयान देकर सहज आत्म प्रेरणासे इस ग्रंथका उपक्रम-आरंभ किया है. उनमेंसें राजहंसकी तरह गुण मात्रकोंही ग्रहण करकें सन्मार्गका सेवन कर सज्जन सदा सुखी होवें यही आंतरिक इच्छा है. सो सफल हो! और जगजयवंत श्री जिनशासनकी शोभा दिनप्रतिदिन वृद्धिगत हो! तथा शुद्धाशयसें जिनाज्ञाकों आराधकर समस्त जैनवर्ग जय कमलाके स्वामी हो!! उक्त आशिर्वाद पूर्वक प्रस्तुत ग्रंथकी प्रस्तावना द्वारा तद् अंतर्गत विषय-संबंधमें दो शब्द कहता हुं:-

'यथाशक्ति यतनीयं शुभे'-शुभकार्यमें यथाशक्ति यत्न करना. इस महा वाक्यानुसार चलकर तात्विक सुखके अर्थिजनकों स्व शक्ति मुजब स्व-पर हित साधनेके वास्ते जरुर दरकार रखनी

ही मुनाशिव है. परमार्थ बुद्धिसें भव्यजीवोंको स्वहित साध्य करलेनेके लिये युक्तिके साथ प्रेरणा करनी उनके जैसा एक भी परोपकार नही है. वैसा परोपकार वस्तुतः स्वार्थ रूप ही होनेसें हरएक सार्थक-सच्चे जैनोंने अन्यजैनोंको शुद्ध जैन तत्त्व समझानेके वास्ते बन सकै उतना प्रयत्न करना जरूरतका है. इस प्रकारका यत्न स्वपर हितकी वृद्धि सहित पवित्र जैन शासनकी उन्नति सिद्ध करनेके लिये प्रबल कारणभूत माना जाता है. चरम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीने परिपूर्ण ज्ञानद्वारा पूर्व तीर्थंकरोंकी तरह वस्तु तत्त्व यथार्थ जानकर, प्ररूपकर अनेक भव्य जनोंके अज्ञान अंधकारका साक्षात् छेद नाश किया है, इतनाही नहीं मगर महा मंगलमय ज्ञान प्रकाश पवित्र द्वादशांगी द्वारा वसुधातलपर भव्यजनोंके कल्याण निमित्त फैलाकर आखिर अविनाशि अचल सिद्धि स्थानमें निवास किया. जैसें अंधे मनुष्यको करोडों दीपक भी उपकार नहीं कर सकता है, तैसे कदाग्रहसें ग्रसित हुवे मिथ्यादृष्टि अंध जनोंको उक्त पवित्र ज्ञान प्रकाश उपकार नहीं कर सकता है; परंतु सरल बुद्धि आत्मरुचि सज्जनोंको वो महान् उपकार कर सकता है. ऐसा समझकर पहिले सामान्य रीतिसें श्रीमहावीरजीके निर्वाणका बयान कथनकर पीछे अपने कर्तव्य तर्फ भव्य सत्वोंका लक्ष्य खींचा गया है. बाद विविध प्रकरणोंका सार ग्रहण कर ' सार बोल संग्रह ' और धर्मकल्पवृक्ष यथामति तैयार किया गया है. उसके बाद नाम मुवाफिक गुणधारक ' उपदेश रत्नकोश " प्रकरणका बहुत करके बाल जीवोंको भी समझ लैना सुलभ हो पडे वैसी सरल भाषामें सद् उपदेश सार नामक विवरण सामान्य रीतिसें करनेमें आया है. ये विषय जैन बालकोंको नीतियुक्त सामान्य धर्म बोध देनेमें खास उपयोगी हो

पडे वैसा है. अपने खास कर्त्तव्यमें अपनकों शिथिल करनेहारे या भूल खिलाकर उलटे मार्गपर चढानेहारे पांच कट्ट दुश्मन जैसें पांच प्रमादका परिहार करनेके वास्ते ' प्रमाद पंचक परिहारमें ' जगह जगह महात्माओंके वाक्योंसें समर्थन करकें बने यहां तक समझ देनेमें आइ है. पद शांत रस युक्त साथ प्रसंगोपात बंध बैठते होनेसें रसज्ञकों उक्त विषय अच्छी असर कर सकै वैसा है. जैनोंकी पूर्वस्थितिके साथ मुकाबला करनेसें अपनी इस वख्तकी स्थिति बहुतही दयामय मालुम होती है. कुसंप, सत्यज्ञानकी गंभीर न्यूनता, ज्ञानका घटित उपयोग करनेकी न्यूनता, लक्ष्मीकों तावे करनेके वास्ते साधनभूत प्रमाणिकतादिकका होता हुवा अनादर, और नीति रीति धर्मशिक्षणमें गंभीर न्युनता वगैरः इनके नजर आते हुवे सबब हैं, उन बाबतमें सामान्य रीतिसें जैन वर्गकों यथामति अति अगत्यकी सुचनाएं करनेमें आइ है यानि इत्तला दीगइ है. उमीद है कि-यदि बुद्धिवलसें मनन पूर्वक उनद्वारा योग्य कदम भरनेमें आयेंगे, तो अपन तुरंत कुछ अच्छे सुधारेकों दाखिल कर सकेंगे. आखिरमें उज्वल गोहरके लरकी समान अमूल्य और बहुत उपयोगी 'सार शिक्षा संग्रह' दाखल करनेमें आया है, और उसीके अंत विभागमें आत्माके अलग अलग प्रकार, उच्च स्थिति पानेका अनुकूल मार्ग और परमात्मपद वगैरः बाबतोंका समावेश करनेमें आया है; तदपि मति मंदतादिकसें कुछभी उत्सुत्र लीखा गया होवै उसकी माफी मंगकर सुधार लेनेकी सुहृदयोंकों नम्र प्रार्थना है.

इत्यलं श्री शांतिः

मुनि गुणमकरंदाभिलाषी.

कर्पूरविजय.

भूमिका.

प्रिय धर्म बंन्धु और भगिनियें ! श्री वीतराग परमात्माके अनूपम प्रभाव कृपा और हित बुद्धिसें कथन किये हुवे धर्म रहस्य के महात्म्यसें इहलोक परलोककी स्वार्थ परार्थ कार्य सिद्धिके अनन्य साधारण साधन होने परभी सांप्रत समयमें तत् तत् साधनोके सदुपयोगके अभावसें करकें भव्य प्राणीयोंके कर्णपुटमें ज्ञानामृत सिंचनेहारेकी न्युनता होनेसें, दिन प्रतिदिन ज्ञान, धर्म और नयादिकका नाश होता हुआ नजर आता है, वह वीरपुत्रोंको और उसमें भी ज्यादे करकें वीर शिष्योंको अल्प शोच्च नहीं है. पूर्वकालमें मुनिवर्य, लिखित ग्रंथादिक चाहिये उतने साधन रहित होने परभी विद्याभ्यास करने करानेके उपरांत धर्म रहस्यके तत्त्व रुपांतरमें रचनेके साथ नियमित विहार करकें अनेक मिथ्यात्वियोंको भी उपदेश द्वारा सद्धर्म प्रापक होकर वीरांतेवासित्वका साफल्य कर शास्त्रोन्नतिमें एकांत जय मिलातेथे जब आगे ऐसाथा तब आधुनिक वख्तमें पूर्वोक्त मुनिवर्योंके उपदेशको समयानुसार अनुकरण करनेहारे वीर शिष्योंके दर्शन करनेमें भी साधर्मीजन हो भाग्यवान् नहीं होते है, तो सुक्ति सुधारसकी पिपासा या अन्य प्रतिबोधकी आशा—उमेद कहांसें रहने ही पावे ?

तदपि अभी कितनेक मुनिराज दुर्गम अज्ञानी देशमे विचर करकें स्वकर्त्तव्य बजाकर धर्माभिमानीओंको पुनः ज्ञानामृतमें रसिक बनानेके लिये उत्सुक हो रहे हैं, या हुवे हैं, उसके साथ हरएक धर्माभिलाषीको ज्ञाता मुनिराजोंकी सूक्तिका संगीन लाभ

देनेके वास्ते मातृभाषामें शास्त्र तत्वोंके नवीन सरल लेख या भाषांतरोंकी भी आवश्यकता बहुत उपयोगी समजते हैं वैसा मालुम होता है; जिससें कितनेक साधारन चरित्रादिके भाषांतर या नवीन लेख दृष्टिगोचर होने लगे हैं, उसी तरह परमकृपालु परमपूज्य मुनिवर्य कर्पूरविजयजी महाराजने भी पूर्वोक्त शुभ आशयसें श्रम लेकर अपनी अमृत दृष्टिका 'जैन हितबोध' रुपी जो प्रथम कटाक्ष फैलाया है, सो भव्यजीवोंको अधिकाधिक बोधदायी है. जिनका लाभ लेकर भव्यजीव अज्ञान विषका नाश करनेके वास्ते अधिकारी बनेंगे ऐसी पूर्ण प्रतीति है.

यह जैन हितबोध ग्रंथमें कितना गांभिर्य, और तत्त्व रहस्य है? उसका वर्णन हम प्रसिद्धकर्त्ता ग्रंथ गौरव भयसें विराम पाकर हमारे सुज्ञ साधर्मी पुरुषोंको जाननेके वास्ते भलामन करेंगे 'ज्यों ज्यों इस ग्रंथका पुनः पुनः मनन होवगा, त्यों त्यों उनमेंसें अपूर्वापूर्व आस्वाद आये बिगर रहेगा ही नहीं' ऐसा हमारा अनुभव अतिशयोक्तिमें नहीं गिना जायगा.

इस ग्रंथमें धार्मीक विषयोके उपरांत अपने जैन बंधुओकी नीति रीति सुधर सके ऐसा विषयोंका प्रथन कीया गया है. और जैन पाठशालामें पठनेवाले लडकें लडकीयेंको नैतिक बोध देने लायक यह ग्रंथ बहुत उत्तम हैं. और एसी निष्पक्षपात वृत्तिसें लीखा गया है की अन्य मतावलंबीयोंभी बहुत आदर, हर्षसें इस ग्रंथका लाभ लेते है. और श्रीमंत सरकार गायकवाड महाराजाके केलवणी खातेकी स्कुलोमें इस ग्रंथ इनाम और लायब्रेरी खातेमें मंजुर कीये गया है. यह बावत ग्रंथकी उपयोगीताको प्रकट करती है.

प्रस्तुत ग्रंथकी पहिली आवृत्ति परम पूज्य स्थल पालितानामें जैन धर्म विद्या प्रसारक वर्गकी तरफसें छपवानेमें आइथी लेकीन एसे ग्रंथ रत्नोंकी विषेश उपयोगीता मालूम होनेसें पुर्वोक्त मुनिराजजीको नम्र विज्ञप्ति करनेके साथ वै कृपालु मुनिश्रीने दूसरी आवृत्ति छपवानेकी आज्ञा दी. जिससें दुसरी एडीसन हमारी तर्फसें प्रसिद्ध की गइ जीसमें जैन धर्म प्रकाश और आत्मानंद प्रकाश मासिकमेंसे उक्त मुनिश्रीका पृथक्‌ पृथक्‌ लेख भी उन्हीकी आज्ञा लेकर इसमें दाखिल किये गये. फीरभी उस ग्रंथकी ज्यादे जरुरत होनेसें तीसरी एडीसनभी प्रसिद्ध करनेमें आइ उस आवृत्तिमें विषयानुक्रम के फारफेर करनेका योग्य लगनेसें योग्य क्रम रचा गया है. और असल फकीरी नामक विषयमें आत्मानंद प्रकाशका उक्त विषय संधान कर दीया. इस तरह गुर्जर गिराकी तीन आवृति होनेपरभी हिंदी भाषा जाननेवालोंकी उमेद पूर्ण न हुइ वास्ते कवि पूर्णचंद्र शर्मा द्वारा उसीका हिंदी तरजुमा करवाके हमने प्रसिद्ध कीया है. सो इस ग्रंथका लाभ लेकर लेखकका और हमारा परिश्रमको भव्य सत्वों सफल करें और स्वकर्तव्यपरायण होवै ऐसी आंतर इच्छा रखते है! पूज्य मुनिश्रीका प्रयासके वास्ते इन महात्माका शुद्धांतःकरणसें हम अत्यंत आभार मानते हैं.

इस ग्रंथको मुद्रित करवानेके लिये द्रव्यकी सहाय देनेहारे धर्मानुरागी सद्‌गृहस्थोंका आभार माननेके साथ ऐसे सन्मार्गमें सद्‌द्रव्यका व्यय अनेकशः हो ऐसा ही हरदम चाहते हैं! अस्तुः

प्रसिद्ध कर्त्ता.

"शुद्धि पत्रिका."

पृष्ठ	लीटी	अशुद्ध	शुद्ध
६	२१	लज्जा रपद	लज्जास्पद
७	१८	शोक करनेकी	शोक करने लायक यह बातहैकी धर्म कार्य उ-कों तप्तत्रपू जैसा लगता है और मानपान करनेकी
१०	८	और	
"	"	पूत्र	पूत्र और आनन्द काम-देवतुल्य सुश्रावक स-मुदाय छोटे पुत्र
१०	२०	भव्यजन	भव्यजनही
१८	२१	चनेके	चलके
१९	३	परम	परमकृपालु
२१	४	मिलाता	मिलता
२४	१०	हुवेले	हुवेले भव्य
२९	३	शासनको	शासनकी
३२	१०	स्वछंता	स्वछंदता
५३	१९	मनुष्य	मनुष्यने
५४	२	नहि. देना	नहि देना.
५४	८	सुज्ञजन	सुज्ञजन

६८	१७	दुःखदाहि	दुःखकाहि
८०	२०	वेवकूफी	वेवकुफीकी
८२	२	मेरे	मेरीहि
८६	१५	मज्ज	मज्जं
८६	१६	संसार	संसारे
९९	८	राजकथा	राजकथा, देश कथा,
१०३	८	दूकर	कूकर
१०५	२	मुकये	मुंडये
१०८	१३	तरक्ो	तरकी
१०८	१६	विराध	विराधन
१०९	७	वापण	भापण
११०	१८	संसार	संहार
१२२	७	उठते	उठाते
१२६	२	और	और कितनेक
१३९	१०	भिन	भि न
१४२	१०	साधानों	साधनो
१४६	९	ही	हीउद्यम करना
१५२	१५	करनी चाहिये	करनी
१६०	१४	क्षणभर	क्षणभरमें
१६१	१३	सधावार	संघोवारि
१६३	१०	छूकाकर	छूपाकर
१६८	२१	आर	और

१६८	८	परानदा	परनिन्दा
१७६	१८	जग	जगह
१८८	८	Seif	self
१९६	११	तीर्थ, भूत	तीर्थभूत
२०५	९	तीर्थोका	तीर्थोकी
२१०	१९	बहुसे	बहुतसे
२१२	१६	ज्ञाननी	ज्ञानी
२१२	१९	वसे	वैसे
२१४	३	कंठित	कुंठित
२१४	२०	देवद्रव्यसे	ज्ञानद्रव्यसे
२१६	८	सुस्वामी	सस्वामी
२१७	५	आर	और
२१८	४	झुठा	झुठी
२१९	१	मुवाकीक	मुवाफिक
२२१	१६	Seifishnes	Selfishness.
२२२	१३	श्रावकजन	श्रावकजनसें
२३४	१८	नरससे	नरसेमें
२३५	२०	खाबिर	खातिर
२३७	१७	ने	न
२४४	१०	याग्य	योग्य
२४४	१६	अन्दरको	अन्दरका
२५१	२१	सुधारा	सुधारा

२५७	१६	असा	ऐसा
२५८	४	आर	और
,,	१६	विषय	विषम
२१६	८	फरवाले	करनेवाले
२६३	१०	मर्तगज	मत्तंगज
२६७	२	विचार	विचारमुजब
२६९	५	जागत	जाग्रत
२७२	२	अवध	अवधु
२७२	१९	संतज नहि	संत जनहि
२७६	१४	विषय	विषम

अनुक्रमणिका.

१ श्री वीर प्रभुका निर्वान और अपना कर्तव्य १
५ सार बोल संग्रह ३६
३ सदुपदेश सार ४२
४ प्रमाद पञ्चक परिहार ८६
५ सामान्य हितशिक्षा १०६
६ श्रावक नामसें पहिचान्नेमें आते हुवे जैनोंकी
अमल करने लायक फर्ज या श्रावक धर्मकी
पद्धति–प्रणालीका ११५
७ विविध विषय संग्रह १७२
८ श्री तीर्थ यात्रा दिग् दर्शन १९१
९ सद्भावना १०५
१० देव द्रव्य ज्ञान द्रव्य और साधारण
द्रव्य संबंधी विचार २११
११ श्री जैन श्वेताम्बर वर्गके पूज्य मुनीराज
तथा विवेकी श्रावकोंको अति अगत्यकी सूचनाऐं २२०
१२ जैन श्वेताम्बर मुमुक्षु वर्गको नम्र विज्ञप्ति २४७
१३ असल फकीरी २६९
१४ कवि शुभचंद्रजी विरचित ज्ञानार्णवांतर्गत
सवीर्य ध्यानका सारांश २८२
१५ सार शिक्षा संग्रह २८९
१६ हिरप्रश्न और शेन प्रश्न उद्धरित सार ३०३
१७ पंच परमेष्ठि जाप यंत्र ३१२

अथ मंगळाचरणम्.

(श्री वीर सद्भाव स्तुति)

वीर जीनेश्वर साहिब सुणज्यो, अरज करुं छुं जग धणीरे. ए टेक.
दया वारिथी[1] स्नान करीने, संतोष चिवर[2] धारियेरे;
विवेक तिलक अति चंग[3] करीने, भावना पावन[4] आशयेरे. वीर. १
भक्ति केसर कीच[5] करीने, श्रद्धा चंदन मेळीएरे;
सुगंधी[6] सद् द्रव्य मेळीने, नव ब्रह्मांग[7] जिन अर्चीएरे. वीर. २
क्षमा सुगंधि सुमन सदामे,[8] दुविध धर्म क्षौम[9] युगवरेरे;
ध्यान अभिनव[10] भुषण सारें, अर्ची अमे घणुं हर्षियेरे. वीर. ३
आठे मदना त्याग करण रुप, अष्ट मंगळआगें थापीएरे;
ज्ञान हुताशन[11] जनित शुभाशय, कृष्णागुरु[12] उखेवीएरे. वीर. ४
शुद्ध अध्यात्म ज्ञान वह्निथी,[13] माग् धर्म[14] लवण उतारीएरे;
योग सुवर्त्युल्लास करंता, नीराजना[15] विधि पूरीएरे. वीर. ५
आतम अनुभव ज्ञान स्वरुपी, मंगल दीप प्रजालीएरे;
योग त्रिक शुभ नृत्य करंता, सहज रत्नत्रयी[16] पामीएरे. वीर. ६

१ जल, २ वस्त्र ३ मनोहर, ४ पवित्र ५ रस, घोळ ६ उत्तम ७ ब्रह्मचर्य रुप ८ पुष्पमाळा. ९ वस्त्र युगल १० अपूर्व ११ अग्नि १२ उत्तम धूप १३ अग्नि १३ पूर्वके अशुद्ध धर्म १५ आरती. १८ मन वचन और कायानी सत्प्रवृत्ति १६ सम्यग् दर्शन, ज्ञान और चारित्र;

सत्पयायि[1] सुघोषा[2] बजावी, रोमरोम उल्लासीएरे,
भाव पूजा लयलीन होवंता, अचल महोदय पामीएरे. वीर. ७
भाव पूजा अभेद उपासक[3], साधु निर्ग्रंथे अंगीकरीरे,
द्रव्य पूजा भेद उपासक गृह–मेधीने[4] नित्य वरीरे. वीर. ८
द्रव्य शुद्धि भाव शुद्धि कारण, जिन आज्ञा[5] अविधारीएरे,
ध्याता ध्येय ध्यानरुप एके, अजर अमर पद पामीएरे. वीर० ९
सालंबन निरालंबन भेदे, ध्यान हुताश जलावीएरे,
कंचनोपलने[6] न्याये, करीने, चैतन्यता[7] अजवालीएरे. वीर. १०
कर्म कठीन धन नाश करीने, पुर्णानंदता पामीएरे,
रमतां नित्य अनंत चतुष्के[8] विजय लीला नित्य जामीएरे. वीर. ११

१ सरस शांति सुधारस सागरं,
शुचितरं गुणरत्न महागरं;
भविक पंकज बोध दिवाकरं,
प्रतिदिनं प्रणमामि जिनेश्वरं.

२ अद्याऽभवत् सफलता नयन द्वयस्य,
देवत्वदीय चरणांबुज वीक्षणेन;
अद्य त्रिलोक तिलक प्रतिभासते मे,
संसार वारिधिरियं चुलुक प्रमाणः

३ प्रशम रस निमग्नं दृष्टि युग्मं प्रसन्नं,
वदन कमल मंकः कामिनी संग शून्यः
कर युगमपि यत्ते शस्त्र संबंध वंध्यं,
तदसि जगति देवो वीतराग स्त्वमेव.

१ उत्तम परिणाम. २ घंटा. ३ सेवक–आराधना करनेवाला. ४ गृहस्थ, श्रावक. ५ फरमान. ६ सुवर्ण और मीट्टीका द्रष्टांतसें. ७ आत्मस्वरुप. ८ अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य.

श्री विश्वेशंवन्दे !

विविध जैनतत्त्व विचारमय

जैन हितबोध.

(हिन्दी-भाषानुवाद समलंकृतः)

वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण.

(दोहरा-छंद.)

अज अनादि अव्यक्त प्रभु, चिदानंद चिद्रूप;
जिन्हके चरनसरोजमैं, नमत सदा सुरभूप. १

तिन्हको सुमिरन करि लिखुं, हिंदि " जैन हितबोध; "
पढियें पाठक नित प्रति, तजि मततत्व विरोध. २

सार सार सब संग्रहो, तजिकें दोष तमाम;
लीजें परमानंदमें, अनुभौ सुख अभिराम. ३

श्री वीर प्रभुका निर्वान और अपना कर्त्तव्य.

देवेन्द्र, नरेन्द्र और योगीन्द्रोंके परमपूज्य चरम तीर्थंकर श्री मन् वीराधिवीर महावीर प्रभुजीने उत्कृष्ट योग और तपके बलमें

घाती कर्मका संपूर्ण क्षय करके अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र और अनंत वीर्यरुप अनंत चतुष्टय संप्राप्तकरके-प्रकट करिके स्वर्ग मृत्यु पातालके हित निमित्त देवोंके बनाये हुवे समवसरणके बीच सुस्थापित पंचम प्रातिहार्य्य सिंहासनपर बिराजमान होकर बारह पर्षदाकी मध्यमैं अमृतमय-मधुर देशनाजल वर्षाकर भव्य समूह क्षेत्रकों सुरसमय बनाकर सम्यक्‌दर्शन-बोध बोधबीजकों अंकुरित किया. और इंद्रभूति वगैरः गनधरजीकों त्रिपदी देकर साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकारुप चतुर्विध श्री संघ (तीर्थ) की स्थापना की, उसी वक्तसें इस भारत भूमिमैं जाहोजलालीके साथ जैन शासन ज्यादे तौर पर विजयवंत हो प्रवर्त्तने लगा और प्रभु-जीके परम पावन गुणों-अतिशयोंसें सर्वत्र शान्ति फैलाने लगी. प्रभुजीके परम पुनित अमृत वचन श्रवन करकें प्राणि मात्र करुणा बुद्धिके साथ उत्तम प्रकारकी मैत्री, मुदिता और मध्यस्थता धारन करनेवाले हुवे. अविवेक, अनीति, अन्याय या असत्यका मार्ग त्यागन करिकें विवेक पूर्वक नीति न्याय या सत्य मार्गका अवलंबन करनेवाले हुवे. साधर्मीजनोके साथ परम प्रमोद भाव धरनेवाले हुवे. प्रतिज्ञा करनेमै दक्ष हो ग्रहित प्रतिज्ञाकों प्राणकी तरह पालने लगे. शील-ब्रह्मचर्यकोंही सच्चा भूषण या अलंकार, विवेककोंही सच्चे लोचन, और सत्यभाषणकोंही मुखमंडन मानने लगे. उत्तम आचार और उत्तम विचारोंमैं कुशल तथा अप्रमादी हुवे. संत सुसाधुजनोंके दास बने हुवे रहने लगे. मन और इन्द्रियोंका यथायोग्य

निग्रह करने लगे. कषाय तापकों दूर करनेके लिये श्री सर्वज्ञ भाषित उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, और संतोषका सेवन करने लगे. मदिरादिक दुष्ट व्यसनोंका बिल्कुल त्याग करनेमें कटिबद्ध हो रहे. विषय रसकों विषवत् गिनने लगे. निद्राकों वैरिणी मानने लगे. और स्त्री विकथादिकों हालाहल-झहर समान निंदने लगे. स्वल्पमें प्रमाद मात्रोंकों कट्टे दुश्मन जैसे मानकर उनसें विराम पाए. समस्त जीवोंकों आत्म सादृश गिनकर उन्होंका संरक्षण करनेके वास्ते तत्पर हुवे. किसी जीवकों क्लेश न हो वैसा हित मित भाषन करने लगे. परद्रव्य और परदारा तर्फ जालांजली देने लगे-यानि पराये धन-द्रव्यकों धूलके ढेले या लोष्टवत् निर्माल्य गिनने लगे और पराइ स्त्रीकों काली नागन समान जानकर उनसें दूर रहने लगे. श्री सर्वज्ञ प्रभुजीकी आज्ञाकों शेषावत् मस्तकपर धारन करने लगे. अर्थकों अनर्थ मूल जानकर उनका सप्तक्षेत्रादिमें यथा अवसर विवेकसें व्यय करने-खर्चने लगे. दीन दुःखीजनोंकी भीर भांगनेकों तत्पर हुवे, सीदाते-दुःखपाते हुवे साधर्मी भाइयोंकों भक्तिभरसें उद्धरनेके लिये तन मन धनका सदुपयोग आदरने लगे. अपने साधर्मीजनोंकी उन्नति होनेमें अपनी ही उन्नति मानने लगे. अपने साधर्मीभाइयोंकी न्यूनता सहन न हो सकनेसें उनकों अपने बरोबर करनेके लिये बन सके उतनी कोशिश करने लगे. स्वधर्मी भाइयोंकी आधिक्यता देखकर अंतःकरणसें खुशीभी होने लगे. राग द्वेषका विवेकसें विजय करनेकों, श्री वितराग देवकी साक्षात् शान्त रस-

दायी—शान्तरसमय मोहक मुद्राकी; तथा सिद्धांत—आगम वानीकी परम भक्ति भावसें सेवा उपासना करने लगे, क्लेशकों तो दारिद्र्यका मंदिर जानकर उसका केवल परिहार करने लगे, झुँठा कलंक, चुगलीखोराइ और अवर्णवाद—बुराइ—वदी करनी इन्होंकों अन्यायरुप समझकर इन्होंसें तदन अलग हो जानेमेंही यत्नवान् हुवे. सुख और दुःखके वख्त समभावसें पवित्र नियम धुराकों अडगतासें धारन करके स्वजैनता सार्थक करने लगे. माया—मृषा, बोलना कुछ और करना कुछ उनकों तो छौंकारे हुवे झहरके समान गिनकर तजवीजसें परिहरने लगे, और मिथ्यात्वकों तो परमशल्य, परमरोग तथा परम विषके समान जानकर उनका स्पर्श भी नहीं करतेथे, ऐसी वहुतही कल्याणकारक उमदा नीतिकों अवलंवकरे सुश्रावक वर्ग प्रवर्त्तता हुवा, और सुसाधु वर्ग तो महाव्रत रुप महान् प्रतिज्ञाओंकों सद्विवेकसें ग्रहण करके सिंहकिशोरकी तरह वहादुरीसें पालन कर सर्वज्ञ पुत्रका उत्तम विरुद सार्थक करते हुवे सफरी जहाज मुवाफिक यह संसारसमुद्रकों सरलतासें आप खुद तिरतेथे और अपने आश्रितोंकोंभी यानि साधु श्रावकोंकों भी सुख पूर्वक तिरासकते थे. और परोपकारकों अपना पवित्र स्वार्थरुपही गिनते थे.

ऐसी परम उदार सर्वज्ञ नीतिका सम्यक् सेवन करते हुवे साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकारुप जंगमतीर्थ अपने समागममैं आते हुवे भव्यजीवोंकों सदुपदेश जलसें सिंचन कर—पावन करकें श्री

जिनशासनकी शोभा–महात्म्य बढाकर शासन–प्रभावनारूप परम लाभको पातेथे. यह तमाम प्रभाव धर्मचक्रवर्ती श्री जिनेश्वर देवकाही गिना जाता है. क्रमशः वीर परमात्मा भूमिपर प्रतिबंध–हरकत विगर विचर कर, अनंत भव्यसत्वोंका उद्धार कर, आपके बाकी रहे हुवे अघाती कर्मोंका क्षय करके पंचमी गति मोक्षमे सिधार गये और अक्षय, अनंत, अव्याबाध, अपुनर्भव, शिवसंपत्तिके स्वामी हुवे.

परमसिद्ध निरंजन हो लोकाग्र स्थिति भजकर परम निवृत्ति सुख पाए. इसका नाम निर्वाण–कल्याणक कहाता है. जब चरम तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी निर्वाण प्राप्त हुवे तब देवेंद्रादिकोंका आसन चलित होनेसें निर्वाण ज्ञात होतेही शोक सहित निर्वाण स्थल आकर अपना अपना उचित कृत्य कर कर, भाव उद्योत भगवंतका विरह होनेसें द्रव्य उद्योत किया यानि दीपालिका प्रकट की. उसी दिन उसी सबबसें लोगोंमे भी सब जगहँ मंगलकर दीवाली पर्व जाहिर हुवा. परमात्माश्रीने अंतमै सोलह प्रहरकी भव्यप्राणीओंकों अखंड देशना दीथी, जिसमें पुण्य पाप फल विपाकका स्वरुप प्रतिपादन किया था. दूसरेभी विगर पूँछे अनेक अध्ययन कहकर, जन्म मरणके कुल बंधनोंकों छोड प्रभु सर्वोत्कृष्ट मोक्षसुख पाए. वैसे उत्तम सुख प्राप्त होनेके वास्ते उत्कृष्ट भावसें जो भव्य प्राणी दीवाली पर्वके दिन छट्ठ अट्ठमादिक तप कर विधवत् श्रीवीरप्रभुका ध्यान धरते है वे भी परिणाम विशुद्धिसें

भवदुःखका अंत लाकर श्री गौतमस्वामीजीकी तरह-निर्मल अध्यवसाय योगसें शुक्ल ध्यानका महान् लाभ प्राप्तकर, समस्त घाती कर्मोंकों क्षयकर केवलज्ञान पाकर, परम महोदय—मोक्षपदका स्वामी होते हैं. श्रीगौतमस्वामीजीके पवित्र दृष्टांतसेंही सिद्ध होता है कि प्राणी मात्रकों अंतमैं अपना कल्याण साधनेके वास्ते सद्विवेक धारन किये विगर छुटकाही नहीं है. जो भव्यसत्व जन—सामग्री विद्यमान होंने पर सद्विवेक धारन करकें उसका लाभ लेता है उनका तो जन्मही सफल है; किन्तु जो मोहग्रसित मूढ मनुष्य ऐसी मुस्केलीसें मिलनेवाली सामग्री प्राप्त होने परभी उनकों निकमी गुमाते हैं वे पामर प्राणीओंकों पीछेसें अवश्य पिस्ताना पडता है. ऐसा समझकर शाहाने मनुष्योंने सद्विवेक सजनेके वास्ते और अविवेक तजनेके वास्ते जितना वन सकै उतना प्रयत्न करनाही उपयुक्त है.

सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा श्री वीरप्रभुके अपन सब सेवक कहे जाते है; तो भी अपन परम उपकारी पिता समान श्रीमहावीर स्वामी प्रभुजीकी पवित्र आज्ञा—मर्यादा उल्लंघन कर स्वच्छंदपनेसें अपनी मोज मुजव अच्छे मार्गकों छोडकर उन्मार्ग भजें वो क्या अपनकों थोडी शरम पेदा करनेवाला प्रकार है ? अपने सगे भाइसेंभी आले दर्जेके अधिक प्रेमपात्र अपने साधर्मीभाइयोंके साथ भेदभाव यानि जुदाइ रखकर कुसंप करै वो भी कम लज्जा स्पद है ? अपन साधर्मीभाइयोंके साथकी श्री सर्वज्ञ-

कथित साधर्मीवात्सल्यताकी उत्तम नीति रीतिकों छोड अपनी मरजी मुजब संत साधुजन धिःकार के निकाल देवै. वैसी बेढंगभरी नीति ग्रहण कर मदोन्मत्ततासें हितवचनरुप अंकुशकोंभी हिसावमै न गिनै वो कैसा निंदापात्र और दुःखजनक गिना जावै? द्रव्य और भावसें दुःखपाते हुवे साधर्मी भाइयोंकों अपनी शक्तिके अनुसार मदद देनेकी अपनी पवित्र फर्ज विसर कर, उनके हृदय भेदक दुःखोंके स्हामने टगमगाकर देखाही करे, और दूसरे यश कीर्तिकी खातिर अनेक लखलूट—उडाउ खर्चकी अंदर पैसेका गैर उपयोग कर उपर वतलाये हुवे दुःखग्रसित साधर्मियोंका संगीन आश्रयमै भाग लेनेकी सच्ची तक के वक्त निर्माल्य वहाने निकाल उलटा मुँह फिरा लेवै वो कैसा और कितनी लज्जा पैदा करनेवाली तथा हँसने योग्य वार्त्ता है ? वडेखां कहलवाकर औरत, वाग—वगीचे और वग्गी—फैटिनमै वेसुमार पैसा वरवाद करनेसें नहीं डरता है; लेकिन अच्छे धर्मक्षेत्रकी अंदर शुभ परिणामसें निःस्वार्थके साथ सद्द्रव्यका सदुपयोग करनेमै संकुचित मन करनेवाले विवेक विकल जनोंकों किस वस्तुकी उपमा देवैं वो भी शोचने जैसा है! अलवत परभवका साधन करनेमै पीछे हठनेवाले जन किसी शुभ—अच्छी उपमाके लायक तो हो सकते ही नहीं. इनसे भी ज्यादे शोक करनेकी खातिर अपने सर्वस्व धनकों भी था होम करनेकों तैयार होते है. ऐसे स्वच्छंदी जनोंका अस्तित्व जगतमै केवल भारभूत ही माना जाता है. मिली हुइ दौलत जव अंतमै ऐसे विवेक विक-

लोकों त्याग करके चली जाती है, तब वै अज्ञजन आंख मसल कर रोतेही रहते हैं, और स्वच्छंदपनेसें चलनेके प्रायश्चित मुवाफिक पश्चात्ताप करनेकी अंदर बाकी मै रहा हुवा आयुष पूर्ण कर यमराजाके महेमान होते हैं. तथा स्वच्छंदपनेके सचे फलकी परीक्षा तो वहां ही होती है. और बुद्धिबल पाने परभी उसका सदुपयोगके बदलेमै गैर उपयोग करे उसिके वेसे ही बेहाल होते हैं. वास्ते तत्त्वातत्त्व बिचार करिके अतत्त्व छोडकर तत्त्व ग्रहण करना यही अकलमंद पुरुषोंका कर्तव्य–जीवनसार्थक है; तो भी कितनेक जन अनेक कुतर्क, छल प्रपंचकी रचना करकें भोलेभाले जीवोंकों वाग्जालमै या मोहजालमै फँसाकर अपने और दूसरेकों अनर्थ प्राप्ति कराते हुवे अनेक दुराचारीजनोंकों अपन प्रत्यक्ष अपनी आंखोंसें ही देखते हैं. अैसे अनाचार या दुराचारकों सेवन करनेवालोंकी बुद्धि ही उन्हीके और दूसरोंके द्रव्य और भाव प्राण हरनेके लिये जबरदस्त शस्त्र रूप ही होती है. वैसी नीच बुद्धि धारन करनेसें अपने आपकों और दूसरोंकों भी अनेकशः अधोगतिका ही कारण बनता है; तदपि दुर्जन अपना स्वभाव नही छोड देते है वो प्रत्यक्ष हानिकारक ही है.

अैसा समझकर सज्जन अपनी सुबुद्धिका बन सकै वहां तक सदुपयोग करनेकी तक हाथसें कभी नही गुमाते है. शुभ आशयवाले सज्जन दुर्जनोंकी तरह कबी भी निर्दय परिणामी हो कर जीवहिंसा नही करते हैं, असत्य नही बोलते हैं, पराये द्रव्यकों हर

लेनेका इरादा ही नही रखते है, पराइ स्त्रीकी तर्फ निगाह भी नहीं डालते है और पुद्गल द्रव्यमें महा मुर्छा भी धारन नही करते हैं. सर्वज्ञ पुरुषोंकी या सर्वज्ञ पुत्रोंकी हितशिक्षा पाकर परभवसें डरकर पापका परिहार करते हैं. क्रोध—मान—माया—लोभ इन रुपी चांडाल मंडलीका संग करना भी नही चाहते हैं. क्रोध कषायके तापकों चंदनसें भी ज्यादे शीतल समतारससें शांत करते हैं. जातिमद, कुलमद, बलमद, तपमद, बुद्धिमद, रुपमद, लाभमद और ऐश्वर्य-मद—इन रुप आठ उंचे शिखर युक्त मानरुपी दुर्धर पहाडकों मृदुतारुप वज्रसें तोड डालते है. मायारुपी नागिनीके झहरकों ऋजुतारुप जांगुली मंत्रके योगसें दूरकर देते हैं, और लोभरुपी अगाध दरियावकों संतोष अगस्त्यकी सत्सहायतासें शोषन करलेते हैं. राग और द्वेषकों कट्टे दुस्मन समझकर उनका विश्वास नही करते हैं मतलब कि संसारके क्षणिक पदार्थोपर राग या द्वेष नही करते हैं. कलहकों अपने और परायेके कलेशका कारण जानकर बिल्कुल त्याग करते हैं. दूसरेके शिरपर झूंठा कलंक चढाना, रहस्य भेद करना (चुगली करना) और परनिंदा करनेका स्वभाव उन्होंकों कर्मचांडाल जैसे समझकर तद्दन त्याग देते हैं. सुख किंवा दुःखकी सामग्रीके वक्त समभाव रखकर हर्षविषाद नहीं करते हैं. माया—कपट और झूंठकों; अगर कहेना कुछ और करना कुछ—इन्होंकों हालाहल विष जैसे जानते है, और मिथ्यात्वकों समस्त पापका ही मूल गिनकर उसका जरासा भी संग नही करते है. इस तरह स-

फल पापनिवृत्ति पूर्वक धर्म धारन करनेसें सज्जन अपना जन्म सफल करते हैं. पापकर्म मे सची लगनी लगानेसे पैदाहुइ दुष्ट वासना बंध हुवे विगर अैसी उत्तम—शुद्ध—उदात्त भावना पैदाही नहीं होती हैं. सज्जनोंका स्वभाव हंस समान है और दुर्जनोंका स्वभाव सूअरकी समान है. साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका—यह चारो सर्वज्ञ प्रभु श्री वीर परमात्माके सेवक होनेसें वै परोपकारी परमात्माकी प्रजारुप गिनाये जाते हैं. अलवत, परमात्माकी पवित्र आज्ञा मुजब चलनेके कामी सुसाधु और प्रभुजीके वृद्ध—वडे पुत्र कहे जाते हैं, आर्या चंदनवाला, मृगावती वगैरः महासतीयोंकी तरह परम विनय भाव पूर्वक पवित्र महाव्रत पालनेमै तत्पर सुसाध्वी समूह प्रभुजीकी वडी पुत्री, और सुलसादिककी तरह सुश्रद्धा धारिणी श्राविकाए प्रभुजीकी छोटी पुत्री गिनी जाती है.

इसपरसें एकही परमात्माकी पवित्र आज्ञाकों पालनेवाले चतुर्विध संघ के वीच एक दूसरेका कैसा गाढ सम्बन्ध रहा है वो स्पष्ट मालूम हो आता है. सांसारिक संवंधसें भी ये धर्म संवंध कितना पवित्र और ज्यादे किमती है? वो लक्षमें लेने लायक है. संसारचक्रकी अंदर कर्म के वश्य हो जानेसें भ्रमण करने के वक्तमै माता—पिता—पुत्र स्त्री वगैरः का संवंध मिलना जैसा सरल है वैसा उपर कहा गया धर्मसंवंध—मिलाप सुलभ नहीं है; लेकिन् वडा दुर्लभ है; तदपि कोइ कोइ सुलभवोधी भाग्यवंत भव्यजन भवाटवी के वीच अतिदुर्लभ धर्म पाकर अपने साधर्मीभाइ और भगिनीयोंकी तर्फ सच्चा वात्सलय भाव रखते है उन्हीकों ही धन्यवाद है.

वही धर्मज्ञ स्वधर्मीभाइ और भगिनीओं के गुनरत्नोकी उमदा किम्मत कर सकते हैं. पीडापाते हुवे साधर्मीओं के सुख निमित्त सच्ची अंतरंगवृत्ति उन्हीं के ही दिलमै रमन करती है, अपने साधर्मीयों के दुःख देखकर वैसे भाग्यवंतोंको ही कंप छूटता है, यथाशक्ति तन-मन-वचनसें स्वार्थकी आहूती देकर स्वधर्मीओंकी सच्ची सेवा भी वैसे ही भाग्यभाजन वजाते हैं, और वैसेही धर्मात्मा उत्तम प्रकार-की धर्म वावतकी तालीम देकर उनकों धर्म के सन्मुख, और व्यवहारिक कार्यकी भी तालीम देकर उनकों व्यवहार कुशल करते हैं, जिस्सें वे इस लोक और परलोकमे सुखी होते हैं. सच्चा साध-र्मीक संवंध समझमैं आये विगर ऐसी परोपकारवृत्ति क्यौं कर जाग्रत हो सकै? ऐसे अच्छे आशयवाले सज्जन क्या कबी भी अपने धर्म वान्धवोंसें भेद भाव रक्खें? कभी नहीं! क्या उन्होंका अतुल दुःख देखकर निःशंकतासें मोज मुजव मजाह उडावै? किंवा अपने और परायेके श्रेयका अति उत्तम मार्ग छोडकर झूंठे मान-मरतवेकी लखलूंटमै उपस्थित हो जावै? अरे! स्वपर के उद्धारका श्रेष्ठ मार्ग समझ सुज्ञ कुलीनजन कवी भी अनर्थकारी मार्ग अंगीकार करै ही नहीं! वैसे शाहाने सुजन अच्छी तरहसें समझते है कि-ज्ञानी पुरुष अपने स्वार्थ विगरही मित्र-वंधु हैं, वैसे महात्मा तो फक्त परमार्थ के दावेसें ही अपनकों हितमार्ग बतलाते हैं; तो वैसे महाशय पुरुषोंकी हितशिक्षाओंका अनादर करकें स्वच्छंदवृत्ती भज लैनी ये केवल उन्मादरूप दीवानपना ही है, अमृतकी वोतल ढोल देकर उसमै विष भर लेने जैसी वात है, सुन्ने के थालमैं धूल

भरने के जैसा प्रकार है, चिन्तामणिरत्नकों कौव्वे उडाने के वास्ते फेंक देना उसीकी बराबर है, कल्पवृक्षकों कुल्हारेसें काटकर वहां आकका पेड रोप दे वैसा है, हाथी वेचकर गद्धा खरीदने के जैसा काम हैं. समुद्रपार जाने के समर्थ जहाजकों छोडकर पत्थरकों पकडने जैसी मूर्खता है, सूत के धागे के लिये नौसर मुक्ताहार तोड डालने जैसा वाहियातपना है, खींटी के खातिर महेल गिरादेने जैसा बेवकूफीका काम है, और एक पाटियेकी खातिर भर समुद्रमें जहाज भांग डालने के जैसा अहंवकपनेका कार्य है. जो कुबुद्धिजन स्वच्छंदतासें चलकर सर्वज्ञ कथित सत्य मार्गकों छुडकर उन्मार्ग ग्रहण करते हैं, वैसे निपट नादान लोग सज्जन समाज के भीतर हंसी के पात्र या निंदा के पात्र होते है. इतना ही नहीं, मगर विषय कषाय के तावे होकर किये हुवे दुष्कृत्यों के योगसें भवांतरमें नरक निगोदादि महादुःख के भागी होते हैं; ऐसा समझकर सज्जन परभवसें डरकर स्वच्छंदता छोड सर्वज्ञ कथित सत्य मार्गकों ही स्वीकृत करके निर्भयतासें उसीका ही सेवन करते है, तो अंतमें वे महानुभाव दुःख के दरियावसें पार होकर अक्षय सुख संपत्ति स्वाधीन कर सकते हैं. ऐसे अनेकानेक दृष्टांत अपन आगमद्वारा सुनकर अपना सकर्णपना सार्थक करने के वास्ते वैसे महाशयों के चरित्र अमृतका पानकर स्वकर्त्तव्य समझकर स्वपरका श्रेय साधनहितार्थ सब तरहकी कायरता छोडकर त्रिकरण शुद्धिसें सद्युद्यम करना ही लाजिम है.

अपना कर्तव्य क्या है ?

अय भव्यसत्व पर्षद् ! यद्यपि परम पूज्य पितारुप श्रीमन्महावीर परमात्माके पावन कदम दर कदम चलकर अपनको बहुतसे कार्य करनेके है. अपनी बहुतसी न्यूनताअें दूर करनेकी है, वो सब एकदम पुष्टालंबन–निमित्त कारणोंके सिवाय बन सकै अैसा न होवै; तोभी श्रीवीर प्रभूकी पवित्र आज्ञाको अक्षरशः अनु-सरकर जगजयवंत जिनशासनकी शोभा बढाने वाले वृद्धाचार्य वगैरः महान् पुरुषोंके कदमपे यथाशक्ति चलकर अपनको अपनी बडी बडी खामियें समझ समझके अवश्य दूर करनी चाहियें.

प्यारे भाइ और भगिनीओं ! पहिले तो अपने सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा, अमृत जैसी मधुरी वानीसें अपनको किस वास्ते बोध देते हैं, वही अपनी अंदरका बहुतसा हिस्सा भाग्यसेंही जानता होगा. आप सब अैसा तो जानतेही होगे कि, सम्यक्ज्ञान–जानपने बिग-रकी क्रिया अंध गिनी जाती है. तैसेही सम्यक्ज्ञान पूर्वक करनेमें आती हुइ उचित क्रिया शुभ फलदायी होती है; तथापि अपन अ-पने आवश्यक कृत्योंका क्या प्रयोजन हैं वितना भी जानने जितना श्रम नाहि लेवें ये कितना शोचनीय और लज्जास्पद है ? अपनकों अपने इष्टदेव, गुरु, धर्म या साधर्मीभाइ–भगिनीयोंकी भक्ति किसलिये करनेकी है ? हिंसा, अनृत, अदत्त, अब्रह्म और परिग्रह रुप पंचाश्रवका रोध किस लिये करनेका है ? क्रोधादि चारों वि-षयका त्याग किस लिये करनेका है ? पांचों इंद्रियें और मनका द-

मन किस वास्ते करनेका है ? दान, शील, तप, भाव, वैराग्य, और सौजनादि सद्गुणोंका सेवन अपनको किस वास्ते करनेका है? इन सब बाबतोंके लिये सम्यग् ज्ञान मिलाना कितना जरूरका है ? उन उन धर्म क्रिया संबंधी यथार्थ ज्ञान पूर्वक विवेकी सद्वर्त्तनसें अपने कितना उमदा फायदा मिला सकेंगे ? अहा ! उन उन पवित्र सर्वज्ञ परमात्मा प्रणीत धर्म क्रिया करनेमें अपनकों कितनी भारी लज्जत मिष्टता आयेगी ? व्हो तो खास अनुभव गम्यही होनेसें उसका वर्णन नाहि किया जाता है. पवित्र धर्म संबंधी समस्त सत्क्रिया करनेका तथा अनादि स्वच्छंदतासें करनेमें आती हुइ कुल असत् क्रिया छोड देने के लिये मूल हेतु विषय वासना तजकर निष्कषाय शुद्ध आतम स्वभाव प्रकट करनेके वास्ते अपने अंतरंग शत्रु राग, द्वेष और मोहादिक महान् दोष दूर करनेका है. अपनकों समझ रखना चाहियें कि, अकेले राग और द्वेष कि जो मोहके पुत्र हैं और अपनी अज्ञानतासें मोहराजाके जोरसें अपनकों भव भव संताप देते रेहते है; तो भी तत्त्वसें उन्होंकी मित्रकी तरह सेवना करतेही रहते है. अकेले राग, द्वेषही अखिल जगतके जीवोंकों जेर करनेके लिये शक्तिमान् हैं, तो ये दोनु मोह समेत जेर करनेका दोश करै तो फिर कहनाही क्या ? ज्ञानी पुरुष तो इन तीन्होंकों दुश्मनही कहते है. जन्म जन्ममें पवित्र धर्मकी समर्थ सहायता सिवायके अशरण अनाथ प्राणीयोंकों बहुत बहुत तरहसें संतापने वाले वै तीनूका किंचित् भी विश्वास न

करनेके वास्ते और उन्होंसें सावधान रहनेके वास्ते निःस्वार्थ बुद्धि सें ज्ञानी पुरुष समझाते है; तदपि मुग्धतासें करकें वैसे हितोपदेशको बेदरकारी—अनादर करके स्वच्छंदतासें अपने उक्त दोषोंकोंही पोषन कर उन्हीकी ही पुष्टि करते है ये कैसा अनुचित वर्त्तन है? अपने अनादि के अंतरंग कट्टे दुश्मनोंका अहर्निश पोषन करनेसें—उन्होंकी आज्ञानुसार चलनेसें और उन्हीकाही विश्वास करनेसें अपनकों क्यौं करके क्षेमका संभव होवै? अप्रशस्त रागादि दुश्मनोंकों दूर करनेके वास्ते श्री जिनेश्वर देवनें सर्वज्ञदर्शित सत्क्रियामें प्रीति पूर्वक प्रवर्त्तनेका फरमान किया है; तदपि अपन बहुत करकें सत् क्रियाका स्वरूप प्रयोजनादि यथार्थ न समझनेसें सर्वज्ञ सुचित सत्क्रियाकों विवेकपुरःसर प्रीति और स्थिरतासें खेद रहित सेवनेके बदलेमें बहुधा अरुचि—अस्थिरतादि सेवन करतेही रहते हैं ये कैसा बेसमझका कार्य है? श्रीजिनेश्वर, राग, द्वेष और मोह महा मल्लकों सर्वथा जेर करनेवाले—जगत् प्रभूकी प्रसन्नता पूर्वक स्थिरता लाकरे पूर्ण प्रीतिसें पूजार्चना करने वाले पूजक खुद आपही पूज्यपदकों पाते हैं. अरे! पंच अभिगमकों समालकर, विवेक पूर्वक विकथा छोडकर, पांचों इंद्रियोंका निग्रह कर, पूर्वोक्त रागद्वेषादिरूप चांडाल चतुष्ककों तजकर, उत्तम शील संतोष धारनकर विधि सहित प्रभु भक्ति रसिकजन, जो शांत रसका पान करकें समस्त भवतापकों दूर करते हैं, उनका भान, भूले भटकनेवाले भोले और शठजनोंको कहांसें होवै? श्री सद्गुरुकी कथनी और रहनीको पूर्ण प्रकारसें

प्रमाद रहित संत–सुसाधु जनोंकी पावन चरण सेवनामें अभिमुख हो रसिक सुविनीत शिष्यवृंद भ्रमर गणकी तरह जो परिमल–सुवासना लूंटते हैं उनका खियाल भी सद्गुरु सेवा विमुख अविनीत शिष्य समूहको कहांसे आवे ?

श्रीसिद्धांत–सर्वज्ञ वीतराग प्रणीत होनेसें सद्विवेकी सज्जनो द्वारा संपुर्ण श्रद्धासें ग्राह्य कर और पूर्वापर विरोधके दोष त्याग कर सर्व सम्मत आगम रहस्य रुप मकरंदका यथेष्ट श्रीसद्गुरुकी सम्यक् सेवा भक्ति पूर्वक पानकरनेवाले मधुकर समान मुनिगण जैसी मिष्टता मिला सकै उनके अनंतवे हिस्से भी क्या अमृतरस आ सके ? कभी नहीं ! तथापि सद्भाग्य योगसें प्राप्त हुइ सद्बुद्धिद्वारा उक्त अमृतरस चखनेका स्वाद जो पंच प्रमादके तावेदार मंदभागी है वै नहीं पा सकते है और बुद्धिका दुरुपयोग करने तकभी नही चुकते है, वैसे मूर्खेशरवर जन स्वच्छंदतासें कितना भारी नुकशान उठाते है वो कहा भी नही जाता है. श्रीसर्वज्ञ प्रणीत सिद्धांतके कथन मुजब अक्षरशः चलन रखनेकी अपनी अति पवित्र फर्ज भूलकर उलटे पवित्र आगमोंकी आशातना होवे वहांतक अपन अज्ञ भाइयें उपेक्षा करते हैं, वो बहुत ही अनुचित है. श्री सर्वज्ञ भाषित सिद्धांत निष्पक्षपातसें जगत मात्रको हितकारी होनेके लिये उन्होंका बहुत मान संभालना–उन्हीका संरक्षण करना वो अपनी मुख्य फर्ज अपने लक्षमें लेनी ही योग्य है.

श्रीसंघ–श्री सर्वज्ञ प्रभूकी पवित्र आज्ञा मुजब वर्त्तने वाले

सुसाधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाऐं जंगम तीर्थरुप गिने जाते है. श्री तीर्थंकर प्रभु खुदभी उक्त गुणाकर संघका उचित आदर करते है तो अन्य सामान्य प्राणियोंको उक्त गुण सागर श्रीसंघकी तर्फ कितने सन्मानकी दृष्टिसें देखना उचित है, उनका सम्यक् विचार करना उपयुक्त है. साधर्मीभाइ और भगिनीओ परम पूज्य पिता स्थानीय श्रीवीर परमात्माकी पवित्र संतती पुत्र पुत्रीपणेका हक्क धराते है, तो उन सभीकों एक दूसरेके साथ कैसी सभ्यता रखना तथा सुशीलता सहित सुसंपधारी गुण ग्राहक बुद्धिद्वारा शासनकी शोभा बढाना चाहियें ? ऐसी अगत्यकी वात तर्फ दुर्लक्ष वतला केर मरजी मुजब चलकर दुग्धकी अंदरसेंभी जंतु ढूंढने जैसा अति अनुचित वर्त्तन रखना ये कितनी शरम पैदा करने वाला प्रकार गिना जावै ? श्री सर्वज्ञ भगवान्का, निर्ग्रंथ अणगार मुमुक्षु जनोंका, श्रीसिद्धांतका या चतुर्विध संघका फरमान तत्वसें एक समानही होना चाहियें; क्यौं कि उन सभीमें मोक्ष साधनरुप महान् हेतु समानही रहा हुवा है. नीति—न्याय या प्रमाणिकपणे के उत्तम कानून् मुजव चलनेके वदलेमै श्री सर्वज्ञ प्रभुकी गिनी जाती प्रजा अनीति—अन्याय या अप्रमाणिकपणेसें चलै ये कितना भारी शरमाने जैसा प्रकार है ? सर्वत्र सुखदायी सन्मार्गको छोडकर उन्मार्ग ग्रहण करना सो कैसे भयंकर दुःखको पोषन करनेहारा होवै ? दश दृष्टांतसें दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर चिंतामणि समान सर्वज्ञ भाषित धर्मको सम्यग् सेवन करना छोड

कर बिलकुल कट्टे दुश्मन या हालाहल विष समान विषय कषाय और विकथादि महान् प्रमादोंको पोषन करना वो कैसे कटुफलोंको देनेमें समर्थ होवेंगा ? वो वात जरा गौरसें शाहाने मनुष्यको शोचनी लायक है. समस्त पुन्यकी गठडी गुमाकर रीते हाथोंसें इस दुनियांकों छोडकर चलाजाना ये कैसी और कितनी अधमता है ? गुणानुरागी, मध्यस्थ सज्जन तो ऐसी बेढंग भरी रीति स्वीकृत करे या अनुमोदें भी नहीं. वे तो श्री जिनराजजी के हुकमकों अंतरंगसें अनुसरने वालेकोंही सत्ववंत गिनते हैं, उन्हीके उपर राग—प्रीतिभी धारन करते हैं. उन्हीकाही विशेष करकें हित करनेकी प्रेरणामें प्रेरित होते हैं. यावत् पूर्व पुण्यके योगसें प्राप्त हुइ यह दुर्लभ सामग्रीकों सफल करनेके वास्ते यथाशक्ति श्री जिनाज्ञाकों अनुसरनेके लिये लक्षवंत सज्जनोंकी तर्फ प्रीति वा संपूर्ण ममता रखते हैं. वैसे साधर्मी जन तर्फ पूर्ण प्रेमयाभक्ति भाव वैसे महाशयही रखते है. उनकों अपने प्राणप्रीय मित्र या बान्धवके समान गिनते हैं. यावत् वैसे सत्ववंत विवेकी सज्जनोंकी खातिरके वख्त अपना सभी तन मन—धन—जीवन अर्पण कर देते हैं. प्रिय भ्राता और भगिनीओं ! आप सब शोच करोकि जिस धर्मकी खातिर सज्जन लोग इतनी बडी भारी खंत रखते हैं, स्वार्थकी आहूती देनेमें. कटिबद्ध रहते है, यावत् अपने प्राणोंकी भी परवाह न रखते क्षण भरमें मरनेको आतुर हो जाते हैं, उस पवित्र धर्मके गहेरे रहस्य प्राप्त करनेके वास्ते और उसी मुजब चलनेके स्वजन्म सफल करनेके वास्ते विवे-

की जनोंको कितनो प्रयत्नशील रहना उचित है ? संबोध सित्तरी ग्रंथमें कहा है कि:–' आणा जुत्तो संघो सेसो पुण अठिसंघाओ– यानि जो परम श्री जिनराजदेवकी आज्ञा मुजब चलते हैं वैसे साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओंका श्री संघमें समावेश होता है, और उससें विरुद्ध चलनेवाले–स्वच्छंदी लोक तो केवल हड्डी, मांस, मेद, रुधिर वगेरः के पुतलेरुप मतलब विगर के हैं. वैसे असार सत्वहीन जनोंका श्री संघमें समावेश नहीं हो सकता है, ऐसा समझकर विवेकी मनुष्योंको अपनी अपनी साधु, साध्वी, श्रावक या श्राविकारुपकी उत्तम फर्ज मुजब काम बजाकर अपना नाम सार्थक करने के और जैन शासन दीपाने के वास्ते प्रयत्न करना चाहियें; क्यों कि ऐसे सार्थक नामधारी चतुर्विध संघसें ही जैन शासनकी शोभा है. ऐसा गुण समुद्र श्री संघ जगत् मान्य होता है. वो जंगमतीर्थरुप होनेसें समागममें आनेवाले भव्य जीवोंको पावन करते है. जिन के पूर्ण भाग्य होवै उन्हींको ऐसे पवित्रतीर्थरुप श्री संघका दर्शन, वंदन, पूजन, वगेरः होता है. श्री संघ गुणरुपी रत्नोंसें भरा हुवा रत्नाकर–समुद्र है; वास्ते गुणानुरागी सज्जनोंको अवश्य आदरणीय और पूजनीय है. श्री संघकी सम्यग् सेवनासें अनेक भव्यजन यह भीष्म भवोदधिकों तिरकर सब दुःखोंका अंत कर अक्षय सुख पाये हैं. हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, और परिग्रहरुप पंच महान् आश्रव यानि कर्मको दाखिल होनेके दरवज्जे खुल्ले ही होनेसें आत्मा वहुत ही मलीन होता है,

और वै आश्रवद्वार बंध करकें अहिंसा सत्यादि संवर के सम्यग् सेवनसें आत्मा निर्मल होता है; तथापि कुत्ते, काग और सूकर के जैसे बुरे स्वभाववाले दुर्जन हिंसादि कुकर्ममें ही मशगुल् हो रहते हैं. और हंस के जैसे शुद्ध स्वभाव संपन्न सज्जन तो हिंसादि कुकर्मोंका त्याग कर विवेक पूर्वक शुद्ध दया, सत्य, संतोषादि संवरका ही सेवन करनेमें आनंद मानकर उन्हीं के ही अभिमुख रहते हैं. दुर्जन दूसरे जीवोंको पापाचरणसें महान् त्रास पैदा करकें अंतमें उनके कटु फलके भागी होते हैं. उनकों नरकादिकी घोर वेदनायें सहन करनी पडती है. यावत् स्वच्छंदतासें चल कर किये हुवे कुकर्म योगसें दुःख दावानलसें परिपक्व होनेवाले वो पामरोंका कोइ भी बचाव नहीं कर सकता है. अनाथ अशरण बिचारोंओंकों वो सभी सहन करना ही पडता है. स्वाधीनतासें करके ऐसे कुकर्म न किये होते तो पराधीनतासें इतना क्यौं सहन करना पडता? इतना ही नहीं, मगर शुभमति योगसें दया, सत्य, संतोषादि संवरकों आदरकर आत्माकों निर्मलकर परम सुख प्राप्त करता! परंतु विष के बीजसें अमृतफलकी आशा क्यौं करके रखी जावै? निष्टुर दिलसें ऐसे कुकर्म करनेवालोंकों अनेक वेर नरकादि के घोर दुःख भुक्तने ही पडते हैं. ऐसा समझकर सर्वज्ञ परमात्माकी पवित्र आज्ञानुसार दया, सत्य, संतोषादि सद्गुण धारन करनेमें विवेकीजन प्रयत्नशील रहते है, और उन्होंको अपने प्राणकी तरह प्रिय गिनकर सर्वथा कुकर्मोंका त्याग करते हैं. ऐसे हमेशां विवेक-

सें जिनाज्ञानुसार चलनेवाले सज्जनोंकों तीन जगत्में किसीका भी डर नहीं है, कोइ भी उन्होंका बाल भी बांका करनेमें समर्थ नहीं है. विवेकसें प्राणी मात्रकों अभयदान देनेवालोंकों कुल जगह अभय मिलाता है, यह बात निर्विवादसें ही सिद्ध है. मरने के समान दूसरा कोइ दुःख या भय है ही नहीं. अपनकों जो जो अनिष्ट है वो वो दुःख वा भय दूसरोंकों देनेके समान कोइ भी पाप नहीं है. सब जीवोंको अपने जान के समान गिनकर, किसीका भी अनिष्ट न करते जो उन्होंकी साथ परम मैत्री भाव धारन करते हैं उन्हीका ही जीवा सफल है, दूसरोंका नहीं ! ऐसा समझ शाहानपतवाले सज्जनोंकों मैत्री भावका फेलाव कर स्व परकों शांति-समाधि पैदा करनेकी दरकार रखनी दुरस्त है; क्यौं कि वोही समस्त सुखका साधन है.

क्रोध-गुस्सा, मान-मगरूरी, माया-दगा-कपट, और लोभ-लालच इन कषायोंका पूरापूरा रुप शोचकर इन चांडाल चतुष्कका सर्वथा त्याग करने के वास्ते सज्जन तत्पर होते हैं. क्रोधाग्नि, क्षण भरमें की हुइ सुकृत करनीकों जला देता है. मानरुप पर्वतपर चडे हुवे प्राणी नीचें ही गिरते है-लघुता पाते हैं. माया शल्यता-दगाखोरी प्राणीकों अनेक जन्म तक हैरान करती है. और लोभ पिशाच प्राणीकों प्राणांत कष्टमें डालता है. ऐसा समझकर सुज्ञ विवेकी जन समता जलसें क्रोधाग्निकों बुझानेके वास्ते, मृदुत्वरुप वज्रसें मान पहाडका चुरा करनेके वास्ते, सरलता

रूप सद् औषधासें माया शल्यकों निर्मुल करनेके वास्ते, और संतोष मंत्रसें लोभ पिशाचकों तावेदार बनानेके वास्ते शक्तिमान् होते है, यह वात अनुभव सिद्ध है. चारों प्रकारके कषाय प्राणी मात्रकों चार गतिरुप संसारमें अनेक दफे भ्रमण करवाते हैं; वास्ते सद्विवेकी सज्जनोंकों अवश्य उन्होंका परित्याग करनेकी ही जरुरत है.

पांचों इंद्रियें और मन दरेक तोफानी घोडेकी बराबर है, तो भी श्रीजिनेश्वरजीके वचनरुप लगामसें विवेकीजन उन्होंकों तावे कर सकते हैं. जो अज्ञ, अविवेकी लोग मन और इंद्रियोंके चाकर नफर बनकेर चलते है उन्हींके बुरे हाल हवाल होते हैं. हरएक इंद्रियजन्य कामना—इच्छाके तावे रहनेसें पतंग, भौंरा, मच्छी, हाथी और हिरनकी तरह बुरे हालकों भेटता हैं. तब जो पांचोंकी लालच—लोलुपता रुप फंदेमें फँस गये हैं वै प्राणियोंके कैसे बुरे हाल होवें उसका कहनाही क्या ? दुर्जनसें भी वो ज्यादे छोडने लायक है; क्यौं कि दुर्जन एक जन्म ही दुःख देता है, और ये तो जन्म जन्म दुःख देनेवाली होती है. मन तो मदमस्त हाथीकी तरह निरंकुश होकर गुणवंतको दुःख फंदेमें फँसा देता है. वास्ते श्रीजिनेश्वर प्रभुके हुकमरुप अंकुशसें करकें उनकों तावे कर लेनाही दुरस्त है—इंद्रिय जन्य स्थूल क्षणिक विषयोंमे स्वच्छंद होकर भटकनेवाले मनकों कब्जकर इंद्रियोंकों भी कब्ज कर लेवै. इंद्रिय जन्य सुखमें आशक्त जनोंका मन ही वक्र होनेसें

तदनुसार इंद्रियोंकी प्रेरणा होती है; वास्ते मनकों ही इष्ट विषयादिमें रमन करते हुवेकों प्रयत्नसें रोक लेनेसें इंद्रियें सहजहीमें रुक सकती हैं. मोह मदिरासें मस्त हुवेला मनमर्कट मोजमें आवे त्यौं विविध विषयोंमें खेलता कूदता—भटकता अपने स्वामी—मालिककों संतापता है वही मनमर्कटकों सदुपयोगद्वारा समझाकर खराब मार्गमें घूमते हुवे मनकों सुमार्गमें ला शकते है. सुशिक्षित हुवा मन पीछे विष जैसे विषय रसमें मशगुल नही होता है. वो तो ज्ञान ध्यानका मीठी लीज्जत लेनेमें लालचु बनता है. श्री सर्वज्ञ प्रभुजीका दर्शन उनकों बहुत ही प्यारा लगता है. प्रभुजीकी पवित्र वाणी उनकों अमृत जैसी मीठी लगती है. शुद्ध देव, गुरु, और धर्म या साधर्मी भाइयोंकी भक्ति करनी उनकों बडी रुचिकर लगती है. सद्गुणी संत सुसाधुजनोंकी स्तुति करनी, सद्गुणोंकी अनुमोदना करनी उनकों बहुत पसंद आती है. सहज सुवास पानेके लिये सहज यत्नवंत होता है. सहज स्वभाव साध्य करनेमें मन अनुकूल हो रहता है. ये सब सत्य—निर्दंभ सर्वज्ञके उपदेशका ही महीमा है; विभावमें वर्त्तन रखनेसें मन और इंद्रियोंका वो निग्रह करता है; मन और इंद्रियें वश्य होजानेसें अंतरात्माका जय और मोहका पराजय होता है, जिस्सें आत्मा अंतिम सुखका मालिक होता है. सच्चा शुरवीर और सच्चा पंडित वो ही कहाजावे कि जो क्षणिक विषय रसमें मोहवंत न होतें अक्षय, अनंत, अव्याबाध, अति दीव्य सुख स्वाधीन करनेमें और उनको साक्षात् संपूर्ण कब्जा करनेमें तत्पर रहता है.

दान–अभयदान–सुपात्रदान–अनुकंपादिदान अच्छे विवेकसें जो देते–दिया करते है, और पात्र परीक्षा पूर्वक जो सम्यग् ज्ञानादिका दान देते हैं, वै शुभ आशय वाले सज्जन चपल लक्ष्मीका सदुपयोग कर परमार्थ साधते हैं. और लक्ष्मीकी वाहुल्यता होने पर भी जो लोग सर्वज्ञ देशित सप्तक्षेत्रोंमें या खास करके दुःख ग्रस्त क्षेत्रमें कृपण वृत्तिसें नहीं वोते हैं यानि नहीं खर्चते हैं वै इस जहाँमें जनसमूह समक्ष अपवादका पात्र होकर मर गये बाद मूर्छासें बुरी गति पाते है.

शील–सदाचारसेंही प्राणी तत्त्वसें शोभा पाता है, शील येही मनुष्योंका सच्चा शृंगार है; शील–सुगंधसें सुगंधित हुवेले कमल तर्फ सुगंधी लेनेके वास्ते विवेकी भौंरे जाते है और शील सुगंधी रहित खुवसूरतवंत मनुष्य आवलके निर्गंध पुष्प जैसे निकम्मे हैं. फांकडे होकर फिरते रहते भी अपमान पाते है, और सुशील सज्जन राज सभामें भी सन्मान पाते हैं, देव भी उनकों सहायता देते हैं, उनकोंही जंगलमें मंगल होता है. ऐसा अचिंत्य महीमा शील गुणका ध्यानमें लेकर सुज्ञजनोंकों वो गुण अवश्य ग्रहण करनेकेही लायक है.

तप–बाह्य और आभ्यंतर भेद करकें दो प्रकारका है. जो कर्म मलकों तपाकर जल जलाकर खाक करदेवै, यावत् आत्माकों निर्मल कर सकता है उसीका नाम तप है. सम्यग् ज्ञानसें स्वस्वरूप ध्यानमें ले हंसकी तरह विवेकसें सद्वर्त्तन सेवन कर अनादि कर्म-

मल दूरकर आत्म विशुद्धि हो सकती है; वास्ते सम्यग् ज्ञानको ज्ञानी पुरुष तप रुपही कहते हैं. आत्माको निर्मल करनेके पवित्र लक्षसें करनेमें आता हुवा कोई भी तप महान् लाभ दायक होता है. और तुच्छ फलकी इच्छा—आशासें करनेमें आता हुवा तप फक्त थोडासो फलकोंही देता है. समता पूर्वक सेवनमें आता हुवा तपसें जन्म जन्मके ताप—पाप—संताप दूर हो जाते हैं; और परम शांति प्रकटती है. उपवासादि बाह्य तप समझकर विवेक सहित सेवन करने वालोंकी जरुर अंतर शुद्धि करता है—रोग वगेरःको दूर हटाता है, और अनेक शक्ति—सिद्धियोंको प्रकेट करता है, यावत् उपद्रवोंकी शांतिकर समाधि देता है. ऐसा उत्तम तप शास्वत सुखका अभिलाषि कौनसा मुमुक्षु अंगिकार किये विना रहेगा ?

भावना मैत्री, मुदिता, करुणा और माध्यस्थादि जन्मोजन्मकी पीडा—विटंबनायें दूर करनेंको समर्थ है. जहां तक प्राणीको कुल प्राणीओंके साथ मैत्री भाव नहीं आया है, वहां तक चक्रवर्ती भी क्यों न हो ? तो भी तत्वसें दुःखी ही है; क्यौ कि उनका चित्त वैर रुप अग्नि करकें प्रदीप्त रहता है और उनका रुधिर जलता है. जहां तक सद्गुणीकी सोबत करकें प्रमोद पूर्वक सद्गुण ग्रहण करनेकी सन्मति जागृत न होवै, वहां तक अमूल्य आत्म संपत्ति प्राप्त करनेका अपूर्व मार्ग नहि मिलता है; क्यौं कि सद्गुण सेवनकी तर्फ आदरही नहीं हुवा है. जहां तक दीन दुःखीका दुःख देखकर दिलमें दया—करुणा बुद्धि जागृत नहीं होवै, वहांतक दिलकी कठो-

रता दूर नहीं होती है. और कोमलता, आर्द्रता, सरलता, तथा समतादि सद्गुण श्रेणि प्रकट नहीं होती है. अंतमें जहां तक नीच, अन्यायी, पापी, निर्दयकी तर्फ उपेक्षा बुद्धि—राग द्वेष रहित मध्यस्थता नहीं आवे, वहां तक निष्पक्षपात सर्वज्ञ शासनके रहस्यभूत सापेक्ष—दया धर्मका सेवन नहि होवै. ऊपर कही गइ चारों भावना ये परम पवित्र सर्वज्ञ शासनकी गहेरी नीव है, उसीसें पावन भावना विगरका धर्म केवल आडंबर या दंभ—कपट रुपही है. ऐसी उत्तम भावनायें सहित की हुइ या करनेमें आती हुइ धर्म करणी दूध मीसरीके मिलाप समान बहुत मुजेहदार स्वाद देती है, उसीके शिवायकी कुल धर्म करणी फीकी रुखी लगती है. वैसी उत्तम भावनावंत भव्य कदाचित् किसी सबबसें क्रियानुष्ठान करनेमें अशक्त होवै तो भी चित्तकी अतिशय शुद्धि—प्रसन्नतासें वडा भारी फायदा पैदा कर सकता है. और उक्त सद्भावना रहित प्राणी क्रियाका गर्व करकें दुःखी भी होता है. वैराग्य ये ऐसी तो अपूर्व और चित्ताकर्षक चीज है के चक्रवर्ती जैसे भी ६ खंडकी ऋद्धि मोजूद होने परभी उसकों छोडकर योग—दीक्षा ले उनका शरण ग्रहण करते हैं. दुनियांकी सभी चीजोंमें भय रहा ही है; लेकिन वैराग्यमें भय नहीं है—वो अभय है. उसी वास्तें सच्चे सुखके अर्थिजन उन्हीकाही आश्रय लेनेका स्वीकारते है. विषयाशक्त जीव जब पवनकी लहरीयें लेनेकों जाता है, तब विवेकी मुमुक्षुजन सभी दुःखोंकों दलन करनेवाले वैराग्य लहरीओंकाही सेवन करता है—इतनाही नहीं; मगर

अन्य आत्मार्थी जनोंकों भी अैसा ही उपदेश देते हैं कि:—

" टाले दाह तृषा हरे, गाले ममता पंक;
लहरी भाव वैराग्य की, ताकों भजो निशंक. "

विषय विरक्त हो सब संसार बंधनोंकों तोडकर सहज मुक्ति सुख प्राप्त करनेके वास्ते योग सेवनेके लिये उत्साहवंत भये हुए भव्यकों ज्यौं ज्यौं वैराग्य की पुष्टि होती है, त्यौं त्यौं सहज संतोष गुणसे सहज सुखकी वृद्धि होती है. यावत् विषयवासनाके क्षयसे, संपुर्ण दुःखोंका क्षय होता है, और वोही अजर, अमर, अक्षय, अव्याबाध, मोक्षपद है.

सौजन्य—सज्जन स्वभाव सुलभ नहि है. जब दुर्जनता—दुर्जन स्वभाव दूर किया जावै, जब निर्दयता, निर्विवेकता, अनीति, आचरण, असत्य भाषण, परनिंदादि पाप, रति और दुष्ट कषायादि दूर जावें, तब सोजन्यता प्राप्त करनेको लायक वो प्राणी होता हैं. चाहे वैसे प्रसंगमें दूसरेके दूषण नही कहवें, गुण ही ग्रहेण करें, आत्मश्लाघा न करैं, और अपने आपसे ही जितना बन सके उतना निःस्वार्थतासें परोपकार करै उसीका नाम सज्जन है. जैसें चंदनका स्वभाव शीतलता करनेका हैं, तैसें सज्जन भी आपके शांत—शीतल स्वभावसें दूसरेकों शीतल करता है. जैसें काट डालने परभी गन्नेका स्वभाव मधुर रस देनेका है और पीडा देने वालेकोंभी अच्छा शांत रससें संतोषता है, तथा जैसें सुवर्णकों अग्निकी जबरदस्त आंचमें डाल देने पर भी आप

अपना वर्ण–रंगत बदलकर फीकी रंगतका नहीं होता है, तैसेंही सज्जन चाहे वैसे कष्टमें भी आपका भव्य स्वभाव छोडकर दुर्जनता नहीं स्वीकारता है. प्राणांत तकभी जो अपनी प्रकृतिकों विकृत नहीं होने देते है, वैसे सज्जनही सर्वज्ञ धर्म सेवनके लायक हैं. और वोही सज्जनोंकी करोडों दफे बलैयें लेनी मुनासीब है. मलीन वृत्तिवाले दुर्जन सर्वज्ञ कथित धर्म सेवनको नालायकही है. अच्छे आशयवाले सज्जन स्वपरका उपकार करके; सर्वज्ञ धर्मका आराधन करके अंतमें अनंत अक्षय मोक्ष सुखकों स्वाधीन करते है. इस प्रकार संक्षेपसें सद्गुरु कृपा योग द्वारा कथन किया गया अपना कर्त्तव्य विचार कर विवेक अंगीकार करकें छोडने लायकको छोडनेकों और आदरने लायकको आदरनेकों आत्मार्थीजन ज्यादा लक्ष देवेंगे. करने लायक धर्म करणी श्री सर्वज्ञ कथित शास्त्रानुसारसें यथाविधि करके भी अगर्व सह रहेवेंगे; तथापि यथाशक्ति अपने साधर्मी भाइयों और भगिनीयोंके उचित कार्योंमें उचित मदद देकर उन्होंकों ज्यादे तोरपर धर्ममें योजनेका प्रबंध कर देवेंगे यावत् गुणी जैनोंमेंसें गुण ग्रहण करके गुणकी महत्ता बढावेंगे, और निर्गुणी पर भी अनुकंपा ला कर उनकों गुणशाली बनानेके वास्ते बन सके उतना उद्यम करेंगे, जगत्के तमाम जीवोंकों अपने मित्र तुल्य गिनेंगे, किसीके साथ कभी भी दुश्मनाइ, विरोध न रखेंगे, और नीच, निर्दय, पापी प्राणियोंकी तर्फ भी द्वेष न ल्यातें विवेकसें उनकी उपेक्षा करेंगे, यावत् उत्तम भावनामय अंतःकरण बनाकर सावधानतासें

स्वकर्तव्य करनेको न चुकेंगे ऐसी आंतरिक आशा है. सर्वज्ञ परमात्मा श्री महावीरजीकी सर्व संतती प्रभुके पवित्र शासनमें कायम रहकर जगहितकारी शासनको ज्यौं शोभा बढै त्यौं स्वस्व कर्तव्य समझकर विवेकसें स्वशक्ति छुपाये विगर उनका अमल करना खास अगत्यका है. स्वसंततीकों भी सुधारनेका वो उत्तम मार्ग है. मतलबमें सब दुःख दारिद्रय दुर्भाग्य दायक स्वच्छंदता मूल दोष मात्रकों दूर करके अनादि अज्ञान अंधकार दूर करनेकों और सर्व सुखकारी सर्वज्ञ आज्ञा मूल सद्गुण मात्र सद्भावपूर्वक सेवन करकें घटघट सत्तागत रहा हुवा अनंत अक्षय केवलज्ञान उद्योत प्रकट करने के वास्ते अपन सब पापी प्रमादकों दूर करकें परम उल्लाससें सदुद्यम सेवन करेंगे तो अवश्य अपने आसन्न उपकारी भगवान् श्री महावीरस्वामीकी तरह अनंत गुण रत्नादीपककी मालाद्वारा अपन सबकों नित्य दीपोत्सवी होगी. तथास्तु ! ऐसे महा मंगलकारी दिन साक्षात् देखने के लिये अपन कब भाग्यशाली होयेंगे ?

अहा ! समस्त दुःख, कष्ट, या आपत्तिका मूलरूप काला मुंहवाला कुसंप कब नष्ट हो जायेगा ? और ‘ संप वहां ही जंप ’ ऐसी उत्तम वाणीका जयघोष कब होयेंगा ? सुसंपके उत्तम बीज ज्ञान, विवेक, विनयादि बोनेके लिये, और कृष्ण मुखवाले कुसंपके कनीष्ट बीज इर्ष्या, अदेखाइ, अभिमान; अज्ञानादि निर्मूल करनेके लिये अपन कब भाग्यशाली होयेंगे ? परम उपकारी परमात्मा

णीत उत्तम जाति और न्यायके नियम पालनेके वास्ते, और समस्त अलक्ष्मीके कारणभूत अनीति, अन्यायके बुरे सडेको दूर करनेके वास्ते अपन कब शक्तिमान् सत्ववंत होयेंगे? अपने परम पवित्र सर्वज्ञ परमात्मा तर्फकी अपनी पवित्र फर्जको यथार्थ समझकर अदा करनेके वास्ते कब यत्नशील होयेंगे? अपने निःस्वार्थी मित्र, बंधु, या माता पिताके समान श्री सद्गुरुका पवित्र हुकम मुजब चलनेमें अपन कब भाग्यवान् हो सकेंगे? श्री सर्वज्ञ भाषित निष्पक्षपात धर्मको भी सुवर्णकी तरह या रत्नकी तरह पूर्ण परीक्षा करके निःसंदेहतासे स्वीकार कर उनमें निश्चलता धारण कर सहज समाधि लाभ संप्राप्त करिके कब कृतार्थ होयेंगे? श्री तीर्थंकर देव मान्य श्री संघ-तीर्थकी तमाम आशातना दूर करके उनकी यथाविधि सेवा कर स्वजन्म सफल करनेका दिन कब आयगा? श्री सर्वज्ञ आगमों की भी कुल आशातनायें दूर कर उनकी फरमाइ हुइ आज्ञाओंको अमृत की तरह आनंदसें अंगिकार करके उसी मुजब अमलमें लेनेके वास्ते कब दृढ प्रतिज्ञ होयेंगें? प्यारे भ्राता गण! जब अपन ऐसी उत्तम सामग्रीका पुर्व पुण्यके योगसें संयोग प्राप्त कर श्री सर्वज्ञ प्रभुकी पवित्र आज्ञाको हुरुफ बहुरुफ आराधनेमें अत्यंत रुचिवंत और श्रद्धावंत हो कर्त्तव्य परायण होयेंगे तभी सभी दुःख दौर्भाग्यको दूरकर—चकचूर कर अपने संपुर्ण सुखी होयेंगे! तथास्तु! परंतु जब तक जगहितकारीणी श्री जिनाज्ञाको अनादर कर स्वच्छंदतासें अनेक पापारंभ करके—अपन छल

प्रपंच द्वारा अपना पापी पेट भरेंगे, तब तक सुखका दिन दूर ही समझ लेना ! जहां तब क्षणिक विषय सुखकी खातिर निर्दयतासें लाखों बल्कि करोडों जीवोंकी हिंसा करनेमें कुच्छ भी डर नहीं लगता है, झुठ बोलनेमें बिलकुल भी पीछा नही हठते है, अनीति, अनाचरणसें परद्रव्य हरन करना प्यारा लगता है, पर स्त्री सेवन वैश्या गमन करनेमें भी कुछ डर नही लगता है और पैसा प्राणकी तरह प्रिय लगने सें धर्मकी भी उपेक्षा करकें अनाचार सेवन करकें भी पैसा पैदा कर लेनेमें तत्परता रहती है, वहांतक उत्तम प्रकारकें संतोषका सुख चखनेका समय किस प्रकारसें प्राप्त होवै ? जहांतक पाप प्रवृत्ति परायण रहकर उसमें मशगुल हो प्रमादको ही पुष्ट बनावेंगे, वहां तक निष्पापवृत्ति—निवृत्ति जन्य सुख किस तरह हाथ लगेगा ? जहां तक क्रोधादि कषायके तापसें किंचित् भी परांङ्मुख न होवेंगे यानि दूर न हठेंगे, वहां तक समतादि सद्गुणो की शीतलताका साक्षात् अनुभव अपनको हो सकेगा ही नहीं ! जहां तक इंद्रिय जन्य सुख—विलासमें रसिक—लंपट बनकर उनके दास हो रहेंगे वहां तक अतींद्रिय—सहज सुखका अनुभव किस प्रकार हो सके ?

श्री जिनेश्वर भगवाननें परम करुणासें बताये हुये अमृत फलके देने हारे कल्पवृक्ष समान दान, शील, तप, और भावनारूप चतुर्विध श्री धर्मका अनादर करकें स्वच्छंदतासें अधर्मका आदर करनेके सबबसें ऐसे उत्तम अमृत फलका स्वाद प्राप्त करनेका मोका

ही कहांसें हाथ लगे ? विषय रसमें ही निमग्न रहकर पशुवृत्ति पोषन करनेवालेकों शांत-वैराग्य रसका आ स्वाद आवेही नहीं, यह तो निर्विवादकी वार्त्ता है. दूसरेके दुःख देखकर प्रसन्न होनेवाले दुर्जनोंको सौजन्यका अनुभव हो सकता ही नही. अैसी स्वच्छंदता वृत्तिसें चलनेवाले जीवोंमें गुणका अंश भी पैदा हो सकेगा ही नही, यह स्वतः सिद्ध है. जहां तक स्वच्छंदता छोडकर सर्वज्ञ कथित सत्य शास्त्र नीतिकों अच्छे तेहरसें समझकर अपन त्रिकरण शुद्धिसें स्वीकारनेके वास्ते तैयार न होवेंगे, वहां तक पापी प्रमाद अपनी गेल छोडनेका ही नहीं. सर्वज्ञ प्रभुजीकी पवित्र आज्ञाका अनादर करकें स्वच्छंतासें चलना उसीका ही नाम तत्त्वसें प्रमाद है. उन प्रमादसें कुल प्राणी चतुर्गति रुप संसार चक्रमें फिरते ही रहते है, जन्म जरा मरणके दुःखसे मुक्त हो सकते ही नहीं; वास्ते सद्गुणोंकी हितशिक्षा हृदयमें धारन कर अनादि प्रिय स्वच्छंदताकों जलांजली देकर, जिस प्रकारसें करकें श्री सर्वज्ञ शास्त्र नीतिका अत्यंत मानपूर्वक सेवन होवै तिस प्रकारसें प्रमाद रहित होनेकी-चलनेकी अपनी मुख्य फर्ज है. स्वच्छंद वर्त्तनसें अपन अल्प सुखके वास्ते बहुत भारी नुकशानी उठाते है उनका अवश्य जरासा खियाल करना ही लाजिम है. क्षणभर सुख और दीर्घकाल तक दुःख-लेशमात्र सुख और पारावार-अनंत दुःख अैसे स्वच्छंदी चलनकी फल ज्ञानी पुरुष कहते हैं; वास्ते अपनकों वो सब तुच्छ आशाअें छोडकर सद्विवेक धारन करकें जन्म मरण दुःख निवारक

श्री जिनेश्वर प्रभुजीकी पवित्र आज्ञा पालनेके लिये पूरे तोरसें प्रयत्न करना योग्य है. इस तरह उत्तम लक्ष रखकर सुसाधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका यह सभी सुसंप समाधि करकें श्री सर्वज्ञ शासन तर्फ अपनी अपनी तर्फसें पवित्र फर्ज अदा करनेके लिये अनुकूल प्रयत्न सेवन करनेमें आवे तो बेशक जगतहितकारी श्री जिनशासनका विशेष उद्योत–उत्कर्ष–प्रभावना हो सकेही हो सके; लेकिन अच्छी तोरसें लक्ष ही कौन देता है? अभी अज्ञान वश अविवेक द्वारा भये हुवे कुसंपके सबबसें उद्भव भइ मलीनता दूर करकें सर्वज्ञ प्रणीत शास्त्रके सानुकूल वर्त्तन रख्खा जाय तो सम्यग् ज्ञान –विवेकके प्रकाशसें सुसंप सुदृढ होकें शासनकी उन्नती क्यौं न होने पावे? बेशक होवे! कहा है किः–

" कारण योगे हो कारज नीपजेरे, एमां कोइ न वाद;
पण कारण विण कारज साधियेरे, ए निजमत उन्माद.
संभव देवते धुर सेवो सवेरे, लही प्रभु सेवन भेद;
सेवन कारण पहेली भूमिकारे, अभय अद्वेष अखेद. "

जैसा कारण वैसा कार्य, पुष्ट कारण आलंबनमेंसें पुष्ट कार्य प्राप्त–पैदा होता है. यदि अपनकों श्री जिनशासनकी उन्नति–शोभा बढानेकी दरकारही होवै तो कारण भी तदनुकूल अवश्य सेवन करनेही चाहियें. अपन अपनी मतिसें चाहे उतना ज्यादे कष्ट सहन करै; परंतु उन पवित्र शास्त्र नीति वचनानुसार थोडासा भी किया जावै उसकी बरोबरी हो सकैही नहीं. वास्ते पुष्टालंबनभूत श्रीजिनागमकी आज्ञानुसार चलनेसेंही अपना सद्वर्त्तन हो सकता है,

ऐसाही अपनको हमेशां शुद्ध अंतःकरणसें इच्छना चाहिये कि जिस तरह आनंदधनजीने कहा है:—

" मुग्ध सुगम करी सेवन आदेररे, सेवन अगम अनूप;
" देजो कदाचित् सेवक याचनारे, आनंदघन पद रुप. संभव."

ज्ञानी पुरुषोंने पांच प्रकारकी क्रियाऐं कही हैं—यानि विष १, गरल २, अननुष्ठान ३, तद्हेतु ४, और अमृत क्रिया ५, ये पांच है. उनमें विष, गरल और अननुष्ठान ये तीनों क्रिया संसार फल, और तद्हेतु तथा अमृत क्रिया मोक्ष फलकों देती है. ऐहिक, पारलौकिक सुखके वास्ते और केवल गतानुगतिक पणेसें तत्त्व समझे बिगरही करनेमें आती हुइ विषादिक क्रिया तुच्छ फल दे कर अंतमें दुखसें मुक्त नही कर सकती है. और पूरा पूरा तत्त्व समझकर सहेतुक मोक्ष—जन्म मरणका चक्कर दूर करनेके लिये सावधानीके साथ करनेमें आती तद्हेतुक क्रिया तथा क्रमशः त्रिकरण शुद्धिसें एकाग्रतासह करवानेमें या करनेमें आती हुइ अमृत क्रिया तुरंत मोक्षफल देती है. वास्ते मोक्ष सुखके अभिलाषि सज्जनोंको विषादिक क्रियाऐं तज अमृत क्रिया तथा तद्हेतु क्रियाकाही आदर करना मुनासीब है. श्री सर्वज्ञ भाषित समस्त सत्क्रिया सहेतुक होनेसें उन हरेकका कुछ हेतु गुरु द्वारा जानकर उनमें बहुत आदर करना वही लायक है; क्यौं कि जिस्सें, समस्त दुःखोंको अंतमें तिलांजली दे अपना अंतरात्मा कर्पूर समान उज्वल यशका स्वामी हो परमात्म पदका अधिकारी होवै और समस्त बाधक कर्म बंधनको छेद कर अनंत चतुष्टय—अनंत ज्ञान, अनंत

दर्शन, अनंत चारित्र और अनंतवीर्य सहित हो शिव–अचल–अ-क्षय–अव्याबाध और अपुनरावृत्ति सिद्ध गति नामक श्रेष्ठ गति-स्थानकको प्राप्त कर सकता है.

सब प्रकारके बाह्य और अंतर क्लेशके क्षयसें सर्वज्ञ प्रभु श्री महावीर स्वामीकी समस्त संतती–प्रजा साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओंको हमेशां भावदीवाली हो यही अंतरात्माका आशिर्वाद समस्त विवेकी सज्जनोंको सफल हो! ऐसी भावदीवा-ली हमेशां प्रकटी हुइ देखनेके वास्ते विवेकी सज्जन सन्मुख हो! समस्त बाधक भाव तजकर साधक भाव अंगिकार करनेकों कटि-बद्ध हो! और निर्मल रत्नत्रयी (सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन औ-र सम्यग् चारित्र)का यथाविधि आराधन करनेके वास्ते उद्युक्त हो! जिस्सें सर्व श्रेय–मांगलिक माला स्वतः स्वयं आ मिले!!!

अस्तु!

अंत मांगलिक स्तुति.

शांत सुधारस झील रही, करुणारस भीनी आंखडियांरे;
निंद स्वप्न संकोच स्वभावे, लाजी पंकज पांखडियांरे. शांत.

सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याण कारणं;
प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयति शासनं.

इत्यलम्.

सार बोल संग्रह.

१ लोभी मनुष्य फक्त लक्ष्मी इकट्ठी करनेमें ही तत्पर-हुंसियार रहते हैं, मूढ कामी मनुष्य काम भोग सेवनमें ही तत्पर रहते हैं, तत्त्वज्ञानीजन काम क्रोधादि दोषका पराजय करके क्षमादि गुण धारण करनेमेंही तत्पर रहते हैं, और सामान्य मनुष्य तो धर्म, अर्थ, और काम यह तीनूका सेवन करनेमें ही तत्पर रहते हैं.

२ पंडित उन्हीकोंही समझो कि, जो विरोधसें विरामकर शांत, समभाववंत हुवे होवें; साधु उन्हीकोंही जानो कि, जो समय और शास्त्रानुसार चलें; शक्तिवंत उन्हीकोंही समझो कि, जो प्राणांत तक भी धर्मका त्याग न करें; और मित्र उन्हीकोंही जानो कि, जो विपत्तिमें भागीदार होवै.

३ क्रोधी मनुष्य कभी सुख नहीं पाते हैं, अभिमानी शोकाधीन होनेसें कभी जय नहीं पाते हैं, कपटी सदा औरका दासपणाही पाते हैं, और महान् लोभी और मम्मण जैसे मनहूस मक्खीचूस नरकगति ही पाते हैं.

४ क्रोधके जैसा दूसरा कोइ भवोभव नाश करनेहारा विष नहीं है; अहिंसा-जीवदयाके जैसा दूसरा जन्मजन्ममें सुख देनेवाला कोइ अमृत नहीं है; अभिमानके जैसा कोइ दूसरा दुष्ट शत्रु नहीं है; उद्यमके जैसा कोइ दूसरा हितकारी बंधु नहीं है; माया-

कपट के समान दूसरा कोइ प्राणघातक भय नहीं है; सत्यके जैसा कोइ दूसरा सत्य शरण नहीं है; लोभके जैसा कोइ दूसरा भारी दुःख नहीं है और संतोषके जैसा कोइ दूसरा सर्वोत्तम सुख नहीं है.

५ सुविनीतकों बुद्धि बहुत भजती है, क्रोधी कुशीलकों अपयश बहुत भजता है, भग्न चित्तवालेकों निर्धनता बहुत भजती है, और सदाचारवंत सुशीलकों लक्ष्मी सदा भजती है.

६ कृतघ्न मनुष्यकों मित्र तजते हैं, जितेंद्रिय मुनिको पाप तजते हैं, शुष्क सरोवरकों हंस तजते है, और गुस्सेवाज–कषायवंत मनुष्यकों बुद्धि तज देती है.

७ शून्य हृदयवालेकों बात कहनी सो विलाप समान है, गइ गुजरीकों पुनः पुनः कथन करनी सो विलाप समान है, विक्षेप चित्तवालेकों कुछभी कहना सो विलाप समान है, और कुशिष्य शिरोमणिकों हितशिक्षा देनी सो भी विलाप समान है.

८ दुष्ट अफसर लोगोंकों दंड देनेके वास्ते तत्पर रहते हैं, मूर्खलोग कोप करनेमें, विद्याधर मंत्र साधनेमें, और संत सुसाधुजन तत्त्वग्रहण करनेमें तत्पर रहते हैं.

९ क्षमा उग्रतपका, स्थिर समाधीयोग उपशमका, ज्ञान तथा शुभ ध्यान चारित्रका, और अति नम्रता पूर्ण गुरु तर्फ वर्त्तन शिष्यका भूषण है.

१० ब्रह्मचारी भूषण रहित, दीक्षावंत द्रव्य रहित, राज्यमंत्री बुद्धि सहित और स्त्री लज्जा सहित शोभायमान् मालूम होते हैं.

११ अनवस्थित–अनियमित–अस्थिर प्राणीका आत्माही अपने आपका वैरी जैसा और जितेंद्रियका आत्मा ही आत्माकों शरण करने योग्य समझना.

१२ धर्मकार्यके समान कोइ श्रेष्ठ कार्य, जिवहिंसाके समान भारी अकार्य, प्रेम रागके समान कोइ उत्कृष्ट बंधन, और बोधी लाभ–समकित प्राप्तिके समान कोइ उत्कृष्ट लाभ नही हैं.

१३ परस्त्रीके साथ, गमारके साथ, अभिमानीके साथ और चुगलखोरके साथ कबी भी सोबत न करनी चाहिये; क्यौं कि ये हरएक महान् आपत्तिके ही कारण हैं.

१४ धर्मयुक्त मनुष्योंकी जरुर सोबत करनी चाहियें, तत्वके ज्ञाता पंडितजनकों जरुर दिलका संशय पूंछना चाहियें, संत–सुसाधुजनोंका जरुर सत्कार करना चाहियें और ममता–लोभ दरकार रहित साधुओंकों जरुर दान देना चाहियें; क्यौं कि ये हरएक लाभकारी है.

१५ विनय विचारसें पुत्र और शिष्यकों समान गिनने चाहिये, गुरुकों और देवकों समान गिनने चाहियें, मूर्ख और तिर्यंचकों समान गिनने चाहिये, और निर्धन तथा मृतककों समान गिनने चाहियें.

१६ तमाम हुन्नरोंसें धर्माराधनका हुन्नर, समस्त कथाओंसें मूल्यमें धर्मकथा, सब पराक्रमसें धर्म पराक्रम, और तमाम सांसारिक सुखोंसें धर्म संबंधी सुख विशेष शोभा पात्र है.

१७ जुगार खेलनेवाले जुगारीके धनका, मांस खानेकी आदत वालेकी दयाबुद्धिका, मदिरा पीनेवालेके यशका और वेश्यासंगीके कुलका नाश होता है.

१८ जीवहिंसा—शीकार करनेवालेका उत्तम दयाधर्मका, चोरीकी आदतवालेके शरीरका, और परस्त्रीगमन करनेवालेके दयाधर्म, और शरीरका नाश होता है. अधर्ममें अधमगति होती है. वास्ते ये तीनू दुर्व्यसन यह लोक और परलोक इन दोनूसें विरुद्ध होनेके लिये अवश्य छोड देनेके योग्य ही है.

१९ निर्धन अवस्थामें दान देना, अच्छे होद्दार अफसरकों क्षमा रखनी, सुखी अवस्थामें इच्छाका रोध करना, और तरुण अवस्थामें इद्रियोंकों कब्जमें रखनी ये चारों बातें बहुत ही कठीन हैं; तथापि वो अवश्य करने योग्य होनेसें जब वैसा मोका हाथ लगे तब जरुर लक्ष देकर करनी ही चाहियें.

धर्म कल्पवृक्ष.

धर्म साक्षात् कल्पवृक्ष जैसा है, दान, शील, तप और भावना यह चार उनके प्रकार हैं. अभय सुपात्र—ज्ञान दान वगेरः दानके भेद हैं. दानसें सौभाग्य, आरोग्य, भोग, संपत्ति तथा यश प्रतिष्ठा प्राप्त होते हैं. दानगुणसें दुश्मन भी तावेदार हो पानी भरता है. यावत् दानसें शालीभद्रकी तरह उत्तम प्रकारके देवीभोग प्राप्त करकें अंतमें मोक्ष सुख प्राप्त होता है.

शील:—पशुवृत्ति छोडकर शील—सदाचारका विवेक पूर्वक से-

वन करना उनके समान एक भी उत्तम धन नहीं है. शील परम मंगलरुपी होनेसें दुर्भाग्यको दलन करनेवाला और उत्तम सुख देनेवाला है. शील तमाम पापका खंडन करनेवाला और पुन्य संचय करनेका उत्कृष्ट साधन है, शील ये नकली नहीं मगर असली आभरण है, और स्वर्ग तथा मोक्ष महेलपर चडनेकी श्रेष्ठ सीढी है. इस लिये हरएक मनुष्यको सुखके वास्ते अवश्य सेवन करने लायक है. शीलव्रतको पूर्ण प्रकारसें सेवन करनेसें अनेक सत्वोंका कल्याण हुवा है, होता है, और भविष्यमें होयगा.

तपः—कर्मको तपावे सोही तप. सर्वज्ञने उनके बारह भेद यानि छः बाह्य और छः अभ्यंतर असें दो भेद सामिल होकर होते हैं. उसकी नाम संख्या भेद नीचे मुजब हैं.

अनशनः—उपवास करना सो (१), उनोदरी दो चार कवल कम खाना सो (२), वृत्तिसंक्षेप—विवेक—नियम मुजब मित अन्नजल आदि लेना सो (३), रसत्याग—मद्य, मांस, सहत, मख्खन, ये चार अभक्ष्य पदार्थोंका बिलकुल त्याग के साथ दुध, दहीं, घी, तेल, गुड और पकवान्न वगैरःका विवेकसें बन सके उतना त्याग करना सो (४), कायाक्लेश—आतापना लेनी, शीत सहन करनी सो (५), और संलीनता अंगोपांग संकुचित कर—एकत्रकर स्थिर आसनसें बैठना सो (६) ये छः बाह्य तप कहे जाते हैं. अब छः आभ्यंतर तप बतलाते हैं.

प्रायश्चितः—कोइ भी जातका पाप सेवन किये बाद पश्चाताप पूर्वक गुरु समक्ष उनकी शुद्धि करनेके वास्ते योग्य दंड लेना सो (१),

विनय–चाहे वो सद्गुणीकी साथ नम्रता सह वर्त्तन, सद्गुण समझकर उनका योग्य सत्कार करना सो (२), वैयावच्च अरिहंत, सिद्ध, आचार्य वगैरः पूज्य वर्गकी वहुतमान पुरःसर भक्ति करनी सो (३), स्वाध्याय वाचना, पृच्छना, परिवर्त्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा रूप ये पांच प्रकारका है उनका उपयोग करना सो (४), ध्यान शुभ ध्यानका चिंतन और अशुभ ध्यानको विस्मरण करना यानि मलीन विचारोंको दूरकर शुभ या शुद्ध–निर्दोष विचारोंको धारण करना, आत्म–परमात्माका एकाग्रतासें चिंतन करना, और वहिर्वृत्ति छोड अंतरवृत्ति भजनी सो (५), काउस्सग्ग–देहकी तथा उनकी साथ लगे हुवे मन और वचनकी चपलता दूर कर आत्म–परमात्म ध्यानमें ही तत्पर–लीन होना सो (६), यह छ आभ्यंतर तप है.

अंतर शुद्धि करनेके वास्ते अवंध्य कारणभूत होनेसें वो अभ्यंतर तप कहा जाता है. अभ्यंतर तपकी पुष्टि होवै वैसा वाह्य तप करना अैसा सर्वज्ञ भगवानने भव्य जीवोंके लिये कथन किया है; वास्ते वो अवश्य तप आदरने योग्य है. तपके प्रभावसें अचिंत्य शक्तियें प्रकटती है, देव भी दास होते है, असाध्य भी साध्य होता है, सभी उपद्रव शांत होते हैं, और सब कर्ममल दहन हो शुद्ध सुवर्णकी तरह अपना आत्मा निर्मल किया जाता है; वास्ते आत्मार्थी–मुमुक्षु वर्गको उनका सदा विवेक पुर्वक सेवन करना योग्य है. तप सच्चा वही है कि जो कर्ममलको अच्छी तरह तपाकें साफ कर देवै.

भावनाः—धर्म कार्य करनेके भीतर अनुकूल चित्त व्यापार रुप है. वैसी अनुकूल चित्तवृत्ति रुपकी प्राप्तिके सिवाय धर्मकरणी चाहियें वैसा फल नहीं दे सकती है. यावत् चित्तकी प्रसन्नताके विगर की गइ या करानेमें आती हुई करणी राज्यवेठ समान होती है; वास्ते कुछ जगह भाव प्राधान्य रुप है. भाव विगरका धर्मकार्यभी अलूने धान्य—भोजन जैसा फीका लगता है, और वो भाव सहित होवे तो सुंदर लगता है. इस लिये हरएक प्रसंगमें शुद्ध भाव अवश्य आदरने योग्य है. सर्वज्ञकथित भावनाऐं भव संसारका नाश करती हैं. मैत्री, प्रमोद, करुणा और मध्यस्थता रुप चार भावनायें भवभय हरने वाली हैं. जगत्के जीव मात्रको मित्र गिननेरुप मैत्री भाव है. चंद्रको देख जैसें चकोर प्रमुदित होता है वैसें सद्गुणीको देखकर भव्य चकोर चित्तमें प्रसन्न होवै वो प्रमुदित या मुदिता भाव कहा जाता है. दुःखी जीवको देखकर आपका हृदय पिघल जाय और यथाशक्ति उसका दुःख दूर करनेके लिये प्रयत्न हो सके सो करे उसको करुणा भाव कहा जाता है. और महापाप राति प्राणीपर भी क्रोध द्वेष न लाते मनमें कोमलता रख उदासीनता धरनेमें आवे उसको मध्यस्थ भाव कहा जाता है. ऐसी उत्तम भावना भावित अंतःकरणवाले प्राणि पवित्र धर्मके पूर्ण अधिकारी गिने जाते हैं. उनके दर्शनसें भी पाप नष्ट हो जाता है. वैसे शुद्ध भाव पुर्वक शुद्ध क्रिया करने वाले महात्माओंके प्रभावसें पापी प्राणी भी अपना जाती वैर छोडकर—अपना क्रूर स्वभाव दूर कर शांत स्वभाव धारन करते हैं. ऐसे अपुर्व योग—प्रभाव पु-

वोंका सद्भावनाके जोरसें प्रकटते है; वास्ते मोक्षार्थिजनोंकों उपर कही गइ भावनायें धारनेके लिये अवश्य प्रयत्न करना योग्य है. सर्वज्ञ कथित तत्त्व रसिककों ये शुभ भावनाऐं सहजही प्रकट होती है.

प्रकरण चौथा.

सदुपदेश सार.

१ जीवदया (जयणा) हम्मेशां पालनी चाहियें.

चलतें, बैठतें, उठतें, सोतें, खातें, पीतें या बोलतें यानि यह हरएक प्रसंगमें प्रमादसें पिराये प्राण जोखममें नहि आ जावे वैसा उपयोग रखकर चलना. सूक्ष्म जंतुओंका जिस्से संहार होजाय, वैसा खजुरीका झाडु वगैरः कचरा निकालनेके लिये कबीभी वपरासमें नहि लेना. पानीभी छानकर पीना. छाना हुवा जलभी ज्यादा नहि ढोलना. जीवदयाके खातिर रात्रिभोजन नहि करना. कंदमूल भक्षण वर्जित करदेना. जीवदयाके खातिर जहां तहां अग्नि नहि सिलगानेका ध्यानमें रखना; क्योंकि अपने प्राणहीके समान सब जीवोंकों अपने अपने प्राण वल्लभ हैं, तो उन्हके प्रिय प्राणोंकी कीमत बूझ स्वच्छंदपना छोडकर जैसें उन्हका बचाव हो सके वैसे कार्य करनेमें प्रयत्न करना, और याद रखना कि सर्व अभक्ष्य मद्य मांसादिके भक्षणसें क्षणिक रसकी लालचके लीये असंख्य जीवोंके कींमती जानकी ख्वारी होती है, उन्हकें नाहक संहारसें

महान् पाप होनेसें जगत्में महा रोगादि उपद्रव उद्भवते हैं उसके भोग होपडता है, और प्रांत-अंतमें नरकादि घोर दुःखके भागीदार होना पडता है.

२ निरंतर इंद्रिय वर्गका दमन करना.

हरएक इंद्रियका पतंगजंतु, भौंरा, मत्स्य, हाथी और हिरनकी तरह दुरुपयोग करना छोडकर संत जनोंकी तरह इंद्रियोंका सदुपयोग करकें हरएकका सार्थक्य करनेके लीये खंत रखनी चाहियें. एक एक छुट्टी की हुइ इंद्रिय तोफानी घोडेकी तरह मालिककों विषम मार्गमें ले जाकर ख्वार करती है, तो पांचोंकों छुट्टी रखनेवाले दीन अनाथजनके क्या हाल होय? इसी लिये इंद्रियोंके तावेदार न वनेकर उन्होंकों वश्यकर स्वकार्य साधनमें उचित रीति मुजव प्रवर्त्तानी चाहियें. किंपाक तुल्य विषयरस समझकर उसकी लालच छोडकर संतदर्शन, संतसेवा, संतस्तुति, संतवचन श्रवणादिसें उन इंद्रियोंका सार्थक्य करनेके लिये उद्युक्त रहकर प्रतिदिन स्वहित साधनेकुं तत्पर रहना उचित है.

३ सत्य वचनही बोलना.

धर्मके रहस्यभूत, अन्यकों हितकारी, तथा परिमित जरुर जितनाही भाषण औसर उचित करना, सोही स्वपरकों हित—कल्याणकारी है. क्रोधादि कषायके परवश होकर वा भयसें या हांसीकी खातिर अज्ञजन असत्य बोलकर आप अपराधी होते हैं, सो खास

ख्यालमें रखकर वैसे वक्तमें हिम्मत धारण कर यह महान् दोष सेवन नहि करना. सत्यसें युधिष्ठिर, धर्मराजाकी गिन्तीमें गिनाये गये, ऐसा जानकर असत्य बोलनेकी या प्रयोजन विगर वहोत बोलनेकी आदत छोडकर हितमितभाषी बनजाना, किसीकों अप्रीति खेद पैदा होय वैसा बोलनेकी आदत यत्नसें छोडदेनी चाहियें.

४ शील कबीभी नहि छोडना.

ब्रह्मचर्य व्रत या सदाचारके नियम चाहें वैसें संकटमें भी लोप देनेकी इच्छा नहि करनी. सत्यवंत अपने व्रतोंको प्राणोंकी समान गिनते हैं, यानि अखंडव्रती रहते है, सोही सच्चे शूरवीर गिने जाते है.

५ कबीभी कुशीलजनके संग निवास नहि करना.

कुत्सित आचारवालेके साथ रहेनेसें 'सोबते असर' यह कहेनावत मुजब अपने अच्छे आचारोंको अवश्य धोखा—धक्का पहुंचता है और लोकापवादभी आता है; इसी लिये लोकापवाद भीरुजनोंकों वैसे भ्रष्टाचारीयोंकी सोवत सर्वथा त्याग देनीही योग्य है. सोवत करनेकी चाहना हो तो कल्पवृक्षके समान शीतल छांउके देनेवाले संत पुरुषकी ही सोबत करोकि, जिस्सें सब संसारका ताप दूरकर तुम परम शांत रस चाखनेकों भाग्यशाली बन सको.

६ गुरुवचन कदापि नहि लोपना.

एकांत हितकारी सत्य—निर्दोष मार्गकोंही सदा सेवन करनेवाले और सत्य मार्गकों दिखानेवाले सद्गुरुका हितवचन कदापि

लोपन नहि करना. किन्तु प्राणांत तक तद्वत् वर्त्तन करनेकों प्रयत्न करना यही शास्त्रका सारांश है. वैसे सद्गुरुकी आज्ञा पूर्वकही सब धर्म कर्म-कृत्य सफल है. अन्यथा निष्फल कहाजाता है. इस लिये सदा सद्गुरुका आशय समझकर तद्वत् वर्त्तनमें उद्युक्त रहेना यही सुविनीत शिष्यका शुद्ध लक्षण है.

७ (अ) चपलता अजयणासें नहि चलना.

अजयणासें चलनेके सबबसें अनेकशः स्खलना होने उपरांत अनेक जीवोंका उपघात, और किंचित् अपनाभी घात होनेका संभव है. इस लिये चपलता छोडकर समतासें चलना, जिस्सें स्व परकी रक्षा पूर्वक आत्माका हित साध सके.

(ब) उद्भट वेष नहि पहनना.

अति उद्भट वेष-पोषाक धारण करनेसें यानि स्वच्छंदपना आदरनेसें लोगोंके भीतर हांसी होती है, इसलिये आमदनी और खर्चा देख-तपास कर घटित वेष धारण करना. जिस्की कम आमदनी हो उस्कों झूंठे दबदबेवाला पोषाक नहि रखना चाहियें. तथा धनवंत हो उस्कों मलीन-फट्टे टूटे हालतवाला पोषाक रखना वोभी बेमुनासीब है.

८ वक्र विषम दृष्टिसें नहि देखना.

सरल दृष्टिसें देखना, इसमें बहोतसें फायदे समाये हैं. शंकाशीलता टल जाय, लोगोमें विश्वास बैठे, लोकापवाद न आने पावै, स्व परहित सुखसें साध सकै, ऐसी समदृष्टि रखनी चाहियें. अज्ञा-

नताके जोरसें वक्र बोलकर और वक्र चलकर जीव बहोत दुःखी होते हैं; तदपि यह अनादिकी कुचाल सुधार लेनी जीवकों मुश्केल पडती है. जिस्की भाग्यदशा जाग्रत हुइ है वा जाग्रत होनेकी हो वोही सीधे रस्ते चल सकता है, ऐसा समझकर धूम्रकी मुठी भरने जैसा मिथ्या प्रयास नहि करतें सीधी सडकपर चलकर स्वहित साधन निमित्त सुज्ञ मनुष्यकों नहि चूकना चाहियें. ऐसी अच्छी मर्यादा समालकर चलनेसें क्रुधित हुवा दुर्जनभी क्या विरुद्ध बोल सकेगा ? कुच्छभी छिद्र न देखनेसें किंचित् एडी तेडी बातभी नहि बोल सकता है. इसलिये निरंतर समदृष्टि रखकर चलना कि जिस्सें किसीकों टीका करनेकी जरुरत न रहने पावै.

९ अपनी जीव्हा नियमसें रखनी.

जीव्हाकों वश्य करनी, निकम्मा नहि बोलना. जरुरत मालूम हो तो बिचारकर हितमितही भाषण करना. रसलंपट होकर जीव्हाके वश्य पडनेसें रोगादि उपाधि खडी होती है. तथा बोलनेमें मर्यादा बहार नहि जाना. जीभके वश्य पडे हुवेकी दूसरी इंद्रियें कुपित होकर उन्होंकों गुलाम बनाके बहोत दुःख देती है. इस हेतुसें सुखार्थीजन जीभके तावे न होकर जीभकोंही तावे कर लेवैं वोही सबसें बहेतर है.

१० बिना बिचार कुछभी काम नहि करना.

सहसा—अविवेक आचरणसें बडी आपदा—विपत्ति आ पडती है. और विचारकर विवेकसें वर्त्तने वालेकों तो स्वयमेव संपदा आ

कर अंगीकार कर लेती है; वास्ते एकाएक साहस काम कीये वि-
गर लंबी नजरसें विचार, उचित नीति आदरके वर्तना चाहियें कि
जिस्से कवीभी खेद–पश्चाताप करनेका प्रसंगही न आवे. सहसा काम
करने वालेकों बहोत करके वैसा प्रसंग आये विना रहताही नहीं.

११ उत्तम कुलाचारकों कवीभी लोपना नहि.

उत्तम कुलाचार, शिष्ट–मान्य होनेसें धर्मके श्रेष्ठ नियमोंकी तरह आदरने योग्य है. मद्यमांसादि अभक्ष्य वर्जित करना, परनिंद्या छोड देनी, हंसवृत्तिसें गुणमात्र ग्रहण करना, विषयलंपटता–असंतोष तजकर संतोष वृत्ति धारण करनी, स्वार्थवृत्ति तजके निःस्वार्थपनसें परोपकार करना, यावत् मद मत्सरादिका त्याग कर मृदुतादि विवेक धारणरुप उत्तम कुलाचार कौन कुशलकुलीनकों मान्य न होय ? ऐसी उत्तम मर्यादा सेवन करने वालेकों कुपित हुवा कलिकालभी क्या कर सक्ता है ?

१२ किसीकों मर्मवचन नहि कहेना.

मर्मवचन सहन न होनेसे कितनेक मुग्ध लोग मानके लिये मरणके शरण होते हैं, इस लीये वैसा परकों परितापकारी वचन कबीभी नहि उच्चरना. मृदुभाषण स्हामने वालेकोंभी पसंद पडता है. चाहे वैसा स्वार्थ भोगसें स्हामनेवालेका हित होय वैसाही विचारकर बोलना. सज्जनकी वैसी उत्तम नीति कबीभी नहि उल्लंघनी. लोगोंमेंभी कहेनावत है कि ' जहांतक शक्करसें पित्त समन हो जाय वहां तक चिरायता काहेकुं पिलाना चाहियें ?

१३ किसीकों कभीभी झूंठा कलंक नहि देना.

किसीकों झूंठा कलंक देनेरुप महान् साहससें बुरेही परिणाम आनेके उग्र संभवसें वो सर्वथा निंद्य और त्याज्य है. दूसरेकों दुःख देनेकी चाहना करनेवाला आपही आप दुःख मांग लेता है. केहनावत है कि–' खड्डा खोदे सोही पडे.' श्याने जनकों इतनीभी शिखावन वस है. जेसें कुशिक्षितकों अपनाही शस्त्र अपनाही प्राण लेता है उन्हके सादृश इनकोंभी समझकर सच्चे सुखार्थी होकर सत्य और हितमार्गपरही चलनेकी जरुरत रखनी उचित है. केहेनावतभी चली आती है कि–' सांचकों काहेकी आंच है ?'

१४ किसीकोंभी आक्रोश करके नहि कहेना.

कोप करकें किसीकों सच्ची वातभी कहनेसें लाभके वदले गेरलाभ हाथ आता है, इस वास्ते आक्रोश करकें कहना छोडकर स्वपरकों हितकारी और नम्रताइसें सच्ची वात विवेकपूर्वकही कहनेकी आदत रखनी चाहीयें. समझदार मनुष्यकों लाभालाभका विचार करकेही चलना घटित है. यही कठिन सज्जन रीतिहै कि जो हरएक हितार्थियोंकों अवश्य आदरणीय है.

१५ सबके उपर उपकार करना.

मेघकी तरह सम विषम गिनना छोडकर सबपर समान हितबुद्धि रखनी. जैसें वृक्ष नीच उंच सबकों शीतल छांउं देता है, गंगाजल सबका समान प्रकारसें ताप दूर करता है, चंदन सबकों समान सु-

गंधी देता है, वैसेही उपकारी जन जगत्‌मात्रका उपकार करता है. अपकार करनेवाले परभी उपकार करे सोही जगत्‌में बडा गिना जाता है.

१६ उपकारीका उपकार कभी नहि भूलना.

कृतज्ञजन किये हुवे उपकारकों कबीभी नहि भूलता है. और जो मनुष्य किये हुवे उपकारकों भूल जाता है वो कृतघ्न कहा जाता है. और इससेभी जो जन उपकारीका अहित करनेकों इच्छे वो तो महान् कृतघ्न जानना. माता, पिता, स्वामी और धर्मगुरुके उपकारका बदला दे सके ऐसा नहि है. तथापि कृतज्ञ मनुष्य उन्होंकी बनसके उतनी अनुकूलता संभालकर उन्हके धर्मकार्यमें सहायभूत होनेके लिये ठिक ठिक प्रयत्न करे तो कदापि अनृणी हो सकता है. सत्य सर्वज्ञभाषित धर्मकी प्राप्ति करानेवाले धर्म-गुरुका उपकार सर्वोत्कृष्ट है. ऐसा समझकर सुविनीत शिष्य उन्ह-की पवित्र आज्ञामें वर्त्तनेके लिये पूर्ण खंत रखता है. और यह फरमानसें विरुद्ध वर्त्तन चलानेवाले गुरुद्रोही महा पातकी गिने जाते है.

१७ अनाथकों योग्य आश्रय देना.

अपनी आजीविकाके विषे जिनकों कुछभी साधन नहि है. जो केवल निराधार है. ऐसे अशक्त अनाथोंकों यथायोग्य आलंबन आधार—आश्रय देना यह हरएक शक्तिवंत—धनाढय दाना मनुष्यों-की खास फर्ज है. दुःखी होते हुवे दीन जनोंका दुःख दिलमें धारण करके उन्होकों वकतके ऊपर विवेकपूर्वक मदद देनेवाले स-

मयकों अनुसरके महान् पुन्य उपार्जन करते है. और उन्हके पुन्य-बलसें लक्ष्मीभी अखूट रहेती है. कुंएके पानीकी तरह बडी उदारतासें व्यय की हुइ हो तोभी उदारताकी लक्ष्मी पुन्यरुपी अविच्छिन्न जल प्रवाहकी मददसें फिर पूर्ण होजाती है. तदपि कृपणकों ऐसी सुबुद्धि पूर्व अंतरायके योगसें ध्यानमें पैदाही नाहि होती उससें वो विचारा केवल लक्ष्मीका दासत्वपना करके अंतमें आर्त्त ध्यानसें अशुभ कर्म उपार्जन कर हाथ घिसता—रीते हाथसे यमके शरण होता है. वहां और उसके बादभी पूर्व अशुभ अंतराय कर्मके योगसें वो रंक अनाथकों महा दुःख भुक्तना पडता है. वहां कोइ शरण—आधारभूत नहि होता है. अपनीही भूल अपनकों नडती है. कृपण-भी प्रत्यक्ष देख सकता है कि कोइभी एक कवडी—कौडीभी साथ बांधकर ल्याया नहि और अवसान समय कौडी बांधकर साथ ले जा सकेगाभी नहि; तदपि विचारा मम्मण शेठकी तरह महा आर्त्तध्यान धरता और धन धन करता हुवा झूर झूरकें मरता है. और अंतमें बहोतही बूरे विपाक पाता है. यह सब कृपणताके कटुफल समझकर अपनकोंभी वैसेही बूरे विपाक भुक्तने न पडे, इस लिये पानी पहिले पाल बांधनेकी तरह अव्वलसेंही चेतकर अपनी लक्ष्मीके दास नहि; लेकिन स्वामी बनकर उसका विवेकपूर्वक यथास्थानमें व्यय करकें उसकी सार्थकता करनेके लिये सद्गृहस्थ भाइयोंको जाग्रत होनेकी खास जरुरत है. नहि तो याद रखना कि, अपनी केवल स्वार्थ वृत्तिरुप महान् भूलके लिये

अपनकोंही आगें दुःख सहन करना पडेगा, इसिलिये हृदयमें कुछ भी विचार-पश्चाताप करके सच्चा परमार्थ मार्ग अंगीकार कर अपनी गंभीर भूल सुधार लेनेकों चूकना सो ध्याने सद्‌गृहस्थोंकों योग्य नहि है. श्री सर्वज्ञ प्रभुने दर्शाया हुवा अनंत स्वाधीन लाभ गुमा देना और अंतमें रीते हाथ घिसते जाकर परभवमें अपनेही किये हुवे पापाचरणके फलके स्वादका अनुभव करना यह कोइभी रीतिसें विचारशलि सद्‌गृहस्थोंकों लाजीम-शोभारुप नहि है. तत्वज्ञानी पुरुषोंके यही हितवचन है, जो पुरुष यही वचनोंकों अमृत-बुद्धिसें अंगीकार कर विवेकपूर्वक आदरते हैं वे अत्र और परत्र अवश्य सुखी होते हैं.

१८ किसीके अगाडी दीनता नही दिखलानी.

तुच्छ स्वार्थकी खातिर दूसरेके अगाडी दीनता बतलानी योग्य नहि है. यदि दीनता-नम्रता करनेकों चाहो तो सर्व शक्तिमान् सर्वज्ञकी करो; क्योंकि जो आप पूर्ण समर्थ हैं और अपने आश्रितकी भीड भांग सकते हैं. मगर जो आपही अपूर्ण अशक्त है वो शरणागतकी किस प्रकारसें भीड भांग सके? सर्वज्ञ-प्रभुके पास भी विवेकसें योग्य मंगनी करनी योग्य है. वीतराग परमात्माकी किंवा निर्ग्रंथ अणगारकी पास तुच्छ सांसारिक सुखकी प्रार्थना करनी उचित नहि है. उन्होंके पास तो जन्म मरणके दुःख दूर करनेकीही अगर भवभवके दुःख जिससें हट जाय ऐसी उत्तम सामग्रीकीही प्रार्थना करनी योग्य है. यद्यपि वीतराग प्रभु

राग द्वेष रहित है; तथापि प्रभुकी शुद्ध भक्तिका राग चिंतामनी रत्नकि सादृश फलीभूत हुए विगर रहेता ही नहि. शुद्ध भक्ति यहभी एक अपूर्व वश्यार्थ प्रयोग है. भक्तिसें कठिन कर्मकाभी नाश हो जाता है, और उसीसें सर्व संपत्ति सहजहीमे आकर प्राप्त होती है. ऐसा अपूर्व लाभ छोडकर बंबूलकों बाथ भरने जैसी तुच्छ विषय आशंसनासें विकल्पनसें वैसीही प्रार्थना प्रभुके अगाडी करनी कि अन्यत्र करनी यह कोइ प्रकारसें गुणजनोकों मुनासिबही नहि है. सर्व शक्तिवंत सर्वज्ञ-प्रभुकी समीप पूर्ण भक्ति रागसें विवेक पूर्वक ऐसी उत्तम प्रार्थना करो यावत् परमात्म प्रभुकी पवित्र आज्ञाकों अनुसरनेके लिये ऐसा उत्तम पुरुषार्थ स्फुरायमान करो कि जिस्सें भवभवकी भावठ टलकर परम संपद प्राप्तिसें नित्य दिवाली होय, यावत् परमानंद प्रकटायमान होय, मतलबकि अनंत अबाधित अक्षय सहज सुख होय. सेवा करनी तो ऐसेही स्वामिकी करनीके जिस्सें सेवक भी स्वामिके समान ही हो जावै.

१९ किसीकी भी प्रार्थनाका भंग नहि करना.

मनुष्य जब बडी मुशीबतमें आ गया हो तबही बहोत करकें गर्व टेक छोडकर दूसरे समर्थ मनुष्यकों अपनी भीर मांगनेकी आशासें प्रार्थना करता है. ऐसें समझकर दानादिलका ख्याना और समर्थ मनुष्य उसकी प्रार्थना योग्य ही होय तो उनका प्राणांत तकभी भंग नहि करके स्हामने वालेका दुःख दूर करने लायक जो

कुछ देना उचित हो तो भी प्रियभाषण पूर्वकही देना; लेकिन उच्छृंखलवृत्तिसें नहि. देना प्रियवाक्य पूर्वक दान देना सोही भूषण रूप है अन्यथा दूषणरूप ही समझना. ऐसा हिताहितको विवेक पूर्वक सुज्ञ मनुष्यकों वर्त्तन चलानाही योग्य है. नहि तो दिया हुवा दानभी व्यर्थ हो जाता है और मूर्खमें गिनती होती है.

२० दीनवचन नहि बोलना.

दीन वचनोसें मनुष्यका भार–वोज हलका होजाता है और फिर सुज्ञजन परीक्षाभी करलेते हैं कि यह मनुष्य कपटी या तो खुशामदखोर है. गुणवंतको गुणि जानकर उचित नम्रता बतलानी वो दीनपनेमें नहि गिनीजाती है. गुणीपुरुषोंके स्वभाविक ही दास बनकर रहना यह अपनेमें स्वाभाविक गुण गुणप्राप्तिके निमित्त होनेसें वो दूषितही नहि गिनाजाता है, इसलिये विवेक लाकर जरुरत हो तब अदीन भाषण करना कि जिससें स्वार्थ हानि होने न पावे, और यह उत्तम नियम विवेकी जन जीवन पर्यंत निभावे तो अत्यंतही शोभारुप है.

२१ आत्मप्रशंसा नहि करनी.

आत्मश्लाघा यानि आपवडाइ करकें खुश होना यह महान् दोष है. इससें महान् पुरुषोंका अपमान होता है. ऐसें महत्पुरुषोंकी आशातना–अवमानता करनेसें कर्मबंधन कर आत्मा दुःखी होता है. सज्जन पुरुषोंकी यही रीतिही नाहि है. सज्जन पुरुष तो दूसरेके

परमाणु जितनेभी गुणोंकों वखानते हैं, और अपना मेरुके समान बडे गुणोकाभी गान नहि करते. तो गुणके विगर घमंड रखकर अपूर्ण घटकी तरह न्यूनता दिखलानी सो कितनी वडी भूल और विचारने जैसी वात है. यह वातका बिचार कर पूर्ण घडेकी समान गंभीरताइ धारण करनी सीख लेनी और आपवडाइ करनी छोड देनी; क्यों कि आपवडाइ करनेमें कदम दरकदम परनिंदाका दोष लगता है. परनिंदाके पाप अति बूरे होनेसें मिथ्या आपवडाइ करनेवाला प्राणी वैसें पापकर्मोसें अपने आत्माकों मलीन कर पर-भवमें या क्वचित् यही भवमें वहोत दुःखी हालतमें आजाता है.

२२ दुर्जनकीभी कभी निंदा नहि करनी.

परनिंदा करनेसें कुछभी फायदा नहि है, मगर निंदा करने-वालेकों वडा गेरफायदा तो होता है. अपना अमूल्य वख्त गुमाकर आपही मलीन होता है. निंदा यह स्हामनेवालेकों सुधारनेका मार्ग नहि है किंतु विगाडनेका रस्ता है, एसा कहाजाय तो कुछ झूंठा नहि है. सज्जन जन तो वैसे निंदकोसें ज्यादा ज्यादा जाग्रत–सचेत रहकर गुण ग्रहण करते हैं; लेकिन दुर्जन तो उलटे कुपित होकर दुर्जनताकीही वृद्धि करते है. इसिलिये दुर्जनकों निंदासेंभी हानिही हाथ आती है. संत–सज्जनोंकी निंदासें सज्जन जनकों तो कुछभी औगुन मालूम होता नहि है; तदपि वैसे उत्तम पुरुषोंकी नाहक निंदा करनेसें आशयकी महा मलीनता होनेके

लिये निकाचित् कर्मबंधकर निंदक नरकादि अधोगतिमेंही जाते हैं. निंदा, चाडी, परद्रोह तथा असत्यकलंक चडानेवाले वा हिंसा, असत्यभाषण, परद्रव्यहरण और परस्त्री गमनादि अनीति वा अनाचार करनेवाले, क्रोधांध, रागांध होनेवालेके जो जो बूरे हाल होनेका शास्त्रकारोंने वर्णन कीया है वो, तथा उन संबंधी हितबुद्धिसें जो कुछ कहना वो निंदा नहि कही जाती है, मगर हितबुद्धि विगर द्वेषसें पिरायेकी बातें कर दिल दुभाना सो निंदा कहि जाती हैं. और वह निंद्य हैं, इसलिये नाम लेकर पिरायेकी बदी करनेका मिथ्या प्रयास नहि करना. कबी निंदा करनेका दिल हो जाय तो सच्चे और अपनेही दोषोंकी निंदा करनी कि जिससें कुछभी दोषमुक्त होता है. केवल दोषोंकीभी निंदा करनेसें कुछ कार्य सिद्धि नहि होती, तोभी परनिंदासें स्वनिंदा बहोतही अच्छी है.

२३ बहोत नहि हंसना.

बहोत हंसना सो भी अहितकारी है. बहोत हंसनेसें परिणाममें रोनेका प्रसंग आता हैं. हंसनेकी बूरी आदत मनुष्यको बडी आपत्तिमें डालती हैं. बहोत वकत हंसनेकी आदत होनेसें मनुष्य कारणमें या विगर कारणसें भी हंसता है और वैसा करनेसें राज्यसभा या अंतःपुरमें हंसनेवालेकी बडी खुवारी होती है, इसलिये वो बूरी आदत प्रयत्न करके छोडदेनीही योग्य हैं. कहेनावतभी है कि 'हंसी विपत्तिका मूल हैं.' हाथसें करके जीको जोखममें डालना

हो वा हाथसें करके उपाधि खडी करनी हो तो ऐसी कुटेव रखनी. अन्यथा तो उसको त्यागदेनी उसमेंही सुख हैं. सभ्यजनकोभी यही नीति है. मुमुक्षु—मोक्षार्थी संत मुसाधुओंको तो वो कुटेव सर्वथा त्यागदेने लायकही हैं. ऐसी अच्छी नीति पालन करनेसेंही प्राणी धर्मके अधिकारी वनकर सर्वज्ञभाषित धर्मको सम्यग् प्रमाद रहित सेवन कर सद्भाग्यके भागीदार होके अंतमें अक्षय सुख संपादन कर सकता हैं.

२४ वैरीका विश्वास नहि करना.

विश्वास नहि करने योग्य मनुष्यका विश्वास करनेसें वडीहानि होती है, इस लिये पहिलेसेंही खबरदार रहना कि जिस्से पीछेसें पश्चाताप न करना पडे. काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सरादिकों अंतरंग शत्रु समझकर उन्होंको कबीभी विश्वास सच्चे सुखार्थीको करना योग्य नहि है. सर्वज्ञ प्रभुने पंच प्रमादोंको प्रबल शत्रुभूत कहे हैं.

जिस्के योगसें प्राणी प्रकर्षकर स्वकर्तव्यसें भ्रष्ट हो यावत् बेभान होता हैं सोही प्रमाद कहे जाते हैं. मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा यह पांच प्रमाद है. और यह पांचोंमेंसें एक हो तो भी महा हानिकारी है, और जब पांचों प्रमादोंके वश जो मनुष्य पड गया हो उस्का तो कहनाही क्या ?

मद्यपानसें लक्ष्मी, विद्या, यश, मानादिकी हानि होती हैं सो जगत् प्रसिद्धही है.

विषय विकारके तावे होनेवाला बडा योगीश्वर हो; ब्रह्मा हो तोभी स्त्रीका दास बन जाता हैं और हिम्मत हारकर एक अबला-काभी दीन दास बनता है यही विषयांधका फल है.

कषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ यह चारोंकी चंडाल चोकडी कही जाती है. उन्हका संग करनेवाला यावत् उस्में तन्मय होकर वा हुवा क्रोधांध यावत् लोभांध कुछभी कृत्याकृत्य हिताहित नंहि देख सकता. कषाय—कलुषित मति फिर कुछ औरही नया देखाव देता हैं. वृद्धा है पर बालककी तरह और पंडित हैं पर मूर्खकी तरह यावत् भूतग्रस्तकी मुवाफिक विपरीत—विरुद्ध चेष्टा करता है, जिस्सें तिस्का बडा लोकापवाद प्रसरता हैं. कषायांध विवेकशून्य पशुकी तरह अपमान पाता है. यावत् बुरे हालसें मृत्यु पाकर दुर्गतिकाही भागी होता है. इसलिये क्रोधादि कषायकी सेवा करनेवालेकों मनुष्य नहि मगर हैवान समझना. कट्टे दुष्मन-सेंभी ज्यादा खाना खराबी करनेवाले कषायही है, ऐसा समझकर कुछ हृदयमें भान लाया जाय तो अच्छा. कट्टे शत्रु एकही भवमें दुःख दे सकते हैं.

निद्रादेवीके वश पडे हुवे प्राणीकीभी बहोत बुरी हालत होती है. जो निद्राके तावे न होकर निद्राकोंही तावे करले विवेक धारण करते हैं उन महाशयोंकों लीलाल्हेर होती है.

विकथा—जिस्के अंदर स्व पर हित तत्वसें संस्कारित न हुवा हो, वैसी वाहियात बातें करनी सो विकथायें कही जाती हैं. राज-

कथा, देशकथा, स्त्री कथा तथा भक्त—भोजन कथा यह चार विकथाकों त्याग कर जिस्सें स्व पर हित अवश्य साध सके वैसी धर्म कथा कहनी योग्य है. विकथा करनेवालेका कीमती वकत कौडीके मूल्यमें चलाजाता हैं, और विवेकपूर्वक धर्मकथा कहनेवालेका वकत अमूल्य गिनाजाता हैं; तदपि विवेकविकल लोक विकथा वर्जकर उत्तम धर्मकथासें वक्तकों सार्थक करनेके वास्ते खंत नहि रखते हैं, तो उन्होंको आगे वहोत पस्तानाही पडेगा. और जो विवेकपूर्वक यह हितोपदेशकों हृदयमें धारणकर उस्का परमार्थ विचारकें सीधे रस्ते चलेंगे तो सर्वत्र सुखी होवेंगे. सच्चे सुखार्थीजन तो यह पापी पांचों प्रमादके फंदमें न फंसकर अप्रमाद दंडसें उन्होंका नाश करनेकेलिये उद्युक्त रहनाही दुरुस्त धारते है. अप्रमादके समान कोइभी निष्कारण निःस्वार्थि बांधव नहि हैं. इसलिये पापी प्रमादोंके ऊपरका विश्वास परिहरकें महा उपकारी अप्रमाद बांधवमेंही सर्व विश्वास स्थापन करना कि जिस्सें सर्वत्र यश प्राप्त होय.

२५ विश्वासुकों कबीभी दगा नहि देना.

विश्वास रखकर जो शरण आवे उस्कों दगा देना उस्के समान कोइ—एकभी ज्यादा पाप नहि है. वो गोदमें सोते हुवेका सिर काट देने जैसा जुल्म है. अच्छे अच्छे बुद्धिशाली—लोगभी धर्मके लिये विश्वास करते है. वैसे धर्मार्थी—जनोंको स्वार्थांध वनकर धर्मके वहानेसेही ठगलेवे यह वडा अन्याय है. आपहीमें पोलंपोल

होवे तोभी गुणी गुरुका आडंबर रचकर पापी विषयादि प्रमादके परवशपनेसें भोले लोगोंको ठगलेवै, उनके जैसा एकभी विश्वास-घात नही हैं. भोले भक्त जानते है कि अपन गुरुकी भक्ति करके गुरुका शरण लेकर यह भवजल तिर जाएंगे; लेकिन पत्थरकी नावके मुवाफिक अनेक दोषोंसें दूषित है तो भी मिथ्या महत्त्वताको इच्छनेवाले दंभी कुगुरु आपकों और परीक्षा रहित अंधप्रवृत्ति करनेवाले आपके भोले आश्रित शिष्य भक्तोंको, भवसमुद्रमें डूबा देते हैं. और ऐसें स्वपरकों महा दुःख उपाधिमें हाथसें डाल देते है, जो ऐसा कार्य करते है वो धर्मठग कुगुरुओंको यह संसारचक्रमें परिभ्रमण करनेके समय महा कटु फलका स्वादानुभव लेना पडता है. इस वास्तेही श्री सर्वज्ञ देवने धर्मगुरुओंको रहनी कहनी बरोबर रखकर निर्दंभतासें वर्त्तनेकाही फरमान कीया है. अपन प्रकटतासें देख सकते है कि कितनेक कुमतिके फंदमें फंसे हुवे और विषय वासनासें पूरित हुवे हो; तदपि धर्मगुरुका डॉल-स्वांग धारण कर केवल अपना तुच्छ स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये अनेक प्रपंच जाल गुंथन कर और अनेक कुतर्क करकें सत्य और हितकर सर्वज्ञके उपदेशकोंभी छुपाते हैं इस तरहसें आप धर्मगुरुही धर्मठग वनकर भोले हिरन सादृश केवल कर्णेंद्रियके लोलूपी आंखे मींचकर हाजी हा करनेवाले अपने आश्रित भोले भक्तोंको ठगकर स्वपरका विगा-डते हैं. सो विवेकी हंस कैसें सहन कर सकें? दिन प्रतिदिन वो पापी चेप पसार कर दुनियांको पायमाल करते है, उससें वो

उपेक्षा करने लायक नहि है. जगत् मात्रकों हितशिक्षा देनेकेलिये बंधाये हुवे दिक्षित साधुओंकि जो सर्वज्ञ प्रभुकी पवित्र आज्ञा–वचनोंकों हृदयमें धारन करनेवाले और निष्कपटतासें तद्वत् वर्त्तनेकों स्वशक्ति स्फुरानेहारे और समस्त लोभ लालचकों छोडकर जन्म मरणके दुःखसें डरकर लेश मात्रभी वीतराग वचनकों न छुपाते श्री सर्वज्ञकी आज्ञाकों पूर्ण प्रेमसें आराधनेकी दरकार कर रहे है, वोही धर्मगुरुके नामकों सत्यकर वतलानेकों शक्तिमान् हो सकते हैं, वैसे सिंहकिशोरही सर्वज्ञके सत्य पुत्र है, दूसरे तो हाथीकें दांतोंकी समान दिखानेके दूसरे और खानेके–चर्वण करनेके भी दूसरे है. तिनेके नामकों तो डेढ कोसका नमस्कार है ! भो भव्यो ! विवेक चक्षु खोलकर सुगुरु और कुगुरु–सच्चे धर्मगुरु और धर्मठगकों वरावर पिछानकें लोभी, लालचु और कपटी कुगुरुकों काले सांपकी तरह सर्वथा त्याग कर. अशरणशरण धर्मधुरंधर सिंहकिशोर समान सत्य सर्वज्ञ पुत्रोंका परम भक्ति भावसें सेवन–आराधन करनेकों तत्पर हो जाओ ! जिससें सब जन्म जरा और मरणकी उपाधी अलग कर तुम अंतमें अक्षय पद प्राप्त करो ! उत्तम सारथी या उत्तम नियामक समान सद्गुरुकेही दृढ आलंबनसें अगाडीभी असंख्य प्राणि यह दुःखमय संसारका पार पाये हैं. अपनकोंभी ऐसेही महात्माका सदा शरण हो. ऐसे परोपकारशील महात्मा कवीभी प्राणांत तकभी परवंचना करतेही नहि.

२६ कृतघ्नता किये हुवे गुणका लोप कबीभी नहि करना.

उत्तम मनुष्य औगुनके उपर गुन करते है. मध्यम मनुष्य दूसरेने गुन कीया हो तो आप अपनी वकत हो उस वकत वने जितना वदला देना चाहते हैं; परंतु अधम मनुष्य तो कीये हुवे गुनकों भी लोप करते हैं. ऐसी अधम वृत्तिवाले अज्ञानी अविवेकी जनसें तो कुत्तेभी अछे गिनजाते है, कि जो थोडाभी रोटीका टुकडा या खुराक खाया हो, तो खिलानेवालेकों देखकर अपनी पुंछ हिलाकर खुश हो अपना कृतज्ञपना जाहिर करते हुवे उनके धरकी रात दिन चोकी करते है ऐसा समझकर कृतज्ञता आदर कर धर्मकी ल्यायकात प्राप्त कर कुछभी धर्म आराधना करकें स्व–मानवपना सार्थक करना. अन्यथा मातुश्रीकी कुक्षीकों धिःकार पात्र वनाकर–शरमींदी वनाकर भूमिकों केवल भारभूत होने जैसा है. समझ रखना कि, कृतज्ञ विविकीरत्नोंकीही माता रत्नकुक्षी कहलाती है. ऐसा न्यायका रहस्य समझकर स्वपर हितकारी विवेक धारण करनेका यत्न करना.

२७ सद्गुणीकों देखकर प्रसन्न होना.

वो प्रमोद या मुदिता भाव कहाजाता है. चंद्रकों देखकर चकोर जैसें खुशी होता है, और मेघगर्जना सुनकर मयूर जैसें नाचता है तैसें सद्गुणीके दर्शन मात्रसें भव्यचकोरकों हर्ष–प्रकर्ष

होना चाहियें. दूसरेके सद्गुणोंकी प्रतीति हुवे पीछेभी उनके उपर द्वेष धरना ये दुर्गतिकाही द्वार है, वास्ते केवल दुःखदाइ द्वेषबुद्धि त्यागकर सदैव सुखदाइ गुणबुद्धि धारण कर विवेकी हंसवत् होनेके लिये सद्गुणीकों देखकर परम प्रमोद धारण करना.

२८ जैसे तैसेका संग स्नेह नहि करना.

'मूरख साथ सनेहता, पग पग होवे कलेश.' ए उक्ति अनुसार मूर्ख कुपात्रके साथ प्रीति बांधनी नहि; क्योंकि मूर्खकी प्रीतिसें अपनीभी पत जाती है. यदि स्नेह करना चाहते हो तो विवेकी हंस सदृश, संत-सुसाधु जनके साथही करो कि जिस्सें तुम अनादिका अविवेक त्याग कर सुविवेक धरनेमें समर्थ हो सको. खास याद रखना चाहियें कि, संत सुसाधुके समागम समान दूसरा उत्तम आनंद नाहि है. ऐसा कौन मूर्खशिरोमणि हो कि अमृतकों छोडकर हालाहल विष सादृश अविवेकीकी संगति चाहे? श्याना मनुष्य तो कवीभी न चाहेगा! जो भूंडिये जैसी वृत्तिवाला होगा वो तो जहां तहां अशुचि स्थानमेंही भटकता फिरेगा उस्में क्या आश्चर्य है? क्योंकि जिस्का जैसा जातिस्वभाव होवे वैसाही कृत्य कीया करै. ऐसे, नीच जनोंकी सोबतसें अछे सुशील मनुष्योंको भी क्वचित् छिंटे लगते है.

२९ पात्रपरीक्षा करनी चाहियें.

जैसें सुवर्णकी कस, छेदन, तापादिसें परीक्षा की जाती है,

जैसें मोतिकी उज्वलता आदिसें परीक्षा कीइ जाती है, तैसें उत्तम पात्रकी भी सुवृत्तिसें सद्गुणोंकी परीक्षा करनी चाहियें. सुपात्रकी अंदर उत्तम वस्तु शोभायमान या कायम होती है. सुपात्रमें विवेक पूर्वक वोया हुवा उत्तम वीज शुद्ध भूमिकी तरह उत्तम फल देता है. छीपमें पडा हुवा स्वातिजलबिंदुका सच्चा मोति पकता है, और साँपके मुंहमें पडाहुवा वोही (स्वाति) जलबिंदु झहररूप होता है; वास्ते पात्रपरीक्षा कर दान, मान, विद्या, विनय और अधिकार वगैरः व्यवहार करना योग्य है. सुपात्रमें सव सफल होता है, और कुपात्रमें नफेके वदले टोटा–अनर्थ पैदा होता है. इस लिये पात्रापात्रका विवेक वुद्धिशालीकों अवश्य करना कि जिस्सें स्वपरकों अत्र समाधि पूर्वक धर्माराधनसें परत्र–परलोकमें भी सुखसंपत्ति होती है, सोही बुद्धि प्राप्तिका शुभ फल है.

२० कवीभी अकार्य नहि करना.

प्राणांततक भी नही करने योग्य निंद्य कार्य सज्जन जन करतेही नही जो लोग प्रमाद वश होकर (परवशतासें) लोग विरुद्ध वा धर्म विरुद्ध अति निंद्यकर्म करें उन्होंकों सज्जनोंकी पंक्तिसें वहार ही गिनने चाहियें. गुण दोष, लाभालाभ, कृत्याकृत्य, उचितानुचित, भक्ष्याभक्ष्य. पेयापेय वगैरः उचित विवेकविकल मनुष्यकों पशुवत् समझना और उचित विवेक पूर्वक सदैव शुभकार्योंके सेवनमें उद्यमशील मनुष्यकों, एक अमूल्य हीरेके समानही जानना. ऐसे जनोंका जन्मभी सार्थक है.

३१ लोकापवाद प्रवर्त्तन हो वैसा नहि वर्त्तना.

जिस कार्यसें लोगोमें लघुता होय वैसा कार्य बिना सोचे-विचारे (अघटित कार्य) करना नहि. जिस्सें धर्मको लांछन लगे-धर्मकी हीलना-निंधा होय-शासनकी लघुता होय वैसा कार्य भव-भीरु जनको प्राणांत तकभी नहि करना चाहियें. पूर्व महान् पुरुषोंके सद्वर्त्तनकी तर्फ लक्ष रखकर जिस प्रकारसें अपनी या दूसरेकी-यावत् जिनशासनकी उन्नति होय उस प्रकार विवेकसें वर्त्तना. 'लोग विरुद्ध चाओ' यह सूत्रवाक्य कदापि भूल नहि जाना, जिस्से सब सुख साधनेका शुभ मनोरथ कबीभी फलिभूत होय वैसे समालकर चलना सोही सर्वोत्तम है.

३२ साहसीकपना कबीभी त्यागदेना नहि.

आपत्तिके समय धैर्य, संपत्तिके समय क्षमा, सभाकी अंदर सत्य वार्त्ता निर्भय होकर कहनी, शरनागतका सब प्रकारसें शक्ति मुजब संरक्षण करना और स्वार्थभोग चहाय इतना नुकसान हो-जाता हो तथापि अदल इन्साफ देना; इत्यादि सद्गुण सत्ववंत सज्जनोमें स्वाभाविकही होते है. और ऐसे ही उत्तम जन धर्मके सत्य-सच्चे अधिकारी है. तैसे विवेकी हंसही सब मलीनता रहित निर्मल पक्ष भजकर धर्म मार्ग दीपानेके वास्ते समर्थ होते है. वैसे सत्य पुरुषोंकोंही अनंतानंत धन्यवाद है. जो सच्चा पुरुषार्थ स्फु-रायके अपना पुरुष नाम सार्थक करते है, तिनकीही उज्वल कीर्ति होती है, या निर्मल यशभी तिनकाही दिगंतमें फैलता है. जो

महाशय अचल होकर ऐसी उत्तम मर्यादा सदैव पालते है वो प्रस-न्नतासें पवित्र नीतिकों अनुसरकें अत्र अक्षय कीर्ति स्थापित कर, परत्र अवश्य सद्गति गामी होते है. तैसे साहसीक शिरोमणिकाही जन्म सार्थक है. तैसा उत्तम सात्विक साहसीक सिवा स्व जन्म निष्फल है. सचे सर्वज्ञ पुत्र उत्तम प्रकारकी शुद्ध साहसीक वृत्ति सहितही होते है. वो लरकों आश्रितोंके आधाररुप है. तिनकों सिंह किशोरकी तरह साहसीकता धारण करनीही घटित है. तिनकी आ-बादीके उपर लरको मनुष्योंके भविष्यका आधार है. समझकर सुखसें निर्वहन हो सके तैसी महाव्रत आचरनेरुप—महा प्रतिज्ञा क-रके तिनका अखंड निर्वाह करना वोही उतम साहसीकता है. वोही महान् प्रतिज्ञाका स्वच्छंद आचरणोंसें भंग करनेके समान एकभी दूसरी कायरता है ही नहि. यह दुःख दावानलसें तैसे प्रतिज्ञाभ्रष्टकी मुक्ति हो सकती नाहि, ऐसा समझकर—' तेल पात्रधर ' या राधा-वेध साधनेवालाकी, तरह अप्रमत्त होकर सर्वज्ञ प्ररुपित तत्वरहस्य प्राप्त करकें अंगीकार कीइ हुइ महा प्रतिज्ञाकों अखंड पालन करे, वो पूर्ण प्रतिज्ञावंत होकें अपना और दुसरेका निस्तार करनेमें स-मर्थ होता है. वोही सचे साहसीक गिनाये जाते है; वास्ते स्वपरकों डूबानेवाली कायरता छोडकर हरएक मुमुक्षुकों उत्तम साहसीकता धारण करनी ही श्रेष्ठ है. ऐसा करनेसें सब मलीनता दूर होकर स्व पर हितद्वारा शासनोन्नति होने पावे. अहो ! कब प्राणी काय-रता छोडकर उत्तम साहसीकता आदरेंगे और उस द्वारा स्व परकी उन्नति साधकर कब परमानंद पद प्राप्त करेंगे ! ! तथास्तु.

३३ आपत्ति वख्तभी हिम्मत रखकर रहना.

कष्टके समयभी नाहिम्मत होना नहि. जो महाशय धैर्य धारण करकें संकटके सामने अडजाते है अर्थात् वो वख्त प्राप्त होनेंपरभी उत्तम मर्यादा उल्लंधते नहि; मगर उलटे उत्तम नीतिके धोरणकों अवलंबन करके रहेते है, तिन्हकों आपत्तिभी संपत्तिरुप होती है. शत्रुभी वश होता है. वो धर्मराजाकी मुवाफिक अक्षय कीर्त्ति स्थापन करके श्रेष्ठ गति साधन करते है; परंतु जो मनुष्य वैसे वख्तमें हिम्मत हारकर अपनी मर्यादा उल्लंघन करकें अकार्य सेवनकर मलीनताका पोषन करता है, वो इस जगत्मेंभी निंदापात्र हो पापसें लिप्त हो परत्रभी अति दुःखपात्र होता है.

३४ प्राणांत तकभी सन्मार्गका त्याग नहि करना.

ज्यों ज्यों विवेकी सज्जनोंकों कष्ट पडता है त्यों त्यों, सुवर्ण, चंदन और इख [गन्ने] की तरह उत्तम वर्ण, उत्तम सुगंधि और उत्तम रस अर्पण करते है; परंतु उन्होंकी प्रकृति विकृति होकर लोकापवादके पात्र नहि होती है. ऐसी कठीन करणी करके उत्तम यश उपार्जन कर वो अंतमें सद्गतिगामी होते है.

३५ वैभव क्षय होजानेपरभी यथोचित दान करना.

चंचल लक्ष्मी अपनी आदत सार्थक करनेकों कदाचित् सटक जाय तोभी दानव्यसनी जन थोडेमेंसेंभी थोडा देनेका शुभ अभ्यास छोड देवे नहि. तैसे शुभ अभ्यासके योगसें कचित् म-

हान् लाभ संपादन होता है. यावत् लक्ष्मीभी तिनके पुन्यसें खीं-चाइ हुइ स्वयमेव आ मिलती है; परंतु खड्गकी धारापर चलने जैसा यह कठीन व्रत साहसीक पुरुषही सेवन कर सकता है.

३६ अत्यंत राग स्नेह नहि करना.

स्वार्थनिष्ठ संबंधी जनके साथ राग करनाही मुनासिब नहि है. जिस्के संयोगसें राग धारण कर सुख मानता है तिस्केही वि-योगसें दुःखभी आपही पाता है. इतनाही नहि लेकीन संबंधी ज-नकी स्वार्थनिष्ठता समझ जानेपरभी दुःख होता है. वास्ते ज्ञानी अनुभवी पुरुषोंके प्रमाणिक लेखोंमें प्रतीति रखकर वा साक्षात् अ-नुभव-परीक्षा करकें तैसा स्वार्थनिष्ठ जगत्में रागही करना लायक नहि है. तिसमेंभी वहोत मर्यादा वहारका राग-स्नेह करना सो तो प्रकट अविवेकही है. क्योंकि ऐसा करनेसें अंधकी माफिक कुछ गुण दोष देखकर निश्चय नहि कर सकता है. युं करतेभी राग करनेकी चाहना हो तो संत सुसाधुजनोंके साथही राग करो कि जिरसें कुत्सित राग विषका नाश कर आत्माको निर्विषता प्राप्त होय. अन्यथा राग-रंगसें अपना स्फाटिक समान निर्मळ स्वभाव छोडकर परवस्तुमें बंधन कर जीव अत्र परत्र दुःखदाही भोक्ता होता है. रागकी तरह द्वेषभी दुःखदाइही है.

३७ वल्लभजनपरभी वार वार गुस्सा नहि करना.

क्रोधसें प्रीतिकी हानि होती है, क्रोधसें वल्लभजनभी अप्रिय

हो पडता है, क्रोध वशवर्त्ती जीव कृत्याकृत्यका विवेक भूलकर अकृत्य करनेकों प्रवर्त्तता है, वास्ते सुखार्थिजनोंने कषायवश होकर असभ्यता आदरके कबीभी उचित नीतिका उल्लंघन कर स्व परकों दुःखसागरमें डुबाना नहि.

३८ क्लेश बढाना नहि.

कलह वो केवल दुःखकाही मूल है. जिस मकानमें हमेशां कलह होता है तिस मकानमेंसें लक्ष्मीभी पलायन हो जाती है; वास्ते बन आवे तहांतक तो क्लेश होने देनाही नहि. युं करने परभी यदि क्लेश हो गया तो उनकों बढने न देते खतम–शमन कर देना. छोटा बडेके पास क्षमामंगे ऐसी नीति है; मगर कभी छोटा अपना गुमान छोडकर बडेके अगाडी क्षमा न मंगे तो बडा आप चला जाकर छोटेकों खमावे जिस्से छोटेकों शरमींदा होकर अवश्य खमना और खमानाही पडे. क्लेशकों बंध करनेके लिये 'क्षमापना' खमतखामनेरूप जिनशासनकी नीति अत्युत्तम है. जो महाशय वो माफिक वर्त्तन रखता है तिनकों यहां और दूसरे लोकमेंभी सुखकी प्राप्ति होती है. और जो इस्से विरुद्ध वर्त्तन चला रहे है तिनकों सब लोकमें दुःखही है.

३९ कुसंग नहि करनां.

'जैसा संग हो वैसाही रंग लगता है.' यह न्यायसें नीचकी सोबत या बुरी आदतवाले लोगोंकी सोबत करनेसें हीनपन आता

है. और उत्तमकी सोबतसें उत्तमता प्राप्त होती है. क्यों देवनदी गंगाका शुद्ध मीठा पानीभी खारे समुद्रमें मिलजानेसें, खारा नहि होता है? अवश्य होता है! तैसेही अन्य अपवित्र स्थलसें आया हुवा पानी गंगाका पवित्र जलमें मिलनेसें कया गंगाजळके महात्म्यकों प्राप्त नहि करता है? अलबत्त, वो गटरका जल हो तो भी गंग समागमसें गंगजलही हो जाता है! ऐसा संगति महात्म्य समझकर ग्याने मनुष्यकों सर्वथा कुसंग छोडदेकर हर हमेशां सुसंगतिही करनी योग्य है; क्योंकि—' हानि कुसंग सुसंगति लाहु ' कुसंगतिमें हानी और सुसंगतिमें लाभ ही मिलता है!'

४० बालकसेंभी हित वचन अंगीकार करना.

रत्नादि सार वस्तुओंकी तरह हितवचन चाहे वहांसें अंगीकार करना यही विवेकवंतका लक्षन है. ज्ञानी पुरुष गुणोंकीही मुख्यता मानते है. अवस्थासें लघु होने परभी सद्गुण गरीष्ठकों गुरु मानते है, और वयोवृद्धकों गुणरहित होनेसें बालकवत् मानते गिनते है. ऐसा समझकर विवेकी सज्जन गुणमात्र ग्रहण करनेकों सदैव आभिमुख रहेते है.

४१ अन्यायसें निवर्त्तन होना.

समबुद्धि धारण कर राग रोष छोडकर सर्वत्र निष्पक्षपाततासें वर्त्तना यही सद्बुद्धि प्राप्त होनेका उत्तम फल है, ऐसा समझकर सत्यपक्ष स्वीकारना सोही परमार्थ है. ऐसा वर्त्ताव चलाने-

मेंही तत्वसें स्वपरहित रहा है. लोकापवादकाभी परिहार और शासनोन्नति इसी प्रकारसें हांसिल कीइ जाती है. स्वल्पमें निडरतासें सची हिम्मत पूर्वक न्याय मार्ग अंगीकार किये विगर जीवका कभीभी मुक्तता होतीही नहि. ऐसा समझकर स्याने जनकों सर्वथा न्यायकाही शरण लेना उचित है. नाकमें दम आ जाने तकभी अनीतिको मार्ग स्वीकारना अयोग्य है.

४२ वैभवके वख्त खुंमारी नहि रखनी.

पूर्व पुण्य योगसें संपत्ति प्राप्त हुइ हो, तो संपत्तिके वख्त अहंकारी न होते नम्र होना सोही अधिक शोभारुप है. क्या आम्रादि वृक्ष भी फल प्राप्तिके वख्त विशेष नम्रता सेवन नहि करते है ? बेशक नम्र होते है ! वास्ते संपत्तिके वख्त नम्र होनाही योग्य है. नही कि स्वच्छंदी बनकर मदमें खीचाकर तुंग मिज़ाजी होना. संपत्तिके समय मदांध होना यह वडा विपत्तिकाही चिन्ह है !

४३ निर्धनताके वख्त खेदभी न करना.

पूर्वकृत कर्मानुसार प्राणी मात्रकों सुख दुःख होवे तैसे सम विषम संयोग मिल जाय तो भी तैसे समयमां कर्मका स्वरुप सोचकर हर्ष—उन्माद या दीनता न करते समभावसेंही रहेकर स्याना—सुज्ञ जनोने शुभ विचार वृत्ति पोषण कर समर्थ धर्मनीतिका प्रीतिसें वा हिम्मतसें सेवन करना योग्य है. पहिले अशुभ कर्म करनेके वख्त प्राणी पीछे मुंहे फिराकर देखते नाहि है, जिस्के परिणामसें

अनंत दुःख वेदना सहन करते हुवे वो त्रास पाते है. अशुभ-निंध-कर्म करकें अपने हाथोंसे मंग लीये हुवे दुःख उदय आनेसें दीनता करनी सो केवल कायरता ही कही जाति है. दुःख पसंद पडता न हो तो दुःखदायक निंधकृत्योंसें विचार कर-पश्चाताप कर उनसें अलग हो जाना, जिस्सें तैसे दुःख विपाक भोगने पडेही नहि; परंतु पुर्वके कीये हुवे दुष्कृत्योंके योगसें पडा हुवा दुःख सहन करते दीन हो खेद-विषाद धरना वा विकल हो अविवेकतासें दूसरे दुष्कृत्य करना सो तो प्रकट दुःखका मार्ग है.

४४ समभावसें रहेना.

जो महाशय सुख, दुःख, मान, अपमान, निंदा, स्तुति, सधनता, निर्धनता, राजा, रंक, कंचन, पथ्थर, तृण और मणि वा नारी और नागनकों अगाडी कहे हुवे सद्विचार मुजब वर्त्तन रखकर समान गिनते है और उसमें मोह प्राप्त नही होता है. यावत् तिनकों केवल कर्मविकाररुप निमित्त भूत गिनकर मनमें विषमता न ल्याते हर्ष विषाद रहित सम बुद्धिसेंही देखते है, तैसे सद्विचारवंत विवेकवंत-सद्गुण शिरोमणि जन समसुख अवगाह कर धर्म आराधनसें अवश्य स्वकार्य सिद्ध करते है; परंतु जो अज्ञानता के जोरसें-विवेक विकल मनसें विषम वर्त्तन करते है, हर्ष खेद धरके आप मतसें उलटे चलते है सो तो क्रोड उपायसें भी आत्मकार्य साध नही सकते है.

४५ सेवकके गुण समक्ष कहेना.

सच्चे सेवककी प्रत्यक्ष प्रशंसा करनेसें कुछ हानि नही किन्तु लाभही है. उत्साहकी वृद्धिके साथ वो चुस्त स्वामि भक्त हो जाता है, और तैसे नहि करनेसें कदाचित् तिसकी श्रद्धा मंद होनेसें सेवा विमुखभी हो जाता है.

४६ पुत्रकी प्रत्यक्ष प्रशंसा नहि करना.

पुत्र या शिष्य चाहे वैसा सद्गुणी हो, तदपि तिसकी समक्ष प्रशंसा नहि करनी सोही उत्तम नीति है. तिनमें विनयादि उत्तम गुण वढानेका वो रस्ता है. बाल्यावस्थामें अच्छे संस्कार प्राप्त हो ऐसी फिकर रखनी वे माता पिता और गुरुकी फर्ज है. मगर गुण प्राप्त हुवे विना मिथ्या प्रशंसासें अभिमानमें आजानेसें कदाचित् तिनका जन्म विगडता है. ऐसा समझकर तिनकी परिपक्व स्थिति होजाने तक विचार विवेकसें वर्त्तना, जिस्सें तैसा सद्विवेक शीखकर पुत्र, पुत्री, शिष्य वा शिष्या अपना जन्म सुखपूर्वक सुधार सकता है. पुत्रादि समक्ष माता पितादिकोंभी अपशब्दादि अविवेक यत्नसें त्याग देना.

४७ स्त्रीकी तो प्रत्यक्ष वा परोक्ष भी प्रशंसा करनीही नहि.

स्त्रीका स्वभाव तुच्छ होनेसें अपूर्णता वताये विगर नहि रहती, वास्ते चाहे वैसी गुणवंती स्त्री हो तोभी मनमेंही समझ रहेना.

स्त्रीकोंभी पति तर्फ विनीत शिष्यकी माफिक विशेष नम्र होनेकी आवश्यकता है. अपना पातिव्रत तबही यथाविधि समाला जाता है. पतिकोंभी स्त्रीकी तर्फ उचित मृदुता अवश्य रखनी चाहियें. ऐसे एक दूसरेकी अनुकूलतासें गृहयंत्रके साथ धर्मयंत्रभी अच्छी तरह चल सकता है. तिस बिगर दोनु यंत्र बार बार बिगडे या रुकजाते है. अपशब्दादि अपमान त्यागकर स्त्रीका अपनी तरह श्रेय चाहकर वर्तना. स्वदारा संतोषि पतिकी तरह समझदार स्त्रीकोंभी अपना पतिव्रत अवश्य पालन करना. जैसें स्वश्रेयपूर्वक स्व संततिभी सुधारने पावे तैसे स्त्री भर्त्तार दोनुने संप संतोष पूर्वक सद्वर्त्तन सेवनमें सदैव तत्पर रहेना चाहिये. जैसें आगेके वख्तमें अपना पवित्र शील-भूषणसें भूषित बहोतसी सती शिरोमणियोंने अपना नाम अपने अद्भुत चरित्रसें प्रसिद्ध कीया है, तैसें अबीभी सुविवेकी भाइ और भगिनीये पावन शील रत्न धारनकर सुशीलता योगसें भाग्यशाली होनाही योग्य है.

४८ प्रिय वचन बोलना.

दुसरे मनुष्यको प्रिय लागे ऐसा सत्य और हितकर वचन बोलना. प्रसंगोपात विचारके कहा हुवा हितमित वचन सामेन वालेकों प्रिय होपडता है. विना विचारा, औसर विगरका, कर्णकटुक भाषण कभी सच्चा हो तोभी अप्रिय होता है, और मीठा, गर्व रहित, विवेकपूर्वक विचारके समयोचित बोलाहुवा वचन बहोत प्रिय और उपयोगी होपडता है. मगर उस्सें विपरीत बोलना अ-

हितकारी होता है. जो लोकप्रिय होनेकों चाहते हो तो उक्त विवेक समालके धर्मका बाध न आवे तैसा निपुण भाषण करना शीखो. तैसा समयोचित विनय वचन वशीकरण समान समझना. कहाभी है कि ' एक बोलवो न शीख्यो सब शीख्यो गयो धूरमें !'

४९ विनय सेवन करना चाहिये.

नम्रता, कोमलता, मृदुता वगेरे पर्यायवाची शब्द हैं सो सब विनयकेही है. विनय सब गुणोंका वश्यार्थ प्रयोग है. विनयसें शत्रुभी वश होजाता है. विवेकसें गुणिजनोंका कीयाहुवा विनय श्रेष्ठ फल देता है. और विनय विगरकी विद्याभी फलीभूत नहि होती है.

५० दान देना.

लक्ष्मीवंत होकर सुपात्रादिकों विवेकसें दान देना सोही लक्ष्मीकी शोभा वा सार्थकता है. विवेकपूर्वक दान देनेवालेकी लक्ष्मीका व्यय कीये हुवेभी कुवेके पानीकी तरह निरंतर पुण्यरुप आमदनीसें वढती होती जाती है. विवेक रहित पनेसें व्यसनादिमें उडादेने वालेकी लक्ष्मीका तत्वसें वृद्धि विनाही तुरत अंत आजाता है. सूम-कंजुसकी लक्ष्मी कोइ भाग्यवान् नरही भुक्तता है व्यय करकें लाभ प्राप्त करता है; परंतु ममण शेठकी तरह तिनसें एक दमडीभी शुभ मार्गमें खर्ची नहि जाति, और न वो विचारा तिसकों उपभोगमेंभी लेसकता; पुर्वजन्ममें धर्मकार्यकी अंदर गडवड डालनेका यह फल समझकर दानांतराय नहि करना.

५१ दूसरेके गुणका ग्रहण करना.

आप सद् गुणालंकृत हो तदपि संत साधु जन दूसरेका सद्गुण देखकर मनमां प्रमुदित होते है. तोभी सज्जनोंकी अंदरके सद्गुणोंको देखकर असहनताके लिये दुर्जन उलटे दिलमें दुःख पाते है—दिलगीर होते है और अंतमें दुधकी अंदर जंतु ढुंढने मुजब तैसे सद्गुणशाली सज्जनोंमेंभी मिथ्या दोषारोपण करते है. और जूंठे दूषन लगाकर महा मलीन अध्यवसायसें बावले कुत्तेकी तरह बुरे हालसें मृत्यु पाकर दुर्गतिमें जाते है. अमृतकी अंदर विष बुद्धि जैसे सद्गुणोमें औगुनपनका मिथ्या आरोप कबीभी हितकारी नाहि है ऐसा समझकर सुज्ञ जनको गुणही ग्रहण करना और सद्गुणकी प्रशंसा करनेकी अवश्य आदत रखनी.

५२ औसरपर बोलना.

उचित औसरकी प्राप्ति विगर बोलनाही नहि. उचित औसर प्राप्त हो तोभी प्रसंग—मोका समालकर प्रसंगानुयायी थोडा और मीठा भाषण करना. विन औसर और हदसें ज्यादा बोलनेसें लोकप्रिय कार्य नाहि होसकता. मगर उलटा कार्य बिगडता है. ऐसा समझकेर हरहमेशां सच्चा हितकारी और थोडा—मतलब जितनाही विवेकसें भाषण करनेकी दरकार करना. प्रसंगके सिवा बोलनेवाला बकवादी, दिवाने मनुष्यमें गिनाया जाता है, यह खुब यादीमें रखना !

५३ खल दुर्जनवर्गभी जनसमाजकी अंदर योग्य सन्मान देना.

सिरो लिखित नीति वाक्य सज्जनोंको अत्युपयोगी है. उक्त नीतिके उल्लंघनसें क्वचित् विशेष हानि होती है. दौर्जन्य दोषके प्रकोपसें खलजन स्हामनेवालेको संतापित करनेमें बाकी नहि रखता है.

५४ स्व पर विशेषतासें जानना.

हिताहित, कृत्याकृत्य वा बलाबलका विवेकपूर्वक स्वशक्ति देशकाल मानादि लक्षमें रखकर उचित प्रवृत्ति करनेवालेको हित अन्यथा अहित होनेका संभव है, वास्ते सहसा-बिनशोचे काम नहि करनेकी आदत रख कदम दर कदम विवेकसें वर्तनेकी जरूरत है, सद्विवेकधारी (परीक्षापुर्वक प्रवृति करनेवाले) का सकलार्थ सिद्ध होता है.

५५ मंत्र तंत्र नहि करना.

कामन, टोंना, वशीकरणादि करनो करानो ये सुकुलीन जनका भूषण नहि है. वास्ते बने जहांतक तिस बातसें दूर रहेना. और परका मंत्रभेद करना नहि-कीसीका भेद कीसीको कहेना नहि. और गुफत बात जहां चलती हो वहां खडा रहेना नहि.

५६ दूसरे पीरायेके घर अकेला नहि जाना.

यह शिष्ट नीति अनुसरनेमें अनेक फायदे हैं. इससें शील-

व्रतका संरक्षण होता है, सिरपर झूंठा कलंक नहि चडता है; यावत् मर्यादाशील गिनाकर लोगोंमें अच्छा विश्वासपात्र होता है.

५७ कीइ हुइ प्रतीज्ञा पालन करनी.

अव्वल तो प्रतिज्ञा करनेकी वख्तही पूर्ण विचार कर अपनेसें अव्वलसें आखिरतक निभाव हो सके वैसीही योग्य (बनसके वैसी) प्रतिज्ञा करनी चाहिये. और कभी उत्तम जनने प्रतिज्ञा करली तो योग्य प्रतिज्ञाका प्रयत्नपूर्वक पालन करना नाकमें दम आजानेतकभी खंडित नहि करनी. विचार करके समझपूर्वक कीइ हुइ लायक प्रतिज्ञा सोही सत्य और शुभ प्रतिज्ञा गिनीजाति है. तैसी सत्य और शुभ प्रातिज्ञासें भ्रष्ट हुए मनुष्य अपनी प्रतिष्ठाकों खोकर अपवादके पात्र होता है. अविवेक न होने पावे ऐसी हरदम फिकर जरुर रखनी योग्य है. योग्य विचारपूर्वक कीइ हुइ प्रतिज्ञा प्राणकी तरह पालनी ये हरेक विचारशील सुमनुष्यकी फर्ज है. सच्चे सत्ववंत पुरुष तो स्वप्रतिज्ञाकों प्राणसेंभी ज्यादा प्रिय गिनकर पूर्ण उत्साहसें पालन करते है. फक्त निर्बल मनके कायर–डरपोक मनुष्यही प्रतिज्ञा खोकर पत गुमाते है.

५८ दोस्तदारसें छुपी बात न रखनी.

जिस मित्रके साथ कायम दोस्ती रखनेकी चाहना हो तो तिनसें कुच्छभी पटंतर–भेद–जुदाइ नहि रखनी. खाना और खीलाना, मनकी वातें पूछनी और कहेनी, और अच्छी वस्तु जरुरत हो तो देनी और लेनी ये छः मित्रताके लच्छन है.

५९ किसीकाभी अपमान नहि करना.

मान मनुष्यकों वहोतही प्यारा लगता है. मानभंग अपमानसें मनुष्यकों मरणके समान दुःख होता है. यह वार्त्ता बहोतकरके हरएक जनकों अनुभव सिद्ध हो चूकी होगी. कीसीकाभी अपमान न करते तिनका मीठे वचनादिसें सन्मान करनेसें अपन और दूसरेकों लाभ होनेका संभव है. गुन्हागार मनुष्यकी भी अपभ्रंछना करने करते तो मीठे मधुरे वचनसें यादि तिनकों तिनके दोषका स्वरूप पहिले अच्छे प्रकारसें समझाया जाय तो वहोत करके पुनः अपराध-गुन्हा करना छोडदेता है. मृदुता यह ऐसी तो अजब चीज है कि तिनसें वज्र जैसा मान अहंकारभी पिगल जाता है. यह प्रभाव विनय गुणका है; वास्ते दूसरे निकंमे लख्खों उपाय छोडकर यह अजब गुणकाही घटित उपयोग करना दुरुस्त है. ऐसा करनेसें अपना कार्य वहोत स्हेलाइसें पार हो सकता है.

६० अपने गुणोंकाभी गर्व नहि करना.

उत्तम जन गर्व नहि करते है सो ऐसा समझकर नहि करते है कि गर्व करनेसें गुणकी हानि होती है. संपूर्ण गुणवंत, ज्ञानी, ध्यानी वा मौनी समुद्रकी तरह गंभीरतावंत होनेसें गर्व नहि करते है. फक्त अपूर्ण जन होते है सोही अपनी अपूर्णता जाहिर करते है. अपनी वडाइ करनेसें परनिंदाका प्रसंग सहजहीमें आजाता है. परनिंदाके वडे पापसें, गर्व गुमान करनेवालेका आत्मा लिप्त होकर मलीन होता है. जिस्सें मिलेहुवे गुणोंकीभी हानि

नये गुणोकी प्राप्तिकेलिये तो कहनाही क्या ? [जहां गांठकी मुंडीभी गुमजाती है तो नया लाभ होनेकी आशाही कहांसें होय !] ऐसा समझकर सुज्ञ जन अपने मुखसें अपनी वडाइ वा दूसरेकी लघुता करतेही नहि.

६१ मनमेंभी हर्ष नहि ल्याना.

'वहु रत्ना वसुंधरा' पृथिवीमें वहोतसें रत्न पडे है, ऐसा समझकर आपभी शिष्ट नीति विचारकें आप तैसी उत्तम पंक्तिके अधिकारी होनेके लिये प्रयत्न करना. जहांतक संपूर्णता आजावे वहांतक सन्नीतिका दृढालंबन कीये करना दुरस्त है. यदि किंचित् भी मंद पडकर मनको छूट्टी दी तो फिर खरावी तैसीही होती है. अल्प गुण प्राप्तिमेंही मनको दिमागदार वनानेसें गुणकी वृद्धि नहि होती है. वहोतही गुणोकी प्राप्ति होनेपरभी जो महाशय गर्व रहित प्रसन्न चित्तसें अपना कर्तव्य कीया करते है वो अंतमें अवश्य अनंत गुणगणालंकृत होकर मोक्षसंपदा प्राप्त करते है.

६२ पहिले सुगम, सरल कार्य शुरु करना.

एकदम आकाशको वगलागिरी करने जैसा न करते अपनी गुंजाश–ताकात याद कर धीरे धीरे कार्य लाइनपर ल्याना, सोही स्थापनका काम है. एकदम विगर सोचे सिरपर वडा काम उठा लेकर फिर छोडदेनेका वख्त आजाय और उलटा छछोरुपापन वेवकूफी सरदारी लेनी पडे उससें तो समतासें काम लेना सोही सवसें वहेतर है.

६३ पीछे बडा कार्य करना.

कार्यका स्वरुप समझकर समतासें वो शुरु किये बाद चित्त उत्साहादि शुभ सामग्री योगसें युक्त कार्यकी सिद्धिके लिये पुख्त प्रयत्न करना. ऐसी शुभ नीतिसें कार्य करनेमें अध्यवसायकी विशुद्धिसें उत्तम लाभ प्राप्त होता है.

६४ (परंतु) उत्कर्ष नहि करना.

शुभ कार्य समतासें शुरु करके उनकी निर्विघ्नतासें समाप्ति हो ने बादभी अभिमान या वडाइ जैसा कुच्छभी करना नहि. मनमें ऐसी श्रद्धा-समझ ल्याके कोइभी कार्य काल, स्वभाव, नियति पूर्वकर्म और पुरुषार्थ ये पांचों कारण प्राप्त हुवे विगर होताही नहि, तो वो पांचों कारण मिलनेसें कार्य हुवा उसों गर्व काहेका करना चाहिये? क्यों कि कार्य तो वो कारणोंने कीया है. वास्ते गर्व छोड कार्य सिद्ध होनेसें श्रद्धा-दृढतादि विवेकसें नम्रताही धारण करनी दुरस्त है. वैसे सुनम्र विवेकी जन जगत्के अंदर अनेक उपयोगी शुभ कार्य कर सकते है.

६५ परमात्माका ध्यान करना.

बाह्यातमा, अंतरात्मा और परमात्मा ऐसे आत्माके तीन प्रकार है. शरीर कुटुंबादि बाह्य वस्तुओंमें व्याकुलतावंत होरहा हुवा बाह्यआत्मा कहा जाता है. अंतरके भीतर विवेक जाग्रत होनेसें जिसको गुण-दोष, कृत्याकृत्य, लाभालाभका भान-शुद्धि हुइ हो,

स्व परकी समझ पड गइ हो, ज्ञानादि गुणमय आत्मा सोही में हुं और ज्ञानादि उत्तम गुण संपत्तिही मेरे सिवाय शरीर, कुटुंब, धन, धान्यादि सब पुद्गलिक वस्तु हैं ऐसा समझनेमें आया हो वो अंतरात्मा कहाजाता है. और जिसने संपूर्ण विवेकसें मोहादि कुल अंतरंग शत्रुओंका सर्वथा उच्छेद करके विमल केवल ज्ञानादि अनंत आत्मसंपत्ति हाथ की हो सो परमात्मा कहेजाते है. वहिरात्मा, परमात्माका ध्यान करनेमें नालायक है और अंतरात्मा लायक है. अंतरात्मा, परमात्माका पुष्टालंबनसें दृढ श्रद्धा-विवेक प्राप्तकर आपही परमात्मपद प्राप्त करता है; वास्ते मोह माया छोड़कर सुविवेकसें अंतरआत्मापन आदर आत्मार्थी जनोंने परमात्माके ध्यानका अधिकार-योग्यता प्राप्त कर निश्चय चित्तसें परमात्माका पद प्राप्त करनेकों प्रयत्न-सेवन करना योग्य है. जन्म, जरा और मृत्युरुप अनंत दुःख-उपाधि मुक्त सर्वज्ञ परमात्मा होवे है, तिनका तन्मय ध्यान योगसें कीट भ्रमर न्यायसें अंतर आत्मा परमात्म पद पाता है. अनंत ज्ञानादि अखंड सहज समृद्धि पाकर परमानंद सुखमें मग्न हो रहता है. तैसे परमात्माका अक्षय सुखार्थ आत्मार्थी जनोकों हमेशां शरण हो ! तैसे परमात्माकी भक्तिरुप कल्पवल्ली भव्य प्राणियोंके भवदुःख दूर कर मनेच्छा पूर्ण करो ! यावत् भव्यचकोर शुक्ल ध्यान पाकर भवभवकी भ्रमणा भागकर संपूर्ण निरुपाधि मोक्षसुख स्वाधीन कर अक्षय समाधिमें लीन हो ! !

८८ दूसरेकों आत्माके समान जानना.

समस्त जीवोंमें जीवत्व समान है, ऐसा समझकर सबकों

अपने जैसा गिनना. द्वैतभाव छोडकर समता सेवन कर किसी जीवको दुःख न हो वैसी यतनासें वर्त्तन चलाना. चींटीसें हाथी तक सब जीवित सुख चाहता है. राजा, रंक, सुखी, दुःखी, रोगी, निरोगी, पंडित, मूर्ख सब निर्विशेष—समान रीतसें सुखको अर्थी है. प्रमाद प्रवर्त्तन या स्वच्छंद वर्त्तनसें कोइ जीवको सुखमें अंतराय करनेसें वो प्रमादी या स्वच्छंदी प्राणी बाधक कर्म बांधता है. जिस्का कटुक फल तिनको अशुभ कर्मके उदय समय अवश्य सहन करना पडता है; वास्ते शास्त्रकार कहते है कि:—

"बंध समय चित्त चेतिये शो उदये संताप"

इत्यादि बोधवचनोंको लक्षमें रखकर सुखार्थी जनको सर्वत्र समता रखकर रहेना योग्य है. मैत्री, प्रमोद, करुणा और मध्यस्थभावकी प्राप्तिभी ऐसेही हो सकती है. जहांतक ये मैत्री वगैरः भावना चतुष्टयका प्रादुर्भाव—उदय हुवा नहि वहांतक शिवसंपदा वहोतही दूर समझनी.

६७ राग द्वेष नहि करना.

काम, स्नेह, अभिष्वंग वगैरा रागके पर्याय शब्द है, और द्वेष, मत्सर, इर्ष्या, असूया निन्दादि रोषके पर्याय है. स्फटिक रत्न समान निर्मल आत्मसत्ताको राग द्वेषादि दोष महान् उपाधिरूप होनेसें विवेकवंत जनोंने यत्नसें परिहरने योग्य है. जहांतक महा

उपाधिरुप ये रागद्वेषादि दोष दूर होवें नहि वहांतक कवीभी आत्माका शुद्ध स्वरुप प्रकट होसकताही नहि. वो रागादि कलंक सर्वथा टल—हट गया कि तुरतही आत्मा परमात्मा पद पाता है. वास्ते परमात्मपदके कामीजनोने शत्रुभूत राग द्वेषादि कलंक सर्वथा दूर करनेकों दृढ प्रयत्न करना जरुरी है. यत:—

" राग द्वेष परिणामयुत, मनहि अनंत संसार,
तेहिज रागादिक रहित, जानी परमपद सार. "

[समाधिशतक.]

तथा ये कर्मकलंक दूर करनेके वास्ते संक्षेपसें बालजीवोंके हितार्थ अन्यत्र भी कहा है कि:—

" शुद्ध उपयोग ने समता धारी, ज्ञान ध्यान मनोहारी; कर्म कलंककों दूर निवारी, जीव वरे सिवनारी, आप स्वभावमें रे अवधू सदा मगनमें रहेना. "

इत्यादि रहस्यभूत ज्ञानके वचनोंकों मोक्षार्थी जीवोंकों परम आदर करना योग्य है, जिस्सें सब संसार उपाधीसें सब तरहसें मुक्त होकर परमपद त्वरासें प्राप्त कर सके. सर्वज्ञभाषित सदुपदेशका येही सारतत्व है. ज्युं बने त्युं चूंपसें राग द्वेष मल सर्वथा दूर कर निर्मल हो जाना. राग द्वेष मल सर्वथा दूर हो जानेसें आत्माकों शुद्ध वीतराग दशा प्राप्त होती है. वैसी शुद्ध वीतराग दशा

सोही परमात्मा अवस्था है. वो हरएक मोक्षार्थी सज्जनोंको राग द्वेषादि मलका सर्वथा परिहार करके-सद्विवेक बलसें प्राप्त करनी ही योग्य है. उक्त सर्वज्ञ-उपदेश रहस्यको समझकर जो महाभाग्य, रुचि प्रीतिसें स्वहृदयमें धारेंगे वो सुविवेकी सज्जनकी समीपमें शिवसुख लक्ष्मी स्वेच्छासें आकर क्रीडा करेगी.

श्री सर्वज्ञ प्रणीत स्याद्वादशैलीकों अनुसरकें पूर्वाचार्य प्रसादिकृत प्रकरणादि ग्रंथोंके आधारसें आत्मार्थी भव्योंके हितार्थ, जो कुछ स्वल्प स्वमति अनुसारसें यहां कथन करनेमें आया है, उसमें मतिमंदतादि दोषोंसें उत्सूत्र-विरुद्ध भाषण हुवा होवे वो सहृदय हृदय सुधारकर जिस प्रकारसें जयवंता जैनशासनकी शोभा बढे, जैसे अनादि अविवेक दूर हो जाय, और सद्विवेक जाग्रत होवै, जैसे दुरंत दुःखदायी स्वछंद वर्त्तन छोडकर संपूर्ण सुखदायी श्री सर्वज्ञकथित सन्नीतिका सद्भावसे सेवन होवे, जैसें सम्यक् ज्ञान प्रकाससें व्यवहार शुद्ध होवे, जैसें लोकविरुद्ध त्यागसें शुद्ध देव, गुरु और धर्मका अछे प्रकारसें आराधन कर, अंतमें अक्षय सुख संप्राप्त होवे तैसें वर्त्तन रखनेको सज्जनोंको मेरी अभ्यर्थना है. नाकमें दम आजाने तक भी प्रार्थना भंग नहि करनेकी उत्तम नीतिका अवलंबन करके सज्जन महाशय सत्यका प्रथन करना नहीं चुकेंगे. उत्तम हंसके समान सज्जनजन गुणमात्रकोंही ग्रहण कर औगुण दोष मात्रका त्याग करके जैसें स्व परकी तत्वसें उन्नति साध सके वैसें ध्यान देके वर्त्तनेकों अवश्य विवेक धरेंगे. आशा है कि, परो-

पकारपरायण सज्जनवर्ग सत्य नीतिकी उंडी नीव डाल उसपर अति उमदा धर्म इमारत बांधकर उसमें कुटुंब सहित नित्य विलास करेंगे. और सम्यग् ज्ञान, दर्शन चारित्रका यथाशक्तिसें आराधन कर अंतमें अविनाशी पद पाकर जन्म मरणादि दुःखोंका सर्वथा नाश करेगा, और सर्वज्ञ-सर्वदर्शी होकर लोकालोकको हस्तामल-कवत् देखेंगे-यावत् परम सिद्धिदायक परमात्मपद प्राप्त कर पूर्णानंद चिद्रूप हो रहेंगे. इत्यलम्.

प्रमाद पंचक परिहार.

" नास्ति प्रमाद परो वैरी-"

प्रमादके समान दूसरा कोइ भी कट्टा दुश्मन नही है.

" नास्त्युद्यम समोबन्धुः-"

सदुद्यम समान दूसरा कोइ सच्चा बंधु नहीं है.

पांचों प्रमादके शास्त्रोक्त नाम.

[आर्या छंद.]

मज्ज विषय कषाया, निद्दा विगहाय पंचमी भणिया;
ए ए पंच पमाया, जीवं पाडंति संसार.

(संबोधसित्तरी.)

१ मद्य–उन्माद, २ पंचेंद्रिय विषय गृद्धता, ३ क्रोधादि चार कषाय, निद्रा पंचक यानि निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचला प्रचला और स्त्यानर्द्धी ये पांच निद्रा, तथा राज देश स्त्री–और भोजन इन चारोंकी वार्ता सो विकथाचतुष्क कहाजाता है. ये पांचों प्रकारके प्रमाद जीव मात्रकों अवश्य संसारचक्रमें फिराते है; वास्ते जगद्गुरु श्री जिनराज पुर्वोक्त पांच प्रमादकों दूर करनेके लिये उपदेश दे गये है.

मद–उन्मादका त्यागकर निर्मदता, विषयविमुख होकर निर्विषयता, क्रोधादि कषायका ताप दूर कर निष्कषायता, निद्राका पराजय करकें निस्तंद्रता और विकथा–निकम्मी वार्तोको छोडकर सत्कथा–धर्मकथा, संतोपदेश श्रवण–मनन पालनद्वारा स्वात्महित साधने के वास्ते उद्युक्त रहने के संबंधमें परोपकारपरायण श्री वीतरागदेव अपनकों वार वार बोध देते है. ऐसा उत्तम बोध श्री सद्गुरुकी विनयपूर्वक सेवा करनेवाले भव्यसत्वकों श्री सर्वज्ञ कथित शास्त्रद्वारा मिल सकता है. प्रमादशत्रुका जोर ऐसा और इतना प्रबल है कि उनके वशमें पडे हुवे प्राणी तुरंत वैसा हितबोध प्राप्तही नहीं कर सक्ता है, तो अपने आपका हित किस तरहसें साध सकै? ऐसे विषम संयोगोंमें संतसमागम मिलना बहुत मुश्कील है. संतसमागमद्वारा प्राप्त हुवे सदुपदेशामृतसें प्रमाद विष दूर हो जाता है. कम हो जाता है. यावत् अनुक्रमसें सदुद्यम–सहोदरकी मददसें अप्रमाद शिखरपर चढ सकते है या चढ शकें

वैसा वख्त हाथ लगता है. जहांसें मोक्षमहेल सन्मुख मालूम होता है, ऐसी अप्रमत्तता कौनसे भव्यचकोरको अप्रिय होगी ? तथापि भव्यसत्वकों भी सत्सामग्रीकी अपेक्षा रहती है. सत्सामग्रीका यथार्थ लाभ बाधकभूत पांचों प्रमादकी परवशतासें नहीं लिया जाता है. उस लिये जिस प्रकार प्रमादपंचकसें प्राणीवर्ग मुक्त होकर सर्वज्ञ धर्म आराधनेकों शक्तिमान् होवै उस प्रकार समय के अनुसार ध्यान दे संत सु साधुजनोंकों परमार्थ दृष्टिसें उपदेश किया है, वो लक्षमें लेकर प्रमादपंचककों दूर कर यथा विधिसें स्वकर्त्तव्यकों समझ उसी मुजब चलन रखनेमें तत्पर हो मोक्षार्थिजन स्व इष्ट सुख साध सकते है; परंतु प्रमादपंचकके तावेदार हो जानेसें स्वच्छंदतापनेसें चलनेवाले प्राणी तो यह मानवभवादि दुर्लभ सामग्रीकों निष्फल गुमादेकर आगे ज्यादा दुःखी होते है. मतलब कि स्वच्छंदतासें किये गये दुष्कृत्यके फलका आखिर उनकों अवश्य अनुभव करनाही पडता है. अव्वलसेंही लाभालाभ, हिताहित शोचकर स्वच्छंदता छोड पंच प्रमादकों अनादर करनेमें आवै तो आगे दुःखी नहीं होना पडता है.

प्रमाद शब्दका अल्प लेखमें खुलासा.

स्व यानि अपना, अर्थ यानि कार्य साधनेमें, या स्व आत्माके वास्ते स्वार्थ साधनेमें अनादर करना, और जिनसें अपना सच्चा स्वार्थ नाश पावे वैसे दुष्कृत्योंका आदर करना, उन्मादका सेवन करना, विषय गृद्ध-लुब्ध होना, कषाय कलुषित बन जाना, बहुत

निंद लेनी, और स्वार्थमें हरकत डालनेवाली विकथाओंमेंही दिन खतम करना वगैरः अकार्य करनेमें उत्सुक रहना, तथा उचित कार्यमें दुर्लक्ष देना; यावत् सुविहित सेवित सन्मार्ग छोडकर मरजी मुजब उन्मार्ग ही ग्रहण करना वही प्रमाद है.

१ मद्य—सुरापान या तो कोइ भी नस्सेदार चीजके सेवनसें अपनी या अपने कर्त्तव्य—धर्म संबंधका भान भूलकर बेमान बनजाना, यावत् उन्मत्त-मदमस्त होकर अहित अनुचित प्रवृत्तिसें स्वार्थ विनाशक खराब—बुरे मार्गका ही आदर करना, और वैसा ही करके संतोष मान लेना, ऐसी उन्मत्तताका नाम मद्य कहा जाता है. ऐसा उन्माद प्राणीकों जन्म जन्म भ्रमण करवाता है. इंग्लीशमें उसकों Intoxication कहते हैं. जिसकी सोबतसें इन्सान दीवाना और बेहाल बनजाता है. ऐसे बुरे परिणाम जिस चीजके सेवनसें आवे उस चीजकों सेवन करनी ही बेमुनासीब है. कोइ भी अधिकार, लक्ष्मी या ज्ञानके मदमें भी मूढजन बडा जुल्म करते है. एक भी बुरा आचरण—अपलक्षण सेवनमें मूढजन लक्खो अपलक्षन शीख लेते है, जिस्सें करकें स्वपरकी पायमाली होनेका परिणाम हाथ लगता है और उसीसें अधोगति पाते हैं. ऐसे अपलक्षणसें दूर हो जानेके लिये अध्यात्मवित् चिदानंदजी—कपूरचंदजी महाराजने फरमाया है किः—

(राग भैरव.)

विरथा जन्म गुमायो, मूरख, विरथा जन्म गुमायो,

रंचक सुख रसवश होय चेतन, अपनो मूळ नसायो;
पांच मिथ्यात्व तुं धारत अजहु, साच भेद नहीं पायो.
मूरख, विरथा. १

कनक कामिनी और यहीसें, नेह निरंतर लायो;
ताहीसें तुं फिरत सोरोनो, कनकवीज मानु खायो.
मूरख. विरथा. २

जन्म जरा मरणादिक दुखमें, काल अनंत गंवायो;
अरहट घटिका ज्यौं कहो याको, अंत अजहु नहीं आयो.
मूरख. विरथा. ३

लख चोराशीका पहेर्या चोलना, नव नव रुप बनायो;
विन समकित सुधारस चाख्यो, गिनति कोउ न गिनायो.
मूरख. विरथा. ४

ए ते पर नहि मानत मूरख, यह अचरिज चित आयो;
चिदानंद सो धन्य जगतमें, जिन्हें प्रभुसें मन लायो.
मूरख. विरथा. ५

चिदानंदजी महाराजके ऐसे हृदयवेधक बचन श्रवण किये तोभी जिन लोगोंका मद दफै नहीं होता है, और जो लोग बुरी आदतें नहीं छोड देते है वैसे मूढात्माके कर्मका ही दोष समझ लेना.

२ विषय लुब्धता—पांचों इंद्रियोंके शब्द, रुप, रस, गंध और स्पर्श आदि विषयमें यानि योग्य द्रव्यमें आशक्त हो जाना—लंपट लवाड बन जाना वो प्राणी मात्रको परिणाममें बडा नुकशान क-

रनेवाला होता है. एक एक इंद्रियके तावे हो रहे हुवे विचारे पतंग, भ्रंग, कुरंग, गज और मीन प्राणांत दुःख पाते हैं, तो पांचों इंद्रियोंके तावेमें फंसे हुवे परवश पामर प्राणियोंके वास्ते तो कहना ही क्या ? उनकी तो पूरी कमवख्ती होती है; तोभी मोहसें मूढ बन गये हुवे लोग परिणामकों न सोचते विषय पास–फंदेमें फंसकर हैरान होते हैं. वैसे मुग्ध–अज्ञानी जीवोंके ऊपर अनुकंपा लाकर श्री चिदानंदजी महाराजने कहा है कि:–

(राग प्रभाती.)

विषय वासना त्यागो, चेतन, सच्चे मारग लागोरे;
जप तप संयम दानादिक सब, गिनति एक न आवे रे;
इंद्रिय सुखमें जौलौं ये मन, वक्रतुरंग ज्यौं धावे रे. विषय. १
एक एकके कारण चेतन, बहुत बहुत दुख पावे रे;
सो तो प्रकटपणे जगदीश्वर, इस विध भाव लखावेरे. वि. २
मन्मथ वश मातंग जगतमें, परवशता दुखपावे;
रसना लुब्ध होय झख मूरख, जाल पड्ये पिछतावेरे. वि. ३
घ्राण सुवास काज सुन भौंरा, संपुट मध्य बंधावे रे;
सो सरोजसंपुट संयुत फुनि, करटीके मुख जावेरे. वि. ४
रूप मनोहर देख पतंगा, परत दीपमंह जाइरे;
देखो याके दुख कारणमें, नयन भये हैं सहाइ रे. विषय. ५
श्रोतेंद्रिय आशक्त मिरगले, छिनमें शीश कटावेरे;
एक एक आशक्त जीव यौं, नाना विध दुख पावेरे. विषय. ६

पंच प्रबल वर्त्तं नित जाकुं, ताकों कहाजुं कहियें रे;
चिदानंद ये वचन सुनीकें, निज स्वभावमें रहियेंरे. विषय. ७

सर्वज्ञ प्रभु विषयकों विषवत् या किंपाक फलवत् प्राण घातक कहते है. कूत्ते और डूक्करकी तरह विषयमें रक्त होनेवालेकों कष्ट मात्र फल होता है. हंसवत् विवेकीजन विषय वासनाकों छोडकर वैराग्यभाव प्राप्तकर सुखी होते हैं, और वीतरागदशा साधने के अधिकारी भी वोही हो सकते है. ज्ञानी पुरुषोंने ये मनुष्य भवकी वडी भारी किम्मत मुकरीर की है, उसका क्षण भी लाखरुपैका कहा जाता है. वैसे किम्मतवंत भवका वन सके उतना फायदा उठा लेनेके वास्ते श्री सर्वज्ञ प्रभुकी आज्ञाका शरण लेना वही लायक है. ऐसा परोपकारशील श्री चिदानंदजी बतलाते हैं:-

(राग मालकोश.)

पूरव पुण्य उदय करी चेतन, नीका नरभव आयारे; पूरव.
दिनानाथ दयाल दयानिधि, दुर्लभ अधिक वतायारे;
दश दृष्टांतें दोहिलो नरभव, उत्तराध्ययनें गायारे. पूरव. १
औसर पाय विषय रस राचत, सो तो मूढ कहायारे;
काग उडावन काज विप्र ज्यौं, डार मणि पिछतायारे. पूरव. २
नदी गोळ पाषाण न्यायवत, अर्द्ध वाट तो आयारे;
अर्द्ध सुगम आगे रही तिनकों, जिन कछु मोह घटायारे. पूरव. ३
चेतन चार गतिमें निश्चय, मोक्षद्वार यह कायारे;
करते कामना देव विण याकी, जिनकों अनगल मायारे. पूरव. ४

रोहण गिरि ज्यौं रतन खाण त्यौं, गुन सब यामें समायारे;
महिमा मुखसें बरनत याकी, सुरपति मन शंकायारे. पूरव. ५
कल्पवृक्ष सम संयम केरी, अति शीतल जहां छायारे;
चरण करण गुन धरण महामुनी, मधुकर मन लोभायारे. पू. ६
यह तन बिन तिहुं काल कहो किन, सचा सुख निपजायारे;
औसर पाय न चूकै चिदानंद, सद्गुरु यौं दरसायारे. पूरव. ७

ये महाशय के वचन सुनकर विषयविमुख हो अवश्य जाग्रत होनाही दुरस्त है. और उन उन दुष्ट विषयोंमें मरजी मुजब घूमते हुए मन मर्कट और इंद्रियरूप घोडेकों रोककर श्री जिनाज्ञारूप सकल और चाबुकसें कायदेमें रखकर उन्होंकों प्रशस्त विषय जैसे कि श्री जिनदर्शन–पूजन, श्री गुरु संघ–साधर्मी सेवन और श्री वीतराग वचनामृत पान करने वगैरः में कुशलता पूर्वक प्रवर्तानेमें आवै तो जरुर जैसा चाहियें वैसा लाभ हो सकै. यानि संतोषामृतकी वृष्टिसें लीला लहर हो रहे. तथास्तु !

३ कषाय–कषाय यानि संसार लाभ अर्थात् कष (संसार) और आय (लाभ) इन शब्दके जुड जानेसें उसीका नाम कषाय तत्त्वसें रख्खा गया है. सो क्रोध मान माया और लोभ मिलकर चार प्रकारके कषाय है. क्रोध स्नेहका, मान विनयका, माया मित्रका और लोभ इन सभीका नाश करनेवाला है. उन हरएकका संज्वलन, प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान तथा अनंतानुबंधी ऐसे चार चार भेद हैं. और जिनकी उत्कृष्ट स्थिति क्रमसें आधा महीना,

चार महीने, बारह मास और जीवन पर्यंतकी है. जिनके सबबसें क्रमसें यथाख्यात चारित्र, सर्वविरति चारित्र, देशविरति चारित्र और सम्यक्त्व गुन ये आते हुवे रुक जाते हैं. और अनंतानुबंधि चगैरः बंध हो जानेसें सम्यक्त्वादि गुण सहजहीमें प्राप्त हो सकते है. वास्ते ऊपर कहे गये कषाय तापकों दूर करने के लिये बहुत भारी प्रयत्न करनेकी जरुरत है. थोडासा भी कषाय विश्वास रखने लायक नहीं है. अग्नि, ऋण और व्रणकी तरह उनकी तर्फ बेदरकारी दिखलानेसें बढकर बडा भारी नुकशान करते हैं. वो श्रुत केवली मुनीओंकों भी गिरा देते हैं, तो दूसरे अल्पमति सत्वचंतोका तो कहनाही क्या ? ऐसा समझ कषाय-क्रोध, मान, माया और लोभ इन्होंका सर्वथा त्याग करनेमें ही उद्युक्त रहना यही सुहृदय सत्पुरुषकी फर्ज है. दुःख भी कषाय ताप है वहां तकही है. कषाय ताप दूर हो गया के राग द्वेष सर्वथा सत्ताहीन हो जायेंगे. और वीतरागदशा प्राप्त हुइ के आत्मामें सर्वत्र शांति फैलकर कुल उपाधि तथा जन्म मरण भय दूर हो परमानंद रुप सहज शुद्ध आत्म सुख प्रकट हुवा. जिनका साक्षात् अनुभव श्री वीतरागकेवली या सिद्ध भगवानकों ही हो सकता है, दूसरे ऐहिक सुखके अर्थी जनोंकों नहीं हो सकता है.

क्रोध कषायकों दूर करनेके वास्ते श्रीयशोविजयजी महाराजने कहा है कि:-

दोहरा.

क्षमासार चंदनरसें, सींचो चित्त पवित्त;
दयावेल मंडप तळे, रहो लहो सुखमित्त. १
देता खेद रहित क्षमा, खेद रहित सुखराज;
तामें नहीं अचरिज कछु, कारण सारिखो काज. २

अनुष्टुप छंद.

क्षमाखङ्गः करेयस्य, दुर्जनः किं करिष्यति;
अतृणे पतितो वन्हि, स्स्वयमेवोपशाम्यति. ३

दोहरा.

मान महीधर छेद तुं, कर मृदुता पविघात;
ज्यौं सुख मारग सरलता, होवे चित्त विख्यात. ४
मृदुता कोमल कमलतें, वज्रसार अहंकार;
छेदत है एक पलकमें, अचरिज एह अपार. ५
अहंकार परमें धरत, न लहे निज गुण गंध;
अहंज्ञान निजगुण लगें, छूटे परहि संबंध. ६
माया शल्य तजनेके वास्ते वाचकजी कहते है किः—
-मायासापिणी जगडसे, ग्रसे सकल नयसार;
समरो ऋजुता जांगुली,—पाठ सिद्ध निरधार. ७

लोभ महादोष दूर करनेके वास्ते उपाध्यायजी कहते है कि:-

आगर सबही दोषको, गुण धनको वड चोर;
व्यसन वेलिको कंद है, लोभ पास चिहुंऔर. ८

लोभमेघ उन्नत भये, पापपंक बहु होत;
धर्महंस रति नहु लहै, रहे न ज्ञानउद्योत. ९

कोउ स्वयंभूरमणको, ज्यौं नही पावै पार;
त्यौं कोउ लोभसमुद्रको, लहै न मध्य प्रचार. १०

उ.॥ चारों प्रकारके कषाय संसारवृक्षके प्रबल मूल है—आधारतभू है उनका छेदन किये विगर संसार वृक्ष निमूल नहीं होता है. राग और द्वेष भी उन्हीके ही अंगभूत है; तथापि संसारका अंत नहीं.

श्रीमद् न्यायविशारद फरमाते है कि:-

राग द्वेष परिणाम युत, मनहि अनंत संसार;
तेहिज रागादिक रहित, जानि परमपद सार. ११

निष्कषायताही आत्माका सहज धर्म है; तदपि उपाधि संबंधसें ही कषाय प्रभवता है, यत:-

जिम निर्मलतारे रत्न स्फटिक तणी, तेम ए जीव स्वभाव;
ते जिनवीरें रे धर्म प्रकाशियो, प्रबल कषाय स्वभाव—श्रीसि.

तथा:-

जिम ते राते रे फुलडे रातडुं, शाम फुलथी रे शाम;
पाप पुण्यथी रे तिम जगजीवने, राग द्वेष परिणाम. श्रीसि.

धर्म न कहियें रे निश्चय तेहने, जे विभाव वड व्याधि;
पहेले अंगे रे ईणीपरे भाखियुं, कर्मे होय उपाधि. श्रीसि.
जे जे अंशे रे निरुपाधिकपणुं, ते ते जाणे रे धर्म;
सम्यक् दृष्टि रे गुणठाणा थकी, जाव लहे शिवशर्म. श्रीसि.
इम जाणीने रे ज्ञानदशा भजी, रहियें आप स्वरुप,
पर परिणतिथी रे धर्म न छंडियें, नवि पडिये भवकूप. श्रीसि.

यह सब हितबोधका मतलब यही है कि आत्माकी परिणति सुधारने के लिये हमेशां निरंतर प्रयत्न करने की जरुरत है. कषाय बल बंध पड जावे तभी आत्मगुण प्रकट हो सकै. यावत् कषायका विलकुल क्षय होवें तो आत्मा के संपूर्ण अनंत गुण कायम के लिये प्रकट होवै. यानि यह आत्माही खुद परमात्म दशा प्राप्त कर सिद्धि मंदिरमे जा सकै; अन्यथा नहीं. वास्ते महा बाधकभूत कषाय चतुष्कका जिस प्रकार तुरंत नाश हो सकै उस प्रकार सर्वज्ञ कथित पवित्र शास्त्राज्ञा मुजब चलनेकी दरकार करनीही योग्य है, जिस्सें उत्तरोत्तर सुख संपत्ति सहजहीमें संप्राप्त हो सकै– तथास्तु !

निद्रापंचकः—निंदमेंसें जगानेपरभी जो सुखसें जाग सकै उसीका नाम 'निंद्रा' है, मुशीवतसें जगा सकैं वो 'निंद्रा निंद्रा,' वैठेही या खडेखडेही निंद लेवै वो 'प्रचला,' चलते चलतें भी निंद लेवै वो 'प्रचला प्रचला,' और दिनके अंदर यादीमे शोच रख्खा होवै वैसा दुष्करतर काम भी निंदमेंसें अपने आपसेंही उठ कर वही काम कर आ पीछा अपने आपसेही सो जाय, तथापि उस कामका भान

न होवै ऐसी घोरातिघोर निंदका नाम 'थीणद्धि' कहा जाता है. उस अंतिम निंदमें उत्कृष्ट बलदेव के जितना बल आता है, वो मनुष्य मरकर नरकमें जाता है. यह पांचों प्रकारकी निंद क्रमसें एक एकसें ज्यादे सख्त दुःखदायी प्रतीत होती है. ज्ञानी पुरुष उनकों सर्वघातिनी कहते है. यानि वो आत्मा के गुणोंको नाश करनेवाली है, उसीसेही मोक्षार्थीजनोंकों उसीका विश्वास बिलकुल करनाही नहीं. महा मुनी जैसे भी उनका विश्वास न करते उनका उदय होतेही भयभीत होकर ऐसा बोल उठते है:—"बैरण निद्रा तुं कहांसें आइ?!" इत्यादि वचनोसें वो ऐसा बतला रहे है कि—बडेबडे मुनीजनोंकों भी वो तुरंत पदभ्रष्ट करदेती है, तो दूसरे रंक अज्ञानी मोहासक्त जीवोंकी बाबतमें तो करनाही क्या? ऐसाभी कहनमें आता है कि उनके एक हाथमें मुक्ति और दूसरे हाथमें फांसी है, उस्से जो मूढात्मा प्रमादके वश हुवा उनकों तो फांसी देकर यमका महेमान कर—मारकर महा दुःखका भोक्ता बनाती है. और जो उसीकोंही अप्रमादरूप वज्र दंडसें मारनेकों तैयार हो जाय तब तो उसी मारनेवालेके ऊपर प्रसन्न हो मुक्ति देती है, यानि वो महाशय सब संसारकी उपाधि छोड, जन्म मरणका चक्कर दूर कर निरुपाधिक मोक्षपदका अधिपती होता है. यावत् केवल-ज्ञानादि अनंत, अक्षय सहज आत्मिक ऋद्धि हस्तगत कर उसका कायम भुक्ता बननेकों भाग्यशाली होता है. इसलिये ही कहा है कि:— "धर्मी मनुष्य जागृत रहा ही अच्छा है. और पापी सोता रहे वही

अच्छा है." परमार्थ खुल्ला ही है कि निद्रादेवीका पराजय करनेवाला धर्मीजन—अप्रमादीजन अपना और पराया अवश्य कल्याण कर सकता है, और महा प्रमादी पापी मनुष्य मदोन्मत्त हो जागृत होनेपर भी अवश्य अहितकोही पोषण करता है. वास्ते मोक्षार्थी सज्जनोंको ज्यों बन सके त्यों निद्राका पराजय कर उन्हीकों नियममें रख स्व परहित फिक्र के साथ साध्य कर यह अमूल्य मानवभव सफल करना. तथास्तु!

विकथा चतुष्क—यद्यपि मुख्यतासें राजकथा, स्त्रीकथा, और भोजनकथाही विकथामें गिनी जाती हैं; क्यों कि मुग्ध जीवोंको बहुत करकें ऐसेही बाबत ज्यादे प्यारी होनेसें चित्तकों गमडा देती हैं; तथापि शुद्ध साध्य दृष्टि शिवाय जो जो जितनी जितनी शुद्ध साध्यकों छोडकर मरजी मुजब शास्त्र मर्यादा जाने किये विगर बातें करते हैं वो वो सभी उतने उतने हिस्सेसें विकथारुपही गिनाती हैं. इस वास्तेही भवभीरु गीतार्थही शास्त्रोपदेश देने लायक गिने जाते हैं. यद्यपि धर्मोपदेश कथा उत्तम है; तदपि उत्तम धन्वंतरी वैद्य जैसें हरएक रोगीके रोगका निदान संप्राप्ति आदि तपास कर गंभीरतासें उसकों उचित औषध मात्रा पथ्य सह बतलाता है; तैसेंही भिन्न भिन्न रुचिवंत भव्यजीवोंके भवरोग—कर्मरोगके नाश निमित्त भवभीरु गीतार्थ (सुत्रार्थ इन उभयके पारंगत) ही समर्थ गिने जाते हैं. वैसे समर्थ भाव वैद्य भव्य जीवोंके भवरोगका कारण गांभिर्यतासें शोचकर उनके भावरोगकों निर्मूल करनेकी बुद्धिसें प्रेर-

णावंत हो जो जो शक्य उपचारोंसें उनकी आंतर शुद्धि हो सके वैसा होवै तो उन उनके बनसके वहांतक सादे और सरल उपायों-सें अव्वलमें अतर शुद्धि यानि भीतरके मलरूपी मलीन वासना धोडालकर पीछेसें हरएक भव्य सत्वकी शक्ति मुजब उसको धर्म रसायण देते हैं. उनका अत्यंत प्रीतिपूर्वक सेवन करने वाले भव्य-जन परिणाममें अजरामर सुख संप्राप्त कर सकते हैं. और समस्त आधि व्याधि उपाधिसें मुक्त हो निरुपाधिक शिवसुखके स्वामी होते हैं. तथास्तु !

प्रमाद रुप झहरका पियाला छुडाकर अप्रमाद रुप अमृतका कटोरा पीनेकी प्रेरणा करते हुवे श्री चिदानंदजी महाराज सम-झाते है किः—

(पद पहिला—राग भैरव.)

जागरे बटाउ ! अब भइ भोर बेरा. जाग.
भया रविका प्रकाश, कमळ हु भये विकाश;
गया नाश प्यारे मिथ्या रैनका अंधेरा. जाग. १
सोतेसें क्यौं आवे घाट, काटनी जरुर बाट;
कोउ नांही मित्त परदेशमें है तेरा. जाग. २
अवसर बीत जाय, पिछे पिछतावो थाय;
चिदानंद निहचें यह मान कहा मेरा. जाग. ३

(पद दूसरा.)

चलना है जरूर जाकों, ताकों केसा सोवणा ? चलना.
हुवा जब प्रातकाल, माता धवरावे बाल;
जगजन सकल करत मुख धोवणा, चलना. १
सुरभिके बंध छूटे, घुवड भये अपूठे;
ग्वाल बाल मिलकें बिलोते हैं बिलोना. चलना. २
तज परमाद जाग, तुं भी तेरे काम लाग;
चिदानंद साथ पाय वृथा नहीं खोना. चलना. ३

[पद तीसरा.]

समझ परी मोय समज परी, जग माया सब झूठी मोय समझ परी;
काल काल तुं क्या करे मूरख ? नही भरोसा पल, एक घरी. जग. १
गाफिल छिनभर नाहि रहो तुम, शिरपर घूमे तेरे काल; अरी. जग. २
चिदानंद यह बात हमारी प्यारे, जानो मित्त मनमांहि खरी. जग. ३

(पद चौथा—राग केरवा.)

चितमें धरो प्यारे चित्तमें धरो, एती शीख हमारी प्यारे अब चितमे धरो;
थोडेसे जीवन काज अरे नर ! काहेकों छल प्रपंच करो ? चित्त. १

कूडकपट परद्रोह करत तुम, अरे परभवसें क्यौं न डरो? चित्त. २
चिदानंद ये नाहि मानो तो, जन्म मरन भव दुखमे परो. चित्त. ३

(पद पांचवा—राग विहाग.)

तज मन कुमता कुटिलको संग;
याके संग कुबुद्धि उपजत है, परत भजनमें भंग. तजमन. १
कहा भयो पय पान पिलावत ? विष न तजत भुजंग. तज. २
कउएकों क्या कपूर चुगावत ? श्वान न्हवावत गंग. तज. ३
खरकों क्या अरगजा लेपन, मर्कट भूषण अंग. तज. ४
ज्यौं पाषान वान नहि भेदत, रातो भयो निषंग. तज. ५
आनंदघन प्रभु कारी कंबरीयों, चढत न दूजो रंग. तज. ६

परोपकारपरायण श्री आनंदघनजी वगैरा तत्त्वदर्शि महात्मा भी पुनः प्रमादविष दूर करनेके संबंधमें वचनामृत छिडकनेके साथ कहते है कि 'अहो भव्यजीव ! तुम श्री जिनराज प्रभुजीके चरणका शरण अवलंबन करो.'

(पद छठा—राग अलैया विलावल.)

ऐसें जिन चरणे चित लाओरे मना, ऐसें अरिहंतके गुन गाओ
रे मना. ऐसें जिन.
उदर भरन कारनेरे, गौआं बनमें जाय;
चारो चरै चिहु दिश फिरै, वाकी सुरत बछरुवे मांय रे.
मना ऐसें. १
चार पांच साहेलीयांरे, हिल मिल पानी जाय;

तालि देवें खडखड हंसें, वाकी सुरत गगरिया मांयरे मना. अै.२
नटुवा नाचे चोकमेंरे, लोक करै लख शोर;
वांस ग्रही वरतें चढेरे, वाकी सुरत न चले कउ ठोर. रे मना. अै. ३
जुआरीके मनमें जुआरे, कामिके मन काम;
आनंदघन प्रभु युं ल्यो प्यारे, श्री भगवंतके नाम रे मना. अै. ४

(पद सातवा, राग आशावरी.)

आशा औरनकी कहा कीजे, ज्ञान सुधारस पीजे. आशा.
भटकत द्वार द्वार लोगनके, दूकर आशा धारी;
आतम अनुभव रसके रसिया, उतरे न कबहु खुमारी. आशा. १
आशा दासीके जो जाये, सो जन जगके दासा;
आशा दासी करत जो नायक, लायक अनुभव प्यासा. आशा. २
मनसा प्याला प्रेम मसाला, ब्रह्म अग्नि परजाली;
तन भट्ठी औटाइ पिये कस, जागे अनुभव लाली. आशा. ३
अगम पियाला पियो मतवाला, चिन्ही अध्यातम वासा;
आनंदघन चेतन व्है खेले, देखे लोग तमासा. आशा. ४

(पद आठवा—राग आशावरी.)

साधु संगति विन कैसें पैयें, परम महा रस धामरी ? साधु.
कोटि उपाय करे जो वाउरो, अनुभव कथा विसरामरि; साधु. १
शीतल सफल संत सुरपादप, सेवे सदा सु छांयरी ! साधु.
वांछित फलै टलै अनवांछित, भय संताप बुझायरी. साधु. २

चतुर विरंची विरंजन चाहे, चरन कमल मकरंदरी;
को हरी भरम विहार दिखावै, शुद्ध निरंजन चंदरी. साधु. ३
देव असुर इंद्र पद चाहुं न, राज न काज समाजरी;
संगति साधु निरंतर पाउं, आनंद घन महाराजरी. साधु. ४

(पद नौवॉ.)

पांचों घोडा एक रथ जुता, साहिब इनका भीतर सुता. पांचों.
खेडू उसका मदमतवारा, घोडोंको दोरावनहारा. पांचों. १
घोरे ऊँठे और और चाहै, रथकों फिरिफिरि ऊवट वाहै;
विषम पंथ चहु ओर अँधियारा, तोभी न जागै साहिब प्यारा. पां. २
खेडू रथकों दूर दोरावै, वे खबर साहिब दुख पावे;
रथ जंगलमें जाय असूझे, साहिब सोया कछुअ न बूझे. पां. ३
चोर ठगारे वहां मिल आये, दोनूकों मद प्याला पाये;
रथ जंगलमें जीरण कीना, माल धनीका उदाली लीना. पांचों. ४
धनी जागा तब खेडू बांधा, रास परोंना ले शिर सांधा;
चोर भगे रथ मारग लाया, अपना राज विनयजी उपाया. पां. ५
(विनय विलास.)

पद दशवॉं.

योग युक्ति जाने विना, कहा नाम धरावै ?
रमापति कहे रंककुं, धन हाथ न आवै. योग. १
योग धरी माया केरी, जगकों भरमावै;

पूरन परमानंदकी, सुधी रंच न पावै. योग. २
मन मुंड्ये बिन मुंडकों, अति घोट मुंडावै;
जटाजूट शिर धारकें, कोउ कान फरावै. योग. ३
उर्द्ध वाहु अधो मुखें, तन ताप तपावै;
चिदानंद समझे बिना, गिनति नहिं आवै. योग. ४

(पद अग्यारवाँ—राग बिलावल.)

राम राम जग गावै, अवधू, राम राम जग गावै;
विरला अलख लखावै, अवधू, राम राम जग गावै.
मत वाला तो मतमें माता, मठ वाला मठ राता;
जटा जटाधर पटा पटाधर, छता छताधर ताता. अवधू रा. १
आगम पढी आगमधर थाके, माया धारी छाके;
दुनियां दार दुनिसें लागे, दासा सब आशाके. अवधू. रा. २
वहिरातम मूढा जग जेता, माया के फंद रहता;
घट अंतर परमातम भावै, दुर्लभ प्राणी तेता. अवधू. रा. ३
खग पद गगन मीनपद जलमें, जो खोजे सो बौरा;
चित पंकज खोजे सो चीनै, रमता आनंद भौंरा. अवधू. रा.

(पद बारहवाँ—राग आशावरी.)

वा पदवी कब पाऊं, दीनानाथ, वा पदवी कब पाऊं ?
वा पद पाइ अमृतरस झीलुं आनंदमय होय जाऊं. दीना. १
चारों चोर वडे वटपाडे, ताकौ दूर बिडाऊं;

चार चुगलकों पकडी बंधाऊं, न्याय अदल वरताऊं. दीना. २
अपनो राज अपने वश राखी, परबशपन न रहाऊं;
रुपचंद कहे नाथकृपासें, अव में नाथ कहाउं. दीना. ३

(पद तेरहवाँ.)

प्रभु भज लै मेरा दिलराजी. प्रभु भज लै.
आठ पहेरकी चोसठ घरियां, दो घरियां जिन साजी; प्रभु. १
दान पुण्य कछु धरम करी लै, मोह मायाकों त्याजी. प्रभु.
आनंदघन कहे समझ समझरे, आखिर खोयगा बाजी. प्रभु. ३

अपने और पराये हित के वास्ते पापी प्रमादपंचकके फंदमें फंसानेसें बचनेके लिये जो कुछ लिखा गया है उनकों लक्षमें ले कर राजहंसकी तरह सार सार ग्रहण करकें सज्जन स्वपर श्रेय साध कर अमूल्य मानवदेह सार्थक करेंगे तो कर्पूर समान उज्वल महायश प्राप्त करकें अंतमें अवश्य अक्षयसुखके स्वामी होवेंगे.

सामान्य हितशिक्षा.

(१) जयणा यतना, वो वो धर्म संबंधी या व्यवहार संबंधी, परलोक वास्ते या इस लोक वास्ते, परमार्थसें या स्वार्थसें जो जो व्यापार करनेमें आवें उनमें बराबर उपयोग रखना वो उसका सामान्य अर्थ है. विशेषार्थ विचारनेसें तो, आत्माका शुद्ध निर्दंभ मोक्षार्थ शांतिपूर्वक करनेमे आये हुवे मन–वचन–तन द्वारा व्यापार

विशेष मालुम होता है; इसी लिये ही ज्ञानीशेखर पुरुषोंने जयणाकों धर्मकी माता कह वतलाइ है—याने आत्मधर्म—गुणोंकों उत्पन्न करनेहारी—पालने करनेवाली वृद्धि करनेवाली—यावत् एकांत सुखकारी जयणा ही है. जयणा रहित चलनेवाले, खडे रहनेवाले, बेठनेवाले, सोनेवाले, भोजन करनेवाले या भाषण करने—बोलनेवाले उन उन चलनादिक क्रिया करनेमें त्रस या स्थावर जीवोंकी हिंसा करते है जिस्सें पापकर्म बांधते है. उनका विपाक कटु होता है. वास्ते सुज्ञ विवेकी सज्जनोंकों वो वो चलनादिक क्रिया करनेके वख्त ज्यौं ज्यौं विशेष जयणा समाली जाय त्यौं वर्त्तन रखना वही हितकारक है; क्यौं कि सभी जीवोंकों अपने जीव समान गिनता हुवा किसी भी जीवकों दुःख न देनेकी बुद्धिसें समस्त पापस्थान त्याग कर आत्मनिग्रह करता है वही महात्मा कर्म नहीं बांधता है. अन्यथा अपने काल्पित क्षणिक सुखकी खातिर नाहक अनेक निरपराधि जीवोंके प्राणोंकों हरण करता हुवा, अजयणासें वर्त्तन चलाता हुवा वो जीव भारीकर्मा होता है यानि वडे भारी कर्म बांधता है, कि जो कर्म उदय आनेसें वहुतही कटुरस देता है. दृष्टांतरुप कि परजीवोंके संरक्षणके वास्ते मुनिमहाराज रजोहरण ओघा, तथा सामायिक पोषधादिक व्रतोंमे श्रावक चरवला, और इन सिवायके गृहस्थ लोग कचरा कस्तर दूर करनेके वास्ते बुहारी रखते हैं; मगर वै सुकोमल होवै तब और हलके हाथोंसें उन्होंका उपयोग करनेमें आवै तब तो जीवरक्षारुप प्रमार्जना सार्थक हो जयणा पा-

लन करनेमें मददगार होती है; लेकिन उस बिगर नही होती. आजकल अज्ञान दशासें मुग्ध जीव जमीन साफ करनेके वास्ते अच्छे सुकोमल नरमासवाले उपकरण न रखते वहुत करके खजुरी वगैरः की तीक्ष्ण बुहारीयोंका उपयोग करते हुवे मालुम होते हैं कि जो विचारे एकेंद्रियसें लगाकर त्रस जीवो तकके संहार होनेके लिये भारी शस्त्र हो पडता है. अपनको एक कांटा लगनेसें दुःख होता है, तो विचारे वे क्षुद्रजीवोंकी जान निकल जाय वैसे शस्त्र समान घातक पदार्थ वपरासमें लेनेके वास्ते हिंदु—आर्य मात्रकों और विशेष करके कुल जैनोंकों तो साफ मना ही है जिससें दुरस्त ही नही है. अल्प खर्च और अल्प महेनतसें सेवन करनेमें आता हुवा भारी दोष दूर हो सके वैसा है; तथापि वे दरकारीसें उनकी उपेक्षा किये करे, ये दयालु जीवोंकों क्या लाजिम है ? बिलकुल नहीं ! वास्ते उमेद है कि उस संबंधमें धर्मकी कुछ भी फिक्र रखनेवाले या तरक्की करनेवाले उनका तुरत विचार करके अमल करेंगे.

दूसरी भी उपर बताइ गइ चलनादिक क्रिया करनेकी जरुरत पडती है, उनमें बहुत ही उपयोग रखकर जीवोंकी विराध न करते जयणा पालन करनी चाहियें. चलने के वख्त पूर्णपणेसें जमीनपर समतोल नजर रखकर एकाग्र चित्तसें वर्त्तन रखनेमें, और बैठने, ऊठनेमें, खडे रहने—सोनेमें, भी उसी तरह किसी जीवकों तकलीफ न होने पावे वैसी सावचेती रखकर रहना चाहियें. भोजन संबंधमें तो जैनशास्त्र प्रसिद्ध बाइस अमक्ष्य और बत्तीस

अनंतकाय छोड कर, और दूसरे भोज्यपदार्थमी जीवाकुल नही है ऐसा मालुम हुवे बाद, तथा जानकरकें या अनजानतें जीवोंका संहार करके बनाया गया न होय वैसेही उपयोगमें लेने चाहियें. वो भी दिनमें प्रकाशवाली जगहमें पुख्ते बरतनमें रखकर उपयोगमें लेने चाहियें कि जिस्सें स्वपरकी बाधा–हरकत के विरहसें जयणा माताकी उपासना की कही जावै.

वापण भी हितकारी और कार्य जितना–(Short & Sweet) तथा धर्मको दखल न पहुंचने पावे वैसा और जैसा जहां समय उपस्थित हो वहां वैसाही (समयोचित) बोलना. और बोलने के वख्त विरतिवंतको मुहपत्ति और गृहस्थको भी इंद्र महाराजकी तरह धर्मकथा प्रसंग समय जरुर उत्तरासंग–वस्त्रको मुंह आगे रखकर बोलना कि जिस्सें जयणा सेवनकी मालुम होवै.

इस तरह उपर कही गइ करणियें करने के वख्त ज्यों ज्यों अप्रमत्ततासें वर्त्तन रख्खा जाय त्यों त्यों विशेषतासें आराधकपणा समझना. और उस्सें विरुद्ध वर्त्तन रख्खै तो विराधकपणा समझ लेना. पूज्य मातुश्रीकी तरह मानने लायक श्री पूज्य तीर्थंकर गणधर प्रणीत पवित्र अंगवाली जयणामाताका अनादर करके वर्त्तन चलानेवाले कुपुत्रोंकी तरह इन लोकमें और परलोकमें हांसी तथा दुःख के पात्र होते है. वास्ते सपूतकी तरह जयणामाताका आराधन करनेमें नही चूकना–यही तात्पर्य है.

(२) झूंठवाडा–झूंठा अन्न या पानी खाने पीने या छांटनेसें

अपने मुग्ध भाइ और भगिनीयें कितना वहुत अनर्थ सेवन करते है सो ध्यानमें रख्खो ? पूर्व तथा उत्तरके देशोंको छोडकर आजकल यहां के अज्ञ जीव इन झुंठकी बावतमें वहुत अधर्म सेवन करते है उनका नमूना देखो ? सभी कोइ कुटुंबी या ज्ञाति भाइयोंके वास्ते पानी पीने के लिये रख्खे हुवे वरतनोंमेंसे पानी निकालने भरनेके लिये एक इलायदा वरतन—लोटा अगर प्याला नहीं रखते हैं; मगर जिसी वरतनसें आप मुंहको लगाकर पानी पीते है, वस वही झूंठे जलयुक्त वरतनसें पुनः उसी जल भरित वरतनकी अंदरसें पानी निकाल कर आप पीते है या दूसरोंको पिलाते हैं, जिस्सें शास्त्र मर्यादा मुजव उन जल भाजनमें असंख्यात लालिये समूर्छिम जीव पैदा होते हैं यानि वो जलभाजन (पानीका वरतन) क्षुद्र अति सुक्ष्म जीवमय हो जाता है, उन्हीकों, मुंह लगाकर झुंठा वरतन पानी भरे हुवे वरतनेमें डालने वाले अज्ञ पशु जैसे निर्विवेकी जीव पीते हैं असा कहना अयोग्य नहीं होगा. झूंठा अन्न या पानी अंतर्मुहुर्त्त उपरांत अविवेके या प्रमादसें रख छोडने वाला इस तरह असंख्य जीवोंकी विराधना करने वाला होता है. असा समझकर हृदयमें ज्ञान, मगजमें भान लाकर परभवसें डरकर जिस प्रकार वैं असंख्य जीवोंका नाहक—मुफत संसार न होवे उसप्रकार चेतने रहना योग्य है यानि खाने पीनेकी वस्तुमें झुंठा पात्र हाथ न डालना और न झूंठा बनाकर दूसरेको देना.

उसी तरह गत दिनका ठंडा भोजन पदार्थ, धुप दिखाये विगर

बनाया गया आम आदिका आचार, दो हिस्से होने वाले विदल मुंग, उडद, चिने, अरहर, मटर वगैरः के साथ कच्चा दहीं खाना अभक्ष्य भक्षणरुप होनेसें उन्होंका तद्दन त्याग करना. (वैद्यकीय नियमसेंभी ये चीजे तन्दुरस्ती बिगाडने वाली ही हैं वास्ते छोडने-सें जरुर फायदाही होता है.) छोटे वडे जीमन-ज्ञाति, कुटुंब भोज-नके वास्ते वनाइ गइ रसोई कि जिसके वनानेके वख्त जयणा न रखनेसें वहूतसें जीवोंका सत्यानाश निकस जाता है. और झूंठा अन्न जल ढोलनेसेंभी वहूतही नुकसान होता है यदि सब जगह जयणा पुर्वक वर्त्तनमें आवै तो किसीकोंभी हरकत न पहूंचने पावै, और धर्माराधनका वडा लाभ भी सहजहीमें हांसिल कर सकै. वास्ते हे सुज्ञ जन वृंद ! लज्जा और दयावंत हो एक पलभरभी जयणाकों भूल नहीं जाना.

(३) उडाउ खर्च—मा वापके मरे वाद अगर लडका लडकीकी शादी के वख्त बहुत जगह फजुल खर्च करनेमें आता है, और उन वख्तोंमें करने लायक खर्च तर्फ वेदरकारी रखनेमें आतीहै. दृष्टांत-रुप यह कि माता पिताने अंत कालमें वैराग्य द्वारा मोह उतारकर तन मन धनसें जिस प्रकार उन्होंकों धर्मसमाधि होवै—यावत् उन्होंकी या आपकी सद्गति जिस सुकृत करनेसें हो सकै उसी प्रकार वर्त्तना लाजिम है. अवश्य करने लायक वो वावतका भान भूलकर पीछे फक्त लोकलाजसें नाहक भारी खर्चमें उतरना उन करतें तो उत्त-नाही धन परमार्थ मार्गमें व्यय करना सो विशेष श्रेष्ठ हैं. पुत्रादिकके

जन्म या लग्नादि प्रसंगपर परम मांगलिक श्री देवगुरुकी पूजा भक्ति भूलकर झूंठी धूमधाम रचनेमें लाखों नहीं बलके करोडों जीवोंका विनाश होवै वैसी आतशबाजी छोडने वगैरः में अपार धनका गैर उपयोग करनेमें आता है, वैसा भवभीरु सज्जनोंको करना ना दुरस्त है.

(४) मावापोंका उलटा शिक्षण और उलटा वर्तनः—मावाप, उनके मावापोंकी तर्फसें अच्छा धार्मिक व्यवहारिक वारसा मिलानेमें कमनशीव रहनेसें, किंवा भाग्य योगसें मिल हुवे परभी उनका कुसंग द्वारा विनाश करनेसें अपने बालकोंको वैसा उमदा वारसा देनेमें भाग्यशाली किस तरह वन सकै ? अगर कभी सत्संगति मिलगइ होवे तो वैसे मावाप भी अपने बाल बच्चोंको वैसा प्रशंसनीय वारिसनामा करदेनेमें शायद भाग्यशाली बन भी शकै ! क्यौं कि—' सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ? यानि कहो भाइ ! उत्तम संगति पुरुषोंको क्या क्या सत्फल न दे सकती है ? सभी सत्फल दे सकती है ! ' उत्तम संगति के योगसें प्राणी उत्तमताको प्राप्त करता है, उत्तम बनता है, तो फिर वैसी अमूल्य सत्संगति करनेमें और करके कौनसा कमबख्त उत्तम फल प्राप्तिमें वेनशीव रहेगा ? शास्त्र के जाननेवाले पंडित लोग कहते है कि—' बुरेमें बुरी और बुरेमें बुरे फलकी देनेहारी कुसंगतिही है. ' तो बुरे फलको चखनेकी चाहनावाला कौन मंदमति ऐसी कुसंगतिको कबूल करेगा ? बस प्रसंगवशात् इतनाही कहकर अब विचार करें कि—अपने बाल-

बच्चोंको सुखी करनेकी चाहतवाले मावाप वैसी कुसंगतिसें लडके लडकीकों बचा रक्खें और सत्संगतिमें लगा देनेकी वडी खंत रखकर उसको अमलमें लेवें. यदि ऐसा न करेंगे. तो वैसे मावापोंको बाल बच्चों के हित करनेवाले नही मगर बेधडकसें अहित—बुरा करनेवाले ही कहेंगे. वै मावित्र नही किंतु कट्टे दुश्मन ही समझो; क्यों कि उन्होंने अपनें बाल बच्चोंको जान बुझकर या बेदरकारीसें सद्गतिका मार्ग बंधकर दुर्गतिका मार्ग खुल्ला कर दिया है, उलटे रस्ते पर चडा दिये है; वास्ते बालकका जन्म हुवेके पेस्तर भी गर्भमें उसकों हरकत न होवे उस तरह विषय सेवन संबंधमें संतोषयुक्त मावापोंकों रहना चाहिये. जन्म हुवे बाद कुछ बोलना शिख लेवै तब तक, या बाल्यावस्था तकमें वो बच्चा अपशब्द न सुने या बोले नहीं, तथा सूक्ष्म जंतूकों भी मारनेका न सीखे और न मारै ऐसा उपयोग देनेमें मावित्रोंकों वडी खबरदारी रखनी चाहियें और उसकों किसी वदचाल चलन बद खिसलत वाले लोगोंकी सोबत न होने पावै उनकी वडी फिक्र और तजवीज रखना चाहिये. जब समझके घरमें आया के तुरंत उसकों अच्छे विद्यागुरु या धर्मगुरुके वहां सोंप देना चाहिये. कि जो विद्या-धर्मगुरु उनकों विनय वगैरः सद्गुणोंका अच्छे प्रकार सह पूर्ण शिक्षण देवें, जिस्सें प्राप्त भइ हुइ विद्याकी सफलतारुप वो विवेकरत्न प्राप्त कर सके. अन्यथा कुसंग कुच्छंदके योगसें विनय विद्याहीन रहनेसें विवेक रहित पशु जैसी आचरणा करता हुवा जंगलके रोझकी तरह भवाटवीमें भटकता फिरता है.

वाललग्न कुजोड ये सब विद्या विनयादिक पानेमें वडे हरकते रुप होते है, जिसके परिणामसें वे इस लोकके स्वार्थसें भ्रष्ट होकर परभवका भी साधन प्रायः नही कर सकते हैं; इतनाही नहीं लेकिन अनेक प्रकारके दुर्गुण शीखकर वडे कष्टोंके भुगतनेवाले हो जाते हैं; वास्ते वाल वच्चोंका सुधारा करनेकी जोखमदारी मावापोंके शिरपरसें कभी नहीं होती है, वो उन्होंको खूव शोचनेकी जरुरत है. मावापोंकी कसूरसें लडके मूर्ख प्रायः रहनेसें उन्हीको ही एक शल्यरुप होते है, और उन्हीकी पवित्र खंतसें वालक व्यवहार और धर्म कर्ममें निपूण होनेके सववसें उभय लोकमें सुखी होनेसें उन्होंको भवोभवमें शुभाशिर्वाद देते हैं. परंपरासें अनेक जीवोंके हितकर्त्ता होते है. और वे श्रेष्ठ मावापोंके दर्जेकी खुदकी फर्ज अपने वालवच्चे या संवंधीयोंकी तर्फ अदा करनेमें नहीं चूकते हैं. हमेशां सज्जन वर्गमें अपने सद्विचार फैलानेके वास्ते यत्न करते हैं, और पारमार्थिक कार्योमें अवलदर्जेका काम उठाकर दूसरे योग्य जीवोंको भी अपने अपने योग्य करनेकी प्रेरणा करते हैं. ये सव फायदे मावापोंके उत्तम शिक्षण और उत्तम चाल चलनपर आधार रखनेवाले होनेसें अपन इच्छेंगे कि भविष्यमें होनेवाली अपनी आल औलादका भला चाहनेवाले मावाप आप खुद उत्तम शिक्षण प्राप्त कर, उत्तम चालचलन रखकर अपने वाल वच्चांओंके अंतःकरणका शुभ धन्यवाद मिलानेको भाग्यशाली होवेंगे. अस्तु !

श्रावक नामसें पहिचानेंगें आते हुवे जे-नोंकी अमल करने लायक फर्ज.

या

श्रावक धर्मकी पद्धति प्रणालीका.

पूर्व पुण्यके योगसें दश दृष्टांतरुप दुर्लभ मानव भवादिक उत्तम सामग्री पाकर अपना पुरुषार्थ स्फुरायमान करकें परम पवित्र श्री वीतराग प्रणीत धर्ममार्गका जानपना मिलाकर उनका यथाशक्ति सेवन–आराधन कर कृतकृत्य होना यही हरएक अक्कलमंद श्रावक कुलमें पैदा हुवे भाइयों और भगिनीयों तथा युक्तियुक्त सत्य वार्त्ताकों कदाग्रह रहित कबुल रखनेवाले निष्पक्षपात बुद्धिवंत मध्यस्थ दृष्टिवंत जनोंकी फर्ज है. अपनी खास फर्ज बजाये विगर आखिरकों अपना छुटका नहीं है; वास्ते हरएक आत्मार्थी जीवोंकों अपनी मुख्य फर्ज जाननेकी या जानकर वहुत खंतके साथ अमलमे लेनेकी जरुरत है.

अव्वलमें तो महा मलीनताजनक रागद्वेष और मोहादिग्रस्त कुदेव कुगुरु और उन्होंका कथन किया गया कुधर्मका तदन त्याग करनाही योग्य है. उनमें भी कुगुरुकों तो काले साँपसें भी अधिक दुःखदायी मानकर त्याग देने चाहिये; क्यौं कि काला नाग कदाचित् काटे तो एकही वख्त प्राण लेता है; लेकिन कुगुरुरुप सांपका मिथ्या उपदेशरुप दंश तो जन्म जन्म फिराकर जन्म म-

रण कराता है; वास्ते बुद्धिवंतकों उनकी कुसंगति बिल्कुल छोड देना और पुर्वोक्त रागादिक कलंकसें तद्दन रहित सुदेव वीतराग सर्वज्ञदेवकी आज्ञा आराधनेमें तत्पर रहना, तथा बाह्याभ्यंतर ग्रंथिसें रहित निर्ग्रंथ सद्गुरु और वीतराग प्ररुपित दान–शील–तप–भावनारुप सुधर्म उनकों बहुत यत्नके साथ सेवन करनेमें कटिबद्ध रहना चाहियें. उनमें भी साक्षात् तीर्थंकर या केवलज्ञानीके विरहके वख्त निग्रंथ गुरु–साधुकी सेवा करनेमें ज्यादे रसिक होना चाहियें; क्यौं कि वैसे सद्गुरुओंसें भव्यप्राणीकों भवभय दूर करनेहारे शुद्ध देव–गुरु–और धर्म संबंधी तत्त्वोपदेश मिलता है, जिनकों अंगीकार कर अनेक भव्यजीव भीष्मभवोदधि सहजहीमें तिर जाते हैं. यानि तमाम दुःखोंका नाश करके कायमके लिये अक्षयसुख प्राप्त करते हैं.

(सद्गुरु उपदेश तीन तत्त्वोंका सेवन.)

अय भव्यजनो ! यदि तुम जन्म जरा मरनसें, आधि व्याधि उपाधिसें, भरपूर उत्पन्न होनेवाले अत्यंत दुःखोंसें भरा हुवा ये भव संसारसें कुछ उद्विग्न या अलग होनेकी फिक्रवाले हुवे हो, और तुमको मोक्षपुरीके अक्षय सुखोंको साक्षात् अनुभवमें लेनेकी अभिलाषा जागृत हो तो संसारके समस्त दुःखोंकों काटनेके वास्ते और अक्षयमोक्ष सुख साधनेके वास्ते इस मुजब उद्यम करो. यानि पहिली तो पुर्वोक्त कहे हुवे दोषोंसें दूषित भये हुवे कुदेव–कुगुरु–और कुधर्मकों हमेशांके लिये बिलकुल जलांजली दे दो. उन्होंको

तद्दन छोड दो. और शुद्ध देव वीतराग परमात्मा, शुद्ध गुरु–निर्ग्रंथ अणगार, और शुद्ध धर्म–केवली प्ररुपितका शुद्ध दिलसे सेवन करो. मन, वचन, तन ये तीनूंकी शुद्धिसें सुदेव-सुगुरु-सुधर्मकी आराधना करो. कुदेवकी मनसें इच्छा, वचनसें प्रार्थना, और तनसे चाहे वैसा कष्ट आ पडे तथापि कुमारपाल भूपालकी तरह अडग धीरज धारन करके निर्भय रहो. इस तरह अचल रीति मुजब तीनूं तत्वोंका सेवन करनेसें आखिरमें तुम बहुत सुख पाओगे. यदि अैसा न करोगे तो बेशक तुम सब बाजी हार जाओगे. जगत्में भी 'क्षणभरमें मासाभर और क्षणभरमें तोलेभर–' होने वाले चपल चित्तवंत निंदाके पात्र होते है. और जैसा मनमें वैसाही बचनमें और जैसा वचनमें वैसाही तनमें वर्त्तन रखनेवाले जन जगतमें बहुत यशवाद पाते हैं. कुमारपालकी तरह दुसरे जीवोंको दृष्टांतरुप होते है. वास्ते स्थिर मन वचन तनद्वारा शुद्ध देवगुरु धर्मरुप तीनूं तत्वोंका एकाग्रपणेसें आराधन करना, जिस्सें आखिरमें अपनभी उसी रुप हो जावै–यानि चारों गतिरुप भवभ्रमणा दूर करकें पंचमी मोक्षगतिरुप अक्षयपद अवश्य प्राप्त कर सकें, और सभी दुखोंका अंत कर संपूर्ण सुख स्वाधीन कर कायमपणे उसका साक्षात् अनुभव कर आनंदमें मग्न होवैं.

(सप्त महा व्यसनोंका वर्जना.)

अय भव्य जीव ! नरक गतिमें जाने के–दाखिल होने के दरवज्जे समान सात महा बडे व्यसन ज्ञानीजनोंने शास्त्रमें विस्तार-

युक्त बतलाये है. उन्होंकों समझ करकें त्याग करनेवाला नरक गतिसें अपना बचाव करकें सुखपूर्वक मोक्षपुरीमें जा सकता है. वास्ते उन व्यसनोंकी समझ मिलाने के वास्ते संक्षिप्त वर्णन करते हैं. मांस भक्षण १, मदिरा पान २, शिकार खेल ३, परस्त्रीगमन. ४, वेश्या—नगरनायका गमन. ५, चोरी. ६, जुगार. ७, यह सातों व्यसन महा पापमय और यहलोक परलोक विरुद्ध होनेसें बिलकुल दुःखके देनेहारे हैं. इन सातों व्यसनकी अंदरके एक व्यसनसेंभी पराव पाया हुवा प्राणी आखिर जरुर पायमाल हो जाता है, तो इन सातो व्यसनके सेवनेवालों के लिये तो कहनाही क्या ? !

इन वस्तुओंके अत्यंत व्यसनवाले लोग बडे नीचकर्मके करनेवाले होनेसें इस जहाँमेंभी बहुत धिःकारकों पाते हैं बडे दंडकी शिक्षा उठाते हैं. यावत् बेमौत—असमाधि मरणसें इस दुनियांकों छोडकर चले जाते हैं. और जन्मजन्ममें नरक निगोदादि के अनंत दुःख—अनंतवार पाते है. नरकके अंदर परमाधामी वगैरः कठिनमें कठिन वेदना देते हैं. वहां किसीका शरण भी नहीं, गिरपडनेपरभी लातोंका मार पडनेकी तरह या जल गये हुवे पर लूनको लगानेकी तरह परमाधामी पूर्वकृत महान् पापोंको सुना सुनाकर बहुत बहुत संताप देते हैं. वो सब सहन न होनेसें वे महा पुकार करते हैं; मगर वो पुकार सुनकर किनके दिलमें दया पैदा होवै— किसीकों भी लेश दया नहीं आती. वज्र जैसी कठिन छातीवाले परमाधामी ऐसे पापीओंकों पीडते ही जाते हैं, उस वख्त पूर्वकृत

पाप याद आनेसें बहुत पिछतावा होता है; लेकिन जैसा जैसा कठोर कर्म—पाप किया होवै उस उस मुजब दुःख भुक्तने के बादही वहांसें छूटकारा होता है, वो भी समतासें भुक्ते तो; नहीं तो महा आर्त्त रौद्र ध्यानसें पीछे भारी निकाचित कर्म नये बांध लेनेसें पुनः उससेंभी कठिन विशेष दुःख आगेकों भुक्तने पडते हैं.

इस मुजब पेस्तर और पीछे भी केवल दुःखकों ही देनेहारे उ.त. कथित सात महा व्यसन बुद्धिमानोंकों अपने हितकी खातिर संकल्प—निश्चयपूर्वक छोड देनेही चाहियें. ये महा व्यसनों के सेवने-हारे (मन वचन तनद्वारा करने कराने या इन्होंकी प्रशंसा करने-हारे) महा संक्लिष्ट परिणामसें महा अशुभ निकाचित कर्म बांधकर अपनेही आत्माकों महा मलीन करकें नरकादि अधोगति पाकर अनंत दुःख पाते है. इसीसेंही परमकृपालु सर्वज्ञ प्रभुने भव्य जीवोंके भलेकी खातिर उपर कहे गये सप्त व्यसन छोडनेके संबंधमें शास्त्रोंमें प्रसंग प्रसंगपर उपदेश किया है. कोमल हृदय—पवित्र आशयवाले प्राणी वैसा पवित्र उपदेश पाकर पूर्वोक्त सात महा व्यसनोंकों ज्यौं बन सकें त्यौं तुरंत जरुर छोड देते है. फक्त अर्धदग्ध या दुर्विदग्ध दुर्भागी जीवही वैसे सदुपदेशका अनादर करकें कुमतिकी कदर्थनाकों सहन करते हुवे आपमतीसें उलटे चलते है. उन्होंकी छाती वैसेही घोरकर्म करनेमें अत्यंत कठिन वज्र जैसी होनेसें वै बिचारे नरकादि महादुःखों के ही अधिकारी.

हैं. और वैसे सदुपदेशादिकके विरहसें अनादिके उलटे अभ्यास के सबबसें वैसे कुकर्मके सेवनेहारेके भी वैसेही हाल होते हैं. ये उपदेशका मतलब इतनाही है कि—पुर्व पुण्यद्वारा मिली हुइ सद्गुरु आदि उत्तम सामग्रीका लाभ लेकर ज्यौं वन सके त्यौं तुरंत पूर्वोक्त महा सात व्यसनोंका सहेतुक स्वरुप समझ कर संकल्पपूर्वक उन्होंको जरुर त्याग करना, यही हरएक अकलमंद शरीरधारीयोंका कर्त्तव्य है.

सामग्री विद्यमान होने परभी उसका अनादरके भविष्यमें प्राप्त होने वाली सामग्री योगसें साधनेकी आशा केवल दुराशारुप ही है; क्योंकि वैसे सत् साधन बिगर वैसी उत्तम सामग्रीका लाभ जन्मांतरमेंभी होना असंभवित है. अज्ञान दशाके वश अतीत अनंतकाल तो योंका युंही निकम्मा गुमाया और अभीभी पूर्वसंचित योगसें मिली हुइ सत् सामग्रीका लाभ न ले सकता है, सो मंदभाग्य या हतभाग्य दुर्भव्यकों आगे बहुत शोचना पडेगा. पूर्वपुण्य योगसें मिला हुवा ये मनुष्य जन्म सद्गुरु समागमादिरुप सत् सामग्रीका विद्यमान लाभ पाकर प्रमादरुप महान् शत्रुके तावे होकर कें चिंतामणि रत्न सदृश धर्मका आराधन नहीं करता है, वो मूढ पामर प्राणी सचमुच चतुर्गतिरुप संसाराटवीमें बहुत दफै भटककर महा दुःखयातना पाता है और पावेगा; वास्ते दुःखसें डरनेवाले सुखार्थी जीवोंको जरुर प्रमादके फंदमेंसें छूटकर स्वश्रेय साधनमें न चूकना. अभी अल्प कष्टमे थोडे वख्तमें स्वाधीनतासें चाहे तो

आत्मसाधन हो सके वैसा है; लेकिन प्रमादसें ये अमूल्य तक चुक गया तो फिर पीछे ठिकाना पडना वडा मुश्किल है. पीछे तो पराधीनतासें पूर्ण दुःख दरियावमें डूबे हुवे परभी कोइ शरणभूत होने वालाही नहीं. श्री शत्रुंजय महात्म्यकी अंदर कंडुराजाके अधिकारमें श्री धनेश्वर सूरीजीने कहा है किः—

" धर्मेणाधि गतैश्वर्यो, धर्ममेव निहंति यः
कथं शूभायतिर्भावी, स स्वामी द्रोह पातकी. "

सारांश यही है कि—पूर्वमें सेवन किये हुवें धर्मके प्रभावसेंही करकें सभी संपत्ति पाये पर भी जो मूढबुद्धि धर्मकोंही विनाशता है वो स्वामीद्रोह करनेहारा महापापीका कल्यान किस तरह होवेगा ? मतलवमें—कदापि न हो सकेगा. एक सामान्य राजाका हुकम तोडनेरुप वडा गुन्हा करनेवालेकों वडे भारी दुःख सहन करने पडते है, तो त्रिजगत्पति जिनेश्वरदेवने परम करुणा—हितबुद्धिसें फरमाइ हुइ हितशिक्षारुप उत्तम आज्ञाकों तदन उल्लंघन कर मदोन्मत्त बनकर केवल विषयसुखकींही लालचमें लुब्ध होभये हूवे पामर—अति दीन प्राणीओंकों कितना भारी दुःख आगेपर उठाना पडेगा ? अहा ! मोह मदिराके घोर निसेमें मग्न होकर पडे हूवे वै महा मूढ जनोंकों उन संबंधी खियालभी नहीं आता है कि अभी एक क्षणभर सुख वो भी अति तुच्छ—कल्पित और उसका विपाक—परिणाम महा भयंकर जरुर भुक्तनेही पडेंगे.

विषय, किंपाकके प्राणघातक फलवत् पहिले मुग्ध जीवोंकों

मीठा लगता है; मगर पीछे वडाभारी अनर्थ पैदा किये विगर नहीं रहता है. खुजली वालेको प्रथम खुजालते वख्त वडी सुहावनी लगती है; पर पीछेसें वहुत जलन वगेरः संताप होता है. ग्रीष्म ऋतुमें तृषातुर वने हूवे भोले हिरन मृगतृष्णा जलकों देखकर दौडते हैं; मगर वै बिचारे कष्ट मात्र फल पाते हैं. उसीही तरह विषयातुर जीव उन उन विषयसुखके भ्रमसें अनुसरकर महादुःख यातना उठते है. अैसा समझकर चतुर शिरोमणि जन हमेशां सावधानतासेंही रहते है, जिस्सें कदापि उन्होंको अैसी अवदशा होती ही नहीं.

कितनेक मुग्धजन तो वेसमझसें वो व्यसनादि महा पाप अैसे व्यवहारसें नहीं सेवन करते है; तो भी वै उन व्यसनोंकी तत्वरुप समझ विगर श्री वीतराग या निर्ग्रंथ गुरुके परम करुणामय सदुपदेशकों प्रमादवश होकर अनादर करनेसें वै महा व्यसनादिकका नियम—निश्चय पूर्वक त्याग नहीं करनेसें पापके हिस्सेदार तो होतेही है. उन महा व्यसनोका त्याग करनेके लिये जो दृढ संकल्प करना चाहिये उसकी न्युनतासें वै महापाप सेवन करने वालोंकी तरह आप भी पाप के हिस्सेदार हूवेही करते हैं.

कितनेक जीव अज्ञानदशासें ऐसा कहते हुवे मालुम होते है कि:—' जो काम अपन करते ही नहीं है उनका पच्चख्खान लेनेकी जरुरत क्या है ? ' इन आदि अनेक कुतर्कद्वारा अन्य भोले वाले जीवोंकों भी भ्रममें डालकर स्वच्छंदतासें मिथ्यामार्गकी पुष्टि करते हैं.

उनकों उनके कुतर्कोंकी समाधानी करने के लिये श्री उमास्वाती वाचककृत श्रावक प्रज्ञप्तिकी मूल टीका या भाषांतर मनन पूर्वक वांचनेकी या सुन्नेकी खास भलामन करते है. इन संसारमें भ्रमण करने के मूल कारणभूत राग द्वेष और मोहादिकसें सर्वथा मुक्त भये हुवे सर्वज्ञ प्रभुके परम पवित्र प्रवचनपर पूर्ण विश्वास रखना ये भवभीरु भव्य सत्त्वोंका खास कर्तव्य है. वैसे सर्वज्ञ प्रभुके साक्षात् विरहसें सर्वत्र अवरोधी आगम या आगमधरही आत्मार्थी मुमुक्षुवर्गकों, और दुःखसें डरकर सुखकी चाहत रखनेवाले प्राणीओंकों खास निर्यामक–कप्तान है. उन्हीकी उपेक्षा करकें स्वच्छंदतासें केवल विषयसुखकी ही आशंसामें गिरनेवाले पापी प्राणि परभवकी अंदर, और कचित् इस भवकी अंदर भी महा पश्चाताप पाते है. उन्हीके हितकी खातिर यहांपर प्रसंगवशात् कुछ लेश मात्र कहा गया है. बाकी तो पूर्व महापुरुषोंने तो वो मांसादिक महा व्यसनों के सेवन करनेहारोंकी भइ हुइ और होती हुइ दुर्दशा वर्णन करकें अनेक तरहसें अनेक जगह वै महाव्यसनोंकी मना की है. और वै मांसादिक महान् व्यसनोका त्याग करनेवाले सत्पुरुषों के दृष्टांत नोंध लेकर दूसरे भव्य प्राणियोंको प्रेरणा की है. बुद्धिवंतकों कोइभी काम उनका आखिरी सार निगाहमें अच्छे विचारयुक्त रखकर करनेका है, वैसा योग्य विचार किये बिगर जो लोग साहस करते हैं उन्कों बहुत करकें पश्चातापही करनेका प्रसंग आता है. शास्त्रकारोंने कहा है किः–

"होय विपाकें दश गुण रे, एक वार कियुं कर्म;
शत सहस्र कोटि गमे रे, तिव्र भावना मर्मे रे प्राणी ?
जिनवाणी धरो चित्त."

परमार्थ ऐसा है कि कोइ भी अकृत्य सामान्य रीतिसें मोह किंवा अज्ञानके वश होकर किया गया होवै, तो उसके बदलेमें दश गुना दंड भुगतना पडता है, और वही अकृत्य बहुत हर्षित हो मशगुल हो अत्यंत क्लिष्ट परिणामसें किया गया होवै तो उनके प्रमाणमें सौ, हजार, लाख, क्रोड, क्रोडा क्रोड; यावत् असंख्य—अनंत गुणा दंड सहन करना पडता है.

इस मुजब समजकर मांसादिक सप्त व्यसनोंसें बिलकुल दूर रहेना; इतनाही नही मगर तमाम पापस्थानोंका तदन त्याग करनेके वास्ते जितना बनसके उतना प्रयत्न करना. कितनेक दुर्विदग्ध दांभिक पंडित शिवोहं, ब्रह्मास्मि इत्यादि झुंठा निकम्मे सोर गुल हो हा मचाते हुवे मालुम होते हैं मगर जब उनके आचरण तर्फ नजर करनेसें वो देखनेवालोंको साक्षात् ब्रह्मराक्षस नजर आते है; क्यौं कि मांस मदिरा जैसी अति निंद्य वस्तुयें भी वो छोड देते नहीं, और मैथुन सेवनादिक अगणित पाप पंकमें (कीचड) में डूकरकी तरह वो लीन रहते है. ऐसा दिखलाकर उन्होंकी निंदा द्वारा फजीती या बुराइ करनी परवानी नहीं मंगते है, हमारा आंतरिक परिणाम ऐसा नहीं है; मगर वै 'अहं मै शिव कल्याण रूप हुं—' इत्यादि फक्त वचनसें ही बोलते हैं; किंतु मन वचन त-

नसें किसी प्राणी मात्रको आप उपद्रव न करे, न करावें, और न वैसा करनेवालेकी प्रशंसा-अनुमोदना करें वैसे होवे-यानि जैसा बोलें वैसी ही क्रिया किये करें, ऐसा ही चाहते है.

जैसा वचनमें ऐसा ही मनमें और वैसा ही शरीरमें पालनेवाले निर्मायी, निष्कपटी, निर्दंभी कहे जाते है. मगर मनमें अलग, वचनमें अलग और शरीरमे भी अलग वर्त्तन रखनेवाले फक्त मायावी, कपटी, या दंभी ही कहा जाता है. सच्चा शंकर हो वो किसीको कभी भी किसी प्रकारसें पीडे नही, पीडा करावे नहीं, और पीडनेवाले सख्सकी प्रशंसा भी न करै और इनसें विरुद्ध वर्त्तनवाले शंकर नहीं मगर संकर हैं, वै तो केवल मिथ्या आडंबरकारी मायावी ही माननें लायक हैं.

शुद्ध निश्चयनयसें देखनेसें आत्माकों वर्ण जाति या वेदादिक कुछ भी घटित नहीं है. मगर व्यवहारनयसें कर्म संबंधसें जीवोंकी विचित्र परिणतीके वशसें शास्त्रकारोंने वर्णादिककी व्यवस्थाकी होवे ऐसा मालुम होता है. अनुभवगोचर भी वैसाही होता है. यदि शास्त्रकारोंने सामान्य रीतिसें वर्णादिककी व्यवस्था कर दिखलाइ है; तथापि उन्होंका तत्व उपदेश तो यही है कि- केवल फलाने वर्णादिकमें पैदा होने मात्रसें उनकों वोरुपवंतही मान लेना नहीं; किंतु गुण दोषके विवेक साथ उनके आचरणकों पूरे तौरसें लक्षमें लेकर उसमें फलाने वर्णादिकका आरोप करना. अन्यथा नहीं; क्यौंकि कोइ नाम मात्रसें उच्च वर्ण गिनाये जाते

हुवे पर भी प्रत्यक्ष महा घोर पापकर्मके, करनेवाले भी मालुम होते हैं. और नाम मात्रसें नीच जाति वर्णवाले गिनाये जाते हूवे परभी प्रत्यक्ष रीतिसें अनेक सद्गूणद्वारा उच्च अधिकारकों प्राप्त हूवें भये मालुम होते हैं. ऐसे प्रसंगपर शास्त्रकारोंके तत्वोपदेश पर खास लक्ष रखनेकी जरुरत है. अन्यथा मतिभ्रमसें वेर वेर स्खलना होनेका संभव है. उपदेश मालादिक शास्त्रकर्त्ताओंनेंभी तत्व-धर्मकाही अवलंबन करकें जाति आदिकी मुख्यता नहीं कही है. वैसे महान्पुरुषोंके वचनका विवेकी पुरुषोंको अवश्य आदर करनाही योग्य है. आप्त वचनसें अपन जान सकते है कि-चांडाल जैसी नीच जातिमें जन्मे हूवे मेतार्य, हरिकेशी आदि पुरुष पवित्र रत्नत्रयीकों सम्यग् प्रकारसें आराध कर मोक्षपद साध सके हैं. और सुलस जैसे चांडालके कूलमें पैदा होने पर भी श्रावक व्रतकों आराध कर देव गतिकों प्राप्त कर सके है, वास्ते तत्त्वविचारसें तो गुणही नियामक है. इस्सेंही नीच कुलकी अंदर पैदा होनेपर भी अनेक सद्गुण शिरोमणि अपने पवित्र आचरण द्वारा जगत् वंद्य होकर परमपद पाये हैं. और उत्तम कूलमैं पैदा होने पर भी अनेक दोषोंका सेवन-कर असंख्य मलीन आत्मा अधोगतिकों प्राप्त हूवे हैं; वास्ते उत्तम कुलमें पैदा होने मात्रसें मोक्ष कदापि मान लेनेका नहीं हैं. मोक्ष प्राप्तिके योग्य उत्तम गुणोका सेवन करनेसेंही सभी आत्माओंका कल्यान होनेका है. अन्यथा नहीं. ऐसा समझ करकें वैसें उत्तम गुण धारन करनेके वास्ते और दोषोंकों उन्मूलन करनेके वास्ते ह-

मेशां सावध रहना उत्तम बुद्धिवंत जनोंको उचित है. जहांतक उभय लोक विरुद्ध मांस भक्षणादि महा पापोंका त्याग नहीं किया है. वहांतक मोक्ष संपादक विवेक आदिक उत्तम गुणोंकी प्राप्ति होनी बहुत मूश्किल है; वास्ते अनंत दूःख दावानलमें सींझानेवाले असे महा दोषोंका सर्वथा त्याग करनेके लिये सच्चे सुखके कामीजनोंकों तत्पर होनाही मुनासिब है.

(पापस्थानक परिवर्जन.)

समस्त पापरुप कीचडकों दूर कर कर्म संबंधी अनादि मलीन आत्माकों निर्मल करनेके वास्ते परम पवित्र परमात्म करुणावंत प्रभुने पापका स्वरुप जैसा कहा है वैसा ही समझकर उसकों ज्यौ बन सके त्यौं सावध हो त्याग करनेका फरमाया है. वो पाप मलीन अध्यवसाय जनित होनेसें असंख्य जातिका होने पर भी ज्ञानी पुरुषोंनें स्थूल बुद्धिवालोंकों समझानेके लिये उनके १८ पाप स्थानमें समावेश करकें दिखलाया है. वो १८ पाप स्थानके नाम बहुत करकें अपन हर हमेशां मुंहसें पढते ही रहते है और उनका मिथ्या दुष्कृत भी दिया करते है; तो भी उनका यथार्थ स्वरुप समझनेमें अपन बहुत पश्चात् हैं, और उससें अपना वैसा पाठ पढना वो तो रामनाम पढने जैसा अर्थ—तत्त्व शून्य है. या कुम्हारके मिथ्या दुष्कृत जैसा शून्य आशयवाला होवै उसमें क्या आश्चर्य है! अपना कहना सार्थक कर अपन उन उन पापके बोजेसें मुक्त होवें वैसें उन उन पापस्थानकों बराबर समझकर लक्षमें रख-

कर सावध हो उनका अपनकों खसूस त्याग कर देनेकी ही जरुरत है.

(१) पहिला प्राणातिपातः—पांच इंद्रियें, मन, वचन, काया, श्वासोश्वास, और आयुष यह दश प्राणधारीओंका या इनमेंसें थोडे प्राणवाले जीवोंका विनाश करना यानि जानकरकें, अनजानपनेसें, या प्रमादवश होकें प्राणीवर्गकों पीडा पैदा करनी यावत् उनका नाश करना उसका नाम प्राणातिपात कहा जाता है. समस्त प्राणी-वर्गके प्राणोंकों अपने प्राणसमान प्यारे गिनकर उनकों बिलकुल तकलीफ जो महात्मा नहीं करते हैं वे दमनशील पापका द्वार (पापाश्रव) बंध कर अपने आत्माकों मलीन नहीं करते हैं. काइ भी प्राणीकों पीडा करनेका अपना हक्क नहीं है. अपने अपनेकों मिले हुवे प्राणोंकों धारण करनेमें सभी जीव सुख मानते है. उनकों मिले हुवे प्राणोंकों छीन लेकर उनकों सुखका अंतराय करना— यावत् उनके प्राण छीनकर उनकों जो परम असमाधी पैदा करनी सो तत्वसें विचार करै तो (वो) भावि दुःखका मूल कारण है.

(२) दूसरा मृषावादः—मृषा यानि झूंठ और वाद यानि बोलना अर्थात् असत्य बोलना, विना प्रयोजन मिथ्या—नाहक संबंध बिगरका बोलना, अपने और दूसरेका हित न होवै वैसा अविचारी कर्णकटु बोलना उसकों मृषावाद कहा जाता है. कदाग्रह द्वारा सत्य—धर्मविरुद्ध भाषण करकें स्वपक्ष स्थापन करना उनकों महामृषावाद समझना.

बेठने नहीं पाता है, हरे हमेशां भयसे आतुर ही रहता है, राज्य–दंडादिक अनेक दोष पैदा होते है, और परभवमें गदहे आदिके नीच जन्म लेकर पराया देवा पूरा करना पडता है. वास्ते सुश्रावक उनसें हमेशा डरकर चलै; क्यों कि इससे बचा हुवा रहवे तो राजादिक तमाम जन उनकी प्रतीति रक्खें, व्यवहारमें हानि न होने पावे, दूसरेजन उनकों देखकर धर्म पावें, और परभवमें प्रायः महर्धिक देव समान उत्पन्न होवै.

(४) चौथा मैथुन–मैथुन क्रिया (देव मनुष्य या तिर्यंच संबंधी विषयविलास करना सो) चौथा पापस्थान है. किंपाक फलकी तरह पेस्तरमें वो मीठी लगै; मगर अंतमें विषरुप होती है. यावत् आपके सत् चरित्ररुप प्राणकों हर लेती है. जगतमें विवेक विकल बनकर बेर बेर निंदा पात्र होते हैं. लुब्ध लंपट और नादानीकी पंक्तिमें गिने जाते है. विषयइंद्रिके तावेदार होनेसें आखिर रावणकी तरह ख्वार होते हैं. उन्ही विषयक्रीडाकों वश्य करनेहारे श्री रामचंद्रजीकी तरह जयश्री के स्वामी होते है. सुदर्शन शेठकी तरह शासन दीपाते हैं, और अत्र इच्छित फल मिलाकर परभवमें सुख प्राप्त करते हैं; वास्ते उक्त पापस्थान आदर सहित छोड देना ही दुरस्त है.

(५) पांचवा परिग्रह–धन धान्यादिक वस्तुओंकी अंदर परि यानि सब प्रकारसें, ग्रह यानि आग्रह–मूर्च्छा ममत्व उसीकों परिग्रह पापस्थान कहा जाता है. ये पापस्थान परिणाममें महान

अनर्थ करनेहारा है. लक्ष्मी आदिकमें बेहद लोभसें अनेक वख्त महान् कष्ट—तकलीफ सहन करने ही पडते हैं. बहुत पाप सेवन कर पैसा जमाकर उनमें बहुतही ममत्व रख कर मरनेसें सांप वगैरः के जन्म लेकें दूसरे जीवोंकों बहुत त्रास देनेहारे होकर आखिर नीच गति पाते हैं; वास्ते अति लोभ छोडकर अवश्य संतोष सेवन करना कि जिससें यह भव परभव सुधर सकें.

(६) क्रोध—गुस्सा—रीश लाकर दूसरेकों तिरस्कार वचन आक्रोशादि करना उसकों ज्ञानीओंने अग्नि समान कहा है. ज्हां वो क्रोधाग्नि प्रकट होता है वहां गुणकों जलाकर आगे बढके स्हामनेवालेकों जला देता है; मगर उस वख्त उपशमरूप जलका योग मिल जावै तो आगे बढा हुवा भी दूसरे (क्षमावंत)कों नुकशान नहीं कर सक्ता है मतलब यही है कि क्रोधकों शांत करनेकों अव्वल दर्जेका इलाज उपशम भाव है. आगे यह दोहरे कहे गये हैं; तथापि प्रसंगवशात् याद कराते है कि:—

क्षमा सार चंदन रसें, सिंचो चित्त पवित्त;
दयावेलि मंडप तलें, रहो लहो सुख मित्त ! १

देत खेद वर्जित क्षमा, खेद रहित सुखराज;
इनमें नहीं आश्चर्य कुछ, कारन सरिसो काज. २

वास्ते शांत सुखके ग्राहकोंकों खेदरहित क्षमा गुण धारन करकें अपना और दूसरोंका उपकार कियेही करना.

(७) सातवें मान—अहंकार, अभिमान—गर्व—मद आदि इसी

के पर्याय हैं. मोक्षनगरमें जाने के वख्त मानरुप पहाड बीचमें हरकत करता है, उसका नाश नम्रतारुप वज्रसेंही होता है. मानसें रावण, दुर्योधन जैसे भी जबरदस्त राजेश्वर भी पायमाल हो गये हैं; क्यौं कि मान सभी गुणोंका नाश करनेहारा है; वास्ते मान छोडकर विनयका सेवन करना.

(८) आठवे माया–दंभ–छल–प्रपंच–कपट–ठगाइ वगैरः इनकेही पर्याय हैं. दंभी मनुष्य अपने दोष छुपाने के लिये और लोगोंमें अपना मान मरतबा वढाने के लिये अनेक यत्न प्रयत्न करता ही रहता है; मगर आखिर 'दगा किसीका नहीं सगा' इस न्यायवचनानुसार पापका घडा गटका फूट जानेसें वडा भारी फिटकार पाकर निंदाका पात्र होता है. पुनः उनका कोइ विश्वास भी नहीं करता है, उनकी सभी धर्म क्रिया भी निष्फल हो जाती है; वास्ते वक्रता छोडकर सरलता सेवन कर मन शुद्ध करना. जहांतक मनका मैल नही धो डाला है वहांतक वहार के तमाम आडंवर निकम्मे है; वास्ते माया कपटता छोड देनी.

(९) नौवे लोभ–असंतोष, तृष्णादि इनके ही पर्यायवाची शब्द हैं. तमाम अनर्थोंका मूल लोभ है. कहा है किः–

आगर सवही दोषको, गुणधनको वड चोर;
व्यसन वेलिको कंद है, लोभपाश चहुं ओर. १
लोभमेघउन्नत भये, पापपंक बहु होत;
धर्महंस रति न हुं लहै, रहे न ज्ञान उद्योत. २

कोउ स्वयंभूरमणको, पावै जो नर पार;
सोभी लोभ–समुद्रको, लहे न मध्य प्रचार. ३

तथापि लोभ सागरका पार पानेका सच्चा और उमदा इलाज फक्त संतोष ही है. ज्यौं ज्यौं लाभ मिलता जाय त्यौं त्यौं लोभीका लोभभी बढता ही जाता है. यदि आकाशका अंत आवै तो लोभीकी इच्छाका अंत आवे. अर्थात् आकाशकी तरह लोभीकी इच्छा अंत रहित होनेसें तृष्णाका पार नहीं आता है और उनकों बहुत दुःख उठाना पडता है. कहा है किः–' न तृष्णा परो व्याधि'–यानि तृष्णासें उपरांत कोइ कष्ठ साध्य व्याधि ही नहीं है सब सुखका साधन संतोष है. यतः–' न तोषात् परमं सुखं '–यानि संतोषसें उत्कृष्ट कोइ दूसरा सुख नहीं है; वास्ते सच्चे सुखार्थीजनकों संतोष ही सेवन करना.

(१०) दशवें राग–रंजयत्यसौरागः–आत्माका शुद्ध स्फटिक जैसा स्वरुप बदलकर जिसके संगसें रंजित हो जाता है सो ही राग. राग मोहराजाका पाटवी पुत्र युवराज है, और उनका पराक्रम केसरीसिंह जैसा होनेसें वो अकेलाही जगत मात्रकों पराभव कर सकता है. मैं और मेरा–ममतारुप फंदमें वो मुग्ध मृगोंकों फंसाया ही करता है, उनकी स्हामने टक्कर लेनी कुछ सरल नहीं है; उससें अप्रमत्त पुरुष ही विवेक शिखर पर चडकें टक्कर लें सकते हैं; तौ भी ज्यौं ज्यौं मोह ममताकों त्यागकर धर्म महाराजका शिक्षण लिया जाता है त्यौं त्यौं रागादिक दुश्मन कम तोकतवाले हो अंतमें भाग जाते है यानि नाश हो जाते हैं.

साधुव्रत अंगिकार किये परभी कदाग्रह द्वारा जो अैसा महा असत्य बोलते हैं–मरूपते हैं उनकों महा मृषावादी भ्रष्टाचारी समझने चाहियें. असत्य बोलनेसें बहुत औगुन हैं, और सत्य–हित और मित भाषण करनेमें बहुत गुण है. तोभी वसुराजाके जैसे कितनेक मूढ जीव झूठी दाक्षिण्यतामें लुब्ध होकर मिथ्या लोक प्रवाहमें वहेन हो, अपने आत्माकों भारी जोखममें उतार देते है. तथा कितनेक महामतिमूढ मनुष्य तो फक्त मिथ्या मानके मारे अपना कथन सच्चा कर दिखलानेकी खातिर झूठी वाग्जाल रचिकें आपही महाकष्टमें उतर जाते है; इतनाही नहीं मगर दूसरे मुग्ध मृग जैसे भोले भाले जनोकों वागाडंबरसें भ्रमित करकें महा संक्लेशमें झूका देते है. कोइ विरले नररत्नाही तटस्थ वृत्ति धारनकर श्रीवीतराग सर्वज्ञवचनानुसार चलकर अपना हित संभाल सकते हैं. वैसा दुर्धर सत्यव्रतकों धारन करनेवाले सत्ववंत नरोंके जितने स्तुति वचन कहैं या प्रशंसा करैं उतनेही बस नहीं है. वे उत्तम आशयवंत श्री कालिकाचार्य महाराजकी तरह कुल जगह यशवाद पाते है. देवगणभी उन्होंकी उत्सूकता पूर्वक सेवा बजाते हैं, यावत् अनंत सुख संपत्तिकों स्वाधीन करते है. जो महाशय प्राणांत तकभी झूठ नहीं बोलते हैं, यानि सत्यमार्ग नहीं छोडते हैं वै अंतमें अवश्य अक्षय सुख पाते है. दुर्धर सत्य व्रत धारन करनेकी चाहनावाले सद् आशयोने उपदेशमालाके बनानेहारे श्री धर्मदासगणी महाराजने उपदेशमालाकी अंदर निम्न लिखी हुइ गाथा रहस्यके साथ याद रखनी दुरस्त हैः–

(आर्या छंद) महुरं निउणं थोवं, कज्जावडिअं अगव्वि अमतुच्छं;
पुव्विं मइसंकालिअं, भणिअं जं धम्मसंजुत्तं. १

परमार्थ यही है कि सत्य–प्रिय सत्पुरुषको सत्यके फायदेकी खातिर कोइभी बात बोलनेकी वख्त इतने करार खास खियालमें रखने चाहियें.–अव्वल तो जो वचन बोलना वो मीठा–स्हामने वालेको प्यारा लगै सुहावना लगै वैसा मधुरही बोलना; मगर स्हामने वालेको सुनकर उलटा खेद पैदा होवे वैसा कटुक कठोर मर्मभेदक वचन न कहना. और मीठे वचनभी न्याय युक्तिसें स्हामने वालेके दिलमें उतर जाय–उनका मतलब वो अच्छी तरहसें समझ जाय वैसी चतुराइके साथ बोलना. और वो भी चाहिये उतनेही यानि मतलबसें ज्यादे न बोलना–मित भाषन करना. स्हामने वालेको अरुचि हो आवे वहां तक हद छोड जाने जैसा बकवाद न करना. और वो भी प्रसंगानुसार–समयानुकूल यानि चलते हुवे विषयकी साथ अच्छा संबंध रखता हो वैसा बोलना. मतलब ये कि असंबंध वाला भाषण–मोके बिगर न बोलना और न विषयांतर होना–यानि जितनी जरुरत हो उतना ही सत्य मीठा मतलब सहित–समय शुभीता–विषयानुकूल वचन बोलना–गर्व–अहंकार रहित योग्य आदरसें अपनी फर्ज ध्यानमें रखकर बोलना. मगर मदांध–धर्मांध होकर गर्वकी खुमारीमें ज्यों आया त्यों बकवाद न करना, और अहो महानुभाव ! अय देवानुप्रिय ! ओ भद्र ! इत्यादिक स्हामने वालेके दिलमें सुहावना लगै वैसे

संबोधन पूर्वक बोलना. मरजी मुजब तुंकार रेकार अनिष्ट संबोधनसें कभी न बोलना. और बोलनेके पेस्तर जो बोलनेकी इच्छा हो उस वचनोंका परिणाम क्या आयगा वो सब सोचकर हितकारक हो वही बोलना; मगर साहस करके एकदम बोलना और बोल दिये बाद पिछताना पडे वैसा न बोलना चाहिये. आगे पीछेका संबंध पूरे पूरा ध्यानमें लेकर पीछे किसी तरहकी धर्मको हरकत न आवे वैसा और वीतराग वचने सापेक्ष होनेसें एकांत-निश्चयसें सद्गुणकी पुष्टिही करे वैसा वचन विवेक युक्त शोचकर बोलना; क्यों कि सापेक्ष-वीतराग वचनोंका रहस्य विचार कर लक्षमें ले-बोलना कि जिससें बोलने हारेको सत्य व्यवहार होनेसें सदैव सुख प्राप्त होता है. और निरपेक्षपनेसे यानि वीतराग वचनका अनादर कर मरजी मुजब बकवाद करनेवाले और मरजी मुजब चलने वालेका झूंठा व्यवहार होनेसें कुल जगह नुकसानी प्राप्त होती है. सर्वज्ञ-केवलीके वचनको यथार्थ ग्रहन कर अमलमें रक्खे विगर कभीभी किसी जीवका कल्यान हो वाहि नहीं है और न होगा. ऐसा समझकर सहृदय सज्जन हमेशां उनके ही अक्षरशः अंगीकारकर अमलमें लेनेकी सावधानी धारन करते है. एक क्षण भरभी प्रमाद नहीं सेवन करते है. कदाचित् उसी मुजब न आचर सकें यानि आप्त उपदिष्ट मार्गका यथार्थ अमल न कर सकें; तदपि उन मार्गकी दृढ श्रद्धा सह शुद्ध परूपणा करनेमें चूक जाते नहीं है. प्रमादसें परवश हुए प्राणीको इन पंचमकालमें शुद्ध परूपणा

प्राणांत तक करनी ये कुछ कम दुष्कर काम नहीं है ! क्यौं कि यथार्थ वस्तुका स्वरुप जाहिरमें लानेसें अपने दोष स्वाभाविक रीतिसें सहृदय श्रोताजनोंकों खुल्ला तरहसें समझनेमें आ जाते हैं; तथापि दुर्धर मानका मर्दन कर ऐसी विशुद्ध परुपणा करनी वो कुछ सहजकी वात नहीं है. इसका नाम संविज्ञ पक्षी पन कहाजता है. उसको धारन करनेहारा वर्ग शुद्ध संविज्ञ (यति) धर्मको सेवने हारे शुद्धाशयोंके बहुत रागी होता है. शास्त्रकारोंनें मोक्षके तीन मार्ग बतलाये है. उनमें पहिला शुद्ध यति मार्ग, दूसरा शुद्ध श्रावक मार्ग, और तीसरा संविज्ञ पक्षी मार्ग है. उपर बताया गया मृषावादसें वै तीनु मार्ग वाले अत्यंत डरे हुवे होते हैं. अपन सबके हृदयमें वो पवित्र सत्यव्रत हमेशाके लिये निवास करो ! और महादुष्ट मृषावाद नामक महादोष अपनेसें कुल मजहबीसें निरंतर अलग रहो !

(३) तीसरा अदत्तादान अदत्त यानि न दिया हुवा और आदान यानि लेना मतलबमें बुरे इरादेसें पराइ चीजको उठा लेना–छुपा देना–गुम कर देना वो तीसरा पाप स्थानक गिनाया जाता है. खुद जातसें चोरी करनी, चोरी करनेहारेको मदद देनी या चोराउ चीज खरीद लेनी–संग्रह रखनी, या झूंठे तोल मापसें लेनी देनी, वस्तुमें हलकी वस्तु मिलाकर दूसरोंको ठग लेना, विश्वासघात करनां, जगात चोरी करनी वगैरः इन पाप स्थानकके भेद है. चोरीका माल जमाः कभी रहने नहीं पाता है, चोर शांतिसुख कभी

समझ बूझ सकै नहीं, तथा आपका दुराग्रह छोडे नहीं, वैसे मिथ्या आग्रहसें स्वमतकों लिपट रेहना सो आभिग्रहिक मिथ्यात्व कहा जाता है. सांप्रदायिक शास्त्रादिकके आग्रह विगर या तत्वविवेककी न्यूनतासें सभी धर्म–सभी देव और सभी गुरुओंकों समान–एक जैसे गिने और सच्चे झुंठेकों आग्रह विगर एकसे गिन लेवै सो अनभिग्रहिक मिथ्यात्व कहा जाता है. जिनकों अवतक कुछभी किसी प्रकारसें विशिष्ट आभोग–उपयोग जाग्रत नहीं हुवा, और अैसे उपयोग शुन्यतासें अनादि कर्म संबंधसें निगोदादिक जीवोंका जो वर्त्तन सो अनाभोगिक मिथ्यात्व कहा जाता है. त्रिकालवेदी श्री सर्वज्ञ प्रभुके परम प्रमाणिक वचनोंकी अंदर सर्वसें या देशसें (वडी या छोटी) शंका धारन करनी सो सांशयिक मिथ्यात्व कहा जाता है. परम ज्ञानी परमात्माके वचन सर्वथा सत्यही हैं, अैसा जानने परभी गोशालेकी तरह केवल स्वमत कंद वोनेके लिये कदाग्रहद्वारा सत्यवार्त्ता कुयुक्ति–कुतर्कद्वारा उत्थापन करनेके वास्ते और स्वकपोल कल्पितमत स्थापनेके लिये प्रयत्न करना सो आभिनिवेशिक मिथ्यात्व कहा जाता है. ये पांचवो प्रकार वैसे प्राणीओंकों परम दुःख पात्र–कर्त्ता है; वास्ते कदापि सच्चा जाननेमें आ गये वाद कदाग्रहसें स्वमतके जोर तोर पर रहकर उसकों झूंठा पाडनेके वास्ते बुद्धिवंतकों महा अनर्थकारी प्रयत्न नहीं सेवन करना. अन्यभी मिथ्यात्व प्रकार पाप पुष्टि हेतुक होनेसें आत्मार्थी जीवोंकों अवश्य परिहार करदेनेकेही योग्य हैं.

उपर कहे गये १८ पापस्थानक संक्षेपसें कहे हैं. दोष भी गुणोंकी तरह अनंत है; तथापि जैसें सब गुणोंका १४ गुणस्थानकमें स्थूल बुद्धिवालोकों समझानेके लिये ज्ञानी पुरुषोंने समावेश किया है, उसी तरह समस्त पाप–दोषोंका भी समावेश १८ पापस्थानमें ही किया है. सुन्नेकी खानीमेंसें खोदकर निकाली गइ मीट्टीकी तरह आत्मा अनादि दूषित ही है. तथापि ज्यौं आग वगेरः के उपाय वगेरःसें अनादि मल दूर कर उनमेंसे शुद्ध सुन्ना निकाल लिया जाता है, उसी तरह अनादि कर्म संबंधसें दूषित हुवा आत्मा भी सर्वज्ञ कथित तप संयमादिक सदुपायसें शुद्ध हो सकता है. यावत् संपूर्ण संयमादिक साधानों के बलद्वारा परम विशुद्ध हो आपही परमात्मपद प्राप्त कर सकता है. ज्यौं ज्यौं अनादि दूषण यत्नद्वारा हठते हुवे दूर होते जाते हैं त्यौं त्यौ आत्मगुण प्रकट होते जाते हैं. और जब संपूर्ण दोष पूर्ण प्रयत्नद्वारा हठायो जावे तब आत्मा के संपूर्ण गुण प्रकट होते है, वही परमात्म या सिद्धदशा है. और उसीके लिये ही अपनकों प्रयत्न करनेकी पूर्ण जरुरत है. यदि परमात्म दशा योग्य सब गुण सत्तामें अनादि के ही है; परंतु वे कर्म दोषसें ढक गये हुवे हैं, उन्हीकोंही अब विवेकद्वारा प्रकट कर लेनेके हैं. सच्च रीतिसें देखें तो आप के ही आत्ममंदिरमें अमाप गुणनिधान गडा पडा हुवा है, तो भी बेसमझ–अविवेकसें दूसरे ठौर देखने–ढुंढनेकों जाते है, वा केवल मुग्धता–असमंजससें कस्तूरीए मृगकी तरह आप के पास कस्तूरी मोजूद होनेपर भी

आती हुइ सुगंधीकी शोधमें चारो और भटकता फिरता है, कोइ परोपकारी ज्ञानी उनकी कुंझी अपनकों बतला देवें तो भी अस्थिर वृत्तिसें वो समझमें नहीं आती, उससें चतुर्गतिरुप संसार अटवीमें दिग्मूढकी तरह अपन भटकते ही रहते है या रहे हैं. यदि ये पापका स्वरुप यथार्थ समझकर उनसें निवर्त्तनका प्रयत्न करै तो वेशक अंतमें संसाररुप जंगलकों पारकर क्षेमकुशल पूर्वक मोक्षनगरमें पहुंच सकें.

अहा! जहां तक अपन अविवेकतासें १८ पापस्थान सेवते हुए न रुकेंगे तहां तक दोषरुपी महान् विषवृक्ष कायम नवपल्लव रेहेगा; कारण, मिथ्यात्व उसके अवंध्य वीजभूत है, रागद्वेष उसके पुष्टिकारक जीवन-जल समान है, क्रोध-मान-माया लोभरुप चार कषाय उनके अति गहेरे और चोगिर्द मजबूत फैले हुवे मूल समान हैं, प्राणातिपात उस्के स्कंध, मृषावाद-अदत्ता दान-मैथुन-परिग्रहरुप चार विशाल शाखा, कलहरुप कुंपल, अभ्याख्यान-पैशुन्य-परपरिवादरुप विस्तार पाये हुवे पत्र, माया मृषावाद मंझर-पुष्प, और रति अरति रंग वेरंगी विषय फलरुप हैं कि जिनका रस परिणाममें अति अनर्थकारी है. वास्ते सत्य सुखार्थीजनोंको उत्तम परिणामरुप तीक्ष्ण कुल्हारेसें ये दोष-विषवृक्षका निकंदन करने के लिये तत्पर रहना. ज्यौं ज्यौं उनकी उपेक्षा-वेदरकार करेंगे त्यौं त्यौ वो वृत्ति वृद्धिगत होकर उनकी छांयद्वारा अपने आश्रितोंको ज्यादे मूर्छावंत वनादेगा; वास्ते प्रयत्नवंत रहकर उनका

तुरंत नाश करना ही योग्य है. फिर उत्तम कार्य करने के वास्ते क्षेत्रकाल भी अनुकूल है. ज्यौं ज्यौं प्रमाद त्याग कर प्रयत्न करेंगे त्यौं त्यौं पापपंक परवालकर–धोकें अवश्य निर्मल होवेंगे. ऐसी श्रद्धा और हिंमत धारन करनी ही दुरस्त है. पापरुप कीचडकों दूर कर सर्वथा निष्पाप–निर्मल होना यदि बहुत दुष्कर है; तथापि पूर्ण श्रद्धावान् और विवेकीजन चाहिये उतने प्रयत्नसें वैसा कर सकते है. पूर्व समयमें अनंत जनोंनें इसी तरहसें ज्ञान–दर्शन–चारित्र–तप के जोरसें सर्वथा पापपंक दूर कर निर्मल हो चतुर्गतिरुप संसारका अंत करकें मोक्षरुप पंचमी गतिके स्वामी हूवे हैं. अपनकों भी उसी महान पुरुषोंके कदमकर कदम चलकर उसी मुजबसें अपना अनादिका पापपंक दुर कर निर्मल होनाही योग्य है. और उसके लिये पेस्तर अपनकों वै महापुरुषोंकी तरह पापपंक परवालनेके लिये समता सरोवरमें स्नान करनेकी जरुरत है.

आगे बताये हुवे मुजब अढारह पापस्थानकोंमें प्रवेश करती हुइ पापमति दूर कर समभाव धारन कर ज्ञानी महाराजाने श्रावकोंकी कौनसी कौनसी फर्जे संक्षेपमें कही हैं सो परमार्थसें विचार कर उनका मनन करना.

मन्ह जिणाणमाणं, मिच्छं परिहरह धर सम्मत्तं;
छव्विह आवस्सयंमि, उज्जुत्तो होइ पइ दिवसं. १

इन आदिक पवित्र बोधदायक पांच गाथाऐं अपने भाइ और भगिनीयें हरहम्मेशां गिनते हुवे तो मालुम होते हैं; मगर उनका

(११) अगियारवें द्वेष येभी मोहकाही पुत्र है और रागका सगा भाइ हैं और दोनु दोस्त होनेसें साथके साथही रहते हैं. अलग नहीं पडते हैं. शुद्ध स्फटिक शिलापर रख्खा गया काले फुलसें स्फटिकमें जैसें काला रंग मालुम होता है. उसी तरह आत्माके शुद्ध स्वभावकों बदल डालकर महा अशुभ मलीन-शाह कर डालता है; वास्ते रागके समानही द्वेषका उपाय करनेसें उसका पराजय होयगा.

(१२) बारहवें कलह-क्लेश कलह-टंटा फिसाद-लढाइ ये सब मिलतेही अर्थ वाले शब्द हैं. कलह सब दारिद्र्यका कारण है सुख संपत्तिकी चाहना वालेकों कजियेकों जड मूलसें उखाडकर शांतिका भजन करना.

(१३) तेरहवें अभ्याख्यान-अभि-आख्यान यानि झूंठा आरोप रखना-खोटा कलंक चढाना किसीकेपर नाहक तोहमत रखदेना ये महान् दुष्ट स्वभाव समझना. ज्ञानी पुरुष वैसे जनकों कर्मचांडाल कहते है. जातिचांडालसें भी कर्मचांडाल महापापी है; क्योंकि वो दुष्टगुणी धर्मीजनोंकी भी वदी किया करता है, यावत् महाधर्मीष्ट जनोंकोंभी वडे भारी संकटमें उतार कर आप तमाशा देखा करता है. ऐसे नीच लोगोंका नाम लेनेसें या मुंह देखनेसें भी पापका प्रसंग आता है ऐसा ज्ञानी पुरुषोंने शास्त्रमें कहा है-ऐसा समझकर सुज्ञजन कभी ऐसी बुरी आदत न पाडेंगे, और शायद पडगइ होवे तो तुरंत दूरकर देयेंगे.

(१४) चौदवें पैशुन्य–चुगली करनेवाला चुगल खोर भी महा पापी दुष्ट स्वभावी गिनाया जाता है. अहर्निश ऐसी बुरी आदतसें आर्त्तरौद्र ध्यान धरता ही मरनके शरन होकर महा बुरी गतिकों पाता है. 'बालकोंकों हंसीकी मजा आवै और दादुरकों जान जानेकी सजाका वख्त मालुम होवै' यह कहनावत मुजब चुगल खोरोंकों तो कौतुक–तमाशा होता है. और उसमें कितनेकके प्यारे जान निकल जाते हैं. खुद आपकोंतो हंसी होतीहै और कितनेकके तो प्यारे जानकों–किंमती जीकों भारी जोखममें झूका देता है, और कभी आपकीही भुल आपकों नजर न आ सकै तो या वैसी भुल मोका मिलजाने पर भीन सुधार सकै तो अपनाही शस्त्र अपना जान ले लेता है. यानि अपने काममें आप खुदही फंस जाकर बडे कष्ट उठाता है. अहा ! दुर्जनोंका स्वभावतो देखो ? आपकों कुछ भी फायदा हांसिल न होवै; तोभी आपकों और दूसरोंकों कैसे दुःखके खड्डेमे गिरा देते है, और इन भवमें अनेक आपत्ति पाकर परभवमें दुर्गतिके शरण होते हैं. इनका खियाल करकें विवेक लाके स्वपर दुःखरुप चुगलीकी बुरी आदत छोडनेका यत्न करना.

(१५) पंद्रहवें रति–अरति–मन पसंद चीजोंपर राग और ना पसंद चीजोंपर द्वेष धारन करना वही रति अरति है. समानभाव धरने के योग्य पदार्थोंपर राग द्वेष करकें मोहवंत हो जाना ये समभाव द्वारा प्राप्त होनेवाले योग्य उत्तम प्रकार के सम सुखमें महा अंतरायभूत और मनकी मलीनता करनेहारा बडा पापस्थानक

है; वास्ते विचक्षण जनोंको ऐसे हरएक प्रसंगमें समभाव युक्त रहना चाहियें.

(१६) सोलहवें पर परिवाद—परनिंदा—अपकर्ष और आत्मश्लाघा—आत्मोत्कर्ष करनेरुप ये पापस्थान अति घोर है. जैसें झूंठा बोलनेहारा, दूसरेपर झुंठे कलंक चडानेहारा, और चुगलखोर कर्मचंडाल कहे जाते है, वैसें पराइ निंदा करनेवाला, बिलकुल झूंठी आप वडाइ करनेहारा भी उक्त कहे गये कर्मचंडालोंसें कुछ नीचे दर्जेका नहीं; लेकीन उन्हींकी पंक्तिकाही है. स्वमुखसें परमल लेकर आपके अंगको मलीन कर स्हामनेवालेकों उज्वल करनेहारा निंदक—दुर्जन भी सज्जनोंको तो एक तरहसें उपकार करने हारे है. तोभी उनके अति अनार्य—जंगली आचरणसें घोरातिघोर नरक निगोदादि दुःखके हिस्सेदार होनेसें उन्हींको देखकर सज्जनोंकों कोमल हृदय कांपने लगता है. वास्ते ये अत्यंत अनिष्ट अनार्य कुटेव अवश्य छोडकर सज्जनताही भजनी चाहियें. भुल चुकमें भी दुर्जनके दुष्ट रस्तेकी तर्फ निगाह तकभी न करनी. यदि आपका भलाही चाहते हो तो उपर कही गइ हितशिक्षा कभी भी मत भुल जाइयो—इनकों हरदम स्मरण करकेंही चलियोकि जिस्सें अंतमें बेहद नफा पावोगे.

(१७) सत्तरहवें माया मृषावाद माया कपट और मृषा—झुठ इन दोनुका सेवन करना यानि कहना कुछ और करना कुछ. कुम्हारके मिच्छामि दुक्कडके समान आपमतिद्वारा उलटे चलते

रहने पर भी आपकी शाहुकारी दिखाया करनी, केवल दंभ वृत्ति सेवन करते हुवे परभी ऊपरसें अच्छा आडंबर रखना–बुगलेकी वृत्ति धारनकर जगतकों ठगलेना, आप अनेक दोषदूषित होने परभी लोगोंकों जाननेमें न आवै इतनाही नहीं; मगर आप महा गुणशाली है अैसा लोग समझे वैसे प्रपंचसें वर्त्तन चलाकर आपकी पुजा मानत विशेष होवै उस तरह भवका भय बाजूपें छोडकर चलन चलाया जाय वो सब इन पापस्थानकके अंतर्भुत है. श्रीमद् यशोविजयजीने कहा है कि–' ए तो विषने वळिय वधार्युं, ए तो शस्त्रने अवळुं धार्युं, ए तो सिंहनुं वाळ वकार्युं हो लाल, माया मोस न कीजे. ' बराबर विचार कर देखनेसें मालुम होता ही है कि–ये सत्तरहवा पापस्थान सबसें भारी पापजनक है अैसा जानकर सज्जन जनकों इनसें बहुतही डरते रहनेकी जरुरत है.

(१८) अठारहवें मिथ्यात्व शल्य–विपरीत दृष्टि शल्यकी तरह एक भवमें नहीं; मगर अनेक भवमें पीडा देनेसें मिथ्यात्व शल्य कहा जाता है. आभिग्रहिक, अनभिग्रहिक, अनाभोगिक, सांशयिक और आभिनिवेशिक अैसें पांच भेदका कहा है. अभिग्रह यानि वडो आग्रह, आपके प्रचलित पंथकों केवल आपके सांप्रदायिक शास्त्रोंके आधारसें मध्यस्थ पनेसें शुद्ध धर्मरहस्य जाने विगर और विवेक पूर्वक सुवर्ण या रत्नकी परिक्षाकी तरह उसकी परीक्षा किये विगर योंके युंही मिथ्या आग्रहसें लटककर पकड रहना, और कोइ परोपकारशील महात्मा शुद्ध धर्म रहस्य सम्यग् समझावे तोभी

परमार्थ कोइ विरलाही जानते होंगे. यहां प्रसंगपर अपन उनपर विचार करें और उमीद है कि उनका सार समझ हृदयमें धारन कर उनका बने उतना उपयोग करनेमें आप मत न चूकोगे. जाननेके फल यही है. यतः—'ज्ञानस्य फलं विरतिः' विरतिका फल आश्रव निरोध, उनका फल संवर, संवरका फल तपोबल, तपोबलका फल निर्जरा, निर्जराका फल क्रियानिवृत्ति; उनका फल अयोगित्व, योगनिरोधका फल संसार संततिका क्षय, और संसारसंततिके क्षयसें मोक्ष ऐसें क्रमशः परम विनय आदरसें ग्रहण किया हुवा सम्यग्ज्ञान और वैसे ज्ञानपूर्वक सेवन करनेमें आती हूइ विरति—उभय मिलकर उत्तम मोक्षफल मिला देते हैं; वास्ते मोक्षफलकी चाहतवालोंको इसमें प्रमाद न करना.

पहिले तो हे भव्यजीवो ! जिन्होंने सर्वथा रागादि अंतरंग शत्रुओंको जीत लिये है सोही वीतराग सर्वज्ञ परमात्माकी उत्सर्ग, अपवाद, निश्चय, व्यवहाररूप स्याद्वाद आज्ञाकों सुबुद्धिबलसें समझकर आदर प्रमाण करलो. सम्यक् विचार करो कि राग द्वेष और मोहका सर्वथा क्षय होनेसें श्री जिनेश्वरोंको किंचित्मात्र क्वचित् भी झूंठ बोलनेकी जरुरत नहीं रही है. उस्से उन्होंके वाक्य प्रमाण करने लायक हैं ऐसा अखंड निश्चय कर लो.

दूसरा—पेस्तर जिनका स्वरुप कुछ विस्तारसें कहा गया है उन मिथ्यात्वका बिलकुल त्याग कर दो.

तीसरा—समकित रत्नकों धारन कर लो. इसीही अधिकारमें

आगे कहा गये तीन तत्व-देव गुरु धर्मका स्वरुप बराबर समझ कर उन्होंमें विवेक करो, यानि सत्यासत्यका निर्णय कर असत्य-का त्याग कर सत्यको तद्दन स्वीकार लो. तथा हे भद्र ! सद् गुरु-की सम्यग्-सब तरहसें पूर्ण सेवा करकें शुद्ध तत्वोपदेश सुनकर शुद्ध श्रद्धाधारी तत्व रसिक होना. समकितके ६७ बोल विचार कर जिस प्रकार ज्यादे तत्वविवेक जाग्रत हो सके और सम्यक्त्व-की निर्मलता हो सकै वैसा उद्यम करना-अर्थात् समकित के शं-कादिक दूषण दूर करनेके लिये और गीतार्थसेवादिकमें तत्पर रहनेके लिये ही आत्मा है. आत्मा नीत्य है. कर्त्ता है, भोक्ता है, मोक्ष है और मोक्षके उपाय भी सर्वज्ञ प्रभुने कहे हैं. ये समकितके छःस्थानकोंका सम्यग् विचारकर गुरुगम द्वारा उन्होंका निश्चय करना जिस्सें स्वमतांतरमें भी मति भ्रम न होयगा.

चौथा-षड्विध आवश्यकमें हमेशां तत्पर हर्षचित्तवंत रहना. सामायिक, चौवीश जिनस्तवन, गुरुवंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और पच्चखाण ये छः आवश्यक दररोज श्रावकोंकों करने ला-यक ही हैं.

(१) जघन्यसें दो घडी तक निंदा-प्रशंसा-मान-अपमानकी अंदर समभाव रखकर स्वरुपका चिंतन करना सो सामायिक कहा जाता है. पाप व्यवहार मन-वचन-तन द्वारा आप खुद करै नहीं, दूसरके पाससें करावे नहीं, ऐसी निर्वद्य वृत्तिमें जब तक रहे तब तक उन सामायिकवंतको शास्त्रकारोंने साधु समान कहा है; वास्ते

प्रमादको छोडकर अवश्य अनेकशः सामायिक अंगिकार करना. (२) श्रीऋषभदेवजीसें लगाकर श्री महावीर स्वामी प्रभु तक २४ तीर्थंकरोंकी अति अद्भुत गुण स्तवनारुप 'चउविसथ्था' प्रतिदिन परमार्थ समझकर जरुर पढना, इस्सें समकित गुणकी शुद्धि होती है. (३) सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्रको सेवनेहारे आचार्यादिक सुविहित साधु निर्ग्रंथोंको हर हमेशां द्रव्यभाव विनयपूर्वक 'वंदन' करना. वैसे गुणशाली गुरु महाराजके वंदनसें अपनको ज्ञानादिक गुणोंका लाभ मिलता है. (४) जानते या अनजानते भइ हुइ भूलोंको सुधार लेनेके लिये पश्चात्तापपूर्वक वैसी भूल फिर फिरके नहीं करनेकी बुद्धिसें गुरुमहाराज साक्षिक आलोचना करके शुद्ध होजाना उसीका नाम 'प्रतिक्रमण' है. वेर वेर जान बूझकर भूल दोष सेवन करके आलोचना करनी ये हितकर नहीं हैं; वास्ते सम्यग् आलोचना कर तुरंत भूल सुधार पुनः वैसी भूल उपयोग रखकर न होने देनी. यही सत्यतासें समझनेका सार है. (५) कायादिककी चपलता छोड स्थिरता कर एकाग्रतासें परमात्माका या निजस्वरुपका ध्यान करना और उन द्वारा अन्य संकल्पविकल्पोंसें होता हुआ अपध्यान आर्त्तरौद्ररुप बुरा ध्यान छोड देना, उसका नाम 'काउस्सग्ग' है. काउस्सग्गसें विशेष करकें आत्मशुद्धि हो सकती है. (६) प्रत्याख्यान यानि आत्मस्थिरता वढानेके लिये अन्य बाधक उपयोग दूर करनेके वास्ते तथा शुभ साधक-उपयोग जागृत करनेके लीये उपवासादिक तपविशेष अथवा आत्महितकर अ-

मिग्रह विशेष मुकरीर धारन करना उसीका नाम पच्चख्खाण है. विवेकपूर्वक पच्चख्खाण करनेहारेके सब गुणकी पुष्टि करना है; वास्ते आत्मार्थी सज्जनोंकों अवश्य आदरने योग्य है. उपर कहे हुए छउं आवश्यक सद्भावसें सेवन करनेहारेकों उत्तम सुख देते हैं, उस्सें ज्यौं बन सकै त्यौं तत्संबंधी विशेष समझ मिलाकर उनकों यथाविधि सेवन करनेकी खास जरुरत है.

पव्वेसु पोषहवयं, दाणं शीलं तवोअ भावोअ;
सज्झाय नमुकारो, परोवयारोअ जयणाअ. १

पाँचवा—पर्व दिन पोषधव्रत अवश्य ग्रहण करना. हरेक महीनेमें हरेक अष्टमी, चतुर्दशी आदिक पर्व दिन आते है. ज्ञान—सौभाग्य पंचमी, मौन एकादशी, तीन चातुर्मासी, पर्यूषण, चैत्री, कार्तिकी पूर्णिमा, यावत् जो जो अतीत—अनागत—वर्त्तमान जिनेश्वरजीके कल्याणक दिन होवे उन उन सबकों पर्वदिन कहे जाते हैं यतः—' करी सको धर्मकरणी सदा, तो करो एह उपदेशरे; सर्वकाळे करी नवि सको, तो करो पर्व सुविशेषरे. विरतिए सुमति धरी आदरो, उन दिन यथाशक्ति उपवास, आयंबिल, एकासनादिक तप करना. शरीर—शोभाका त्याग करना. अहोरात्रि अखंड ब्रह्मचर्य पालन करना, और सर्व पाप व्यापारका त्याग करना ये चार प्रकारसें पोषध व्रत प्रीतिसें अंगीकार करकें यथा विधि पालन करना. कभी किसी कारणसें संपूर्ण चारों बावत न बनसकै तो उन अंदरसें जितनी बन सकै उतनी तो विवेकपूर्वक

अवश्य बनानी. और चैत्य परिपाटी, उत्कृष्टचैत्यवंदन, पूजा, गुरु-भक्ति, शास्त्रश्रवण, अनुकंपा, दानादिके धर्मकृत्य यथावसरपर यथाविधि अवश्य संभालने चाहियें. परंतु प्रमाद विकथादिक नहीं करना. कहा है कि:—

" जीवने आयु परभवतणुं, तिथि दिन बंध होय प्रायरे;
ते भणी एह आराधतां, प्राणियो सद्गति जायरे—
वीरतिए सु. "

वास्ते ज्यों बन सके त्यों प्रमाद छोडकर सूर्ययशा महाराजाकी तरह पर्वदिनोंका आराधन करना. और कुमारपाल भुपालकी तरह धर्म आराधनेमें अपनी शक्ति स्फुरायमान करनी.

छट्ठा—अभयदान, सुपात्रदान और अनुकंपादिक दानमें अपनी तथा पवित्र शासनकी उन्नति करनेकी खातिर दूसरे तुच्छ फलकी चाहना रक्खे बिगर निरंतर आदर करो. विवेक लाकर योग्य जीवोंको ज्ञानदान देनेहारा वा ज्ञानार्थ सुद्रव्य—स्वद्रव्यका सदुपयोग करनेहारा महा लाभ बांधता है. ज्ञान ये भाव प्राण है; वास्ते लाभ बंधन होता है.

सातवाँ—शील सदाचार, अनेक जीवोंकी हिंसा होवे तथा उत्तम कुल मर्यादाका लोप होवे वैसा मांसभक्षण, सुरापान, शिकार, परस्त्री—वेश्या गमन, जुगार, चोरी, अभक्ष्य सेवन, विश्वासघात और परवंचनादिक बुरे आचारण सुश्रावक अथवा श्रावके धर्म स्वीकारनेकी चाहतवाले गृहस्थ जनको अवश्य छोड देनेके ही

लायक है, और जिस प्रकार पवित्र धर्मकी प्राप्ति तथा पुष्टि होवै वैसा सदाचार हमेशां सेवनकरने योग्य ही है.

आठवाँ—तपधर्मका यथाशक्ति अवश्य सेवन करतेही रहना. जैसें अग्निके तापसें सुना शुद्ध होता है तैसें तपके तापसें आत्मा शुद्ध होता है. संयमसें नये आते हुए कर्म रुक जाते हैं, और समतापूर्वक सेवन करनेमें आते हुए द्वादशविध तपधर्मसें पूर्व के कर्म दग्ध हो जाते हैं. छट्ठ अठमादिक बाह्य तप सेवनसें जरासी तकलीफ उठानी पडती है, तोभी उनकों विवेक व क्षमा सहित सेवन करनेसें अतुल लाभ हाथ आता है; वास्ते मोक्षार्थी भव्यजनोकों उक्त कथित तप अवश्य सेवन करने ही लायक है.

नौवा—भावना ये भवभवकी भीरभंजक और उत्तम सुखके वास्ते श्रेष्ठ साधन है. पुर्वोक्त दान शील तप आदिक सब धर्म करणी भावनाके सिवाय निष्फल है. लून विगरका धान्य-भोजनकी तरह करनेमें आती हुई धर्मकरणी कुछ मजाह नहीं देती, और भावनाके मिलानेसें वो सब सरस सुखद हो पडती है. वो भावना, करनेमें आती हुइ धर्मकरणी या करनेका इरादा हो वो अवश्य करने लायक धर्मकरणीकी यथायोग्य समझ मिलाकर उनका निरंतर प्रीतिपूर्वक अभ्यास करनेसें प्रकट होती है. अंतमें उक्त करणी भावनामय बन जाती है, वास्ते पहिले तो हरएक करने लायक धर्मकरणीका प्रयोजन-फल सद्गुरु द्वारा पूंछकर निश्चय करना—जिस्सें उक्त धर्मकरणी करनेसें मन स्थिर हो सकै और

क्रमशः उनपर प्रीति वढती रेहै. यावत् अंतमें उससें सद्भाव प्रकट होनेसें अपूर्व लाभ प्राप्त होवै. वा पवित्र शास्त्रोंमें कही हुइ मैत्री, प्रमोद, करुणा और मध्यस्थतारूप चार पावन भावनाऐं तथा वैराग्यदशाकों वढा करकें अंतमें उत्तम उदासीन भाव मिला देनेहारी अनित्य अशरणादि वारह भावनाए भवभीरु भव्योंकों हर हमेशां क्षण क्षणमें शुद्ध अंतःकरणसें अवश्य भावने योग्य है. उक्त भावनाए विगर तत्वसें वैराग्यकी न्यूनता द्वारा क्रिया फिकी लगती हैं.

दशवाँ—स्वाध्याय—१ वाचना नवीन शास्त्रका पढना, २ पृच्छना शंकाका समाधान करना, ३ परिवर्त्तना—पढा हुआ न भूल जाय उस वास्ते पुनः पुनः याद करना, ४ अनुप्रेक्षा—चिंतन किये हुवे अर्थका चिंतवन करना, ५ और धर्मकथा—जिसमें अपनेकों अच्छी तरहसें समझ पड चूका हो और बिलकुल भ्रांति न रही हो वो यावत योग्य जीवोंकों कहकर धर्ममें जोड देना. वो पांचों प्रकार हरहमेशां अवश्य करने लायक हैं. उसमें चित्तकी एकाग्रता होनेसें आते हुवे कर्म रुक जाने के साथ अपूर्वभावयोगसें पूर्वकर्मकी वडी भारी निर्जरा होती है.

अग्यारवाँ—नम्मुकारो नमस्कार यानि पंचपरमेष्ठि नमस्काररूप महामंत्रका नित्य स्मरण करनां. एक क्षणभरभी प्रमादमें पडकर उक्त महामंत्रका न भूलजाना. उक्त महामंत्र चौदह पूर्वका सारभूत है; वास्ते उनका परम आदरसें सेवन मनन ध्यानादिक

करना; क्योंकि अपना कल्यान करनेको वो सर्वोत्तम साधन है.

बारहवां—परोपकारबुद्धि अवश्य रखनी. कहा है कि:—

मालिनी छंद.

मनसि वचसि काये पुण्य पीयूष पूर्णा,
त्रि भुवन मुपकार श्रेणि भिः प्रीणयंतः इत्यादि—

मन वचन तनकी अंदर पुण्यअमृतसें भरे हुवे और तीनुं भुवनके प्राणीओकों उपकारकी परंपरासें प्रसन्न करते हुवे कितनेक सज्जन पुरुष होते है. सच्च तपासनेसें मालुम होता है के परोपकार ये तत्त्वसें आपकाही उपकार है. निःस्वार्थपनसें परोपकार शील पुरुषोंकों स्वाशय शुद्धिसें श्री तीर्थंकर गणधरादिक महाशयोंकी तरह बडीभारी निर्जरा होती है.

तेरहवाँ—जयणा—इस विषय पर सामान्य हितशिक्षाके शिरोलेखके नीचे यानि उस हेडिंगके नीचे कुछ थोडासा विवेचन किया गया है वास्ते पृष्ट १०६ में देख लेना. अपनकों घडी घडी पल पलमें जयणा माताकों याद करनी चाहियें ही दुरस्त है. वो पूज्य माताकी सेवा किये बिगर धर्मकरणी फोकट है. व्यवहारकार्यमें भी जो सुपुत्र पूज्यजयणा—माताकों नहीं भूलते हैं वे ही सत्य प्रशंसाके पात्र हैं.

आर्या छंद.

जिण पूआ जिणथुणणं, गुरुथुअ साहम्मीआणवच्छल्लं;
ववहारस्सय सुद्धि, रहजत्ता तित्थ जत्ताअ.

चौदहवाँ—श्रीजिनेश्वर देवका यथाशक्ति त्रिकाल पूजन स्वद्रव्यों द्वारा करनी. प्रभात वख्त हाथ पाँव वगैरः शरीरकी तथा वस्त्रकी शुद्धि करके अष्टपट मुखकोष बांधकर उत्तम वासक्षेपसें, दुपहरके वख्त ५–८–१७–२१ प्रकारकी पूजामें, औ संध्यावख्त धूप दीपसें भाविक आत्मा भक्ति भरपूर भगवंतजीकी भक्ति किया करे. द्रव्यशक्तिहीन मात्र भावभक्ति ही किया करे. जिनमंदिरमें निस्सिही आदि दशत्रिक पांच अभिगम वगैरः प्रमाद रहित समाल लिया करे छोटी वडी आशातनाए समझकर श्री जिनमंदिर या श्री गुरु द्वारमें अवश्य दूर करै इस संबंधका विशेष अधिकार श्री देववंदनभाष्य मूल टीका या बालावबोधसें जाननेकी दरकारवाला होवै सो देख लेवै.

पंद्रहवाँ—प्रभुजीकी द्रव्यपूजा किये बाद भावस्तव—स्तुति जरुर करना चाहिये. सो चैत्यवंदन जघन्य—मध्यम—उत्कृष्ट ऐसे तीन मुख्य प्रकार है. जघन्य एक स्तुतिसें, मध्यम चार स्तुतिसें और उत्कृष्ट आठ स्तुतिओंसे, या जघन्य एक श्लोकसें, मध्यम एकसें ज्यादे श्लोकसें और उत्कृष्ट १०८ श्लोक काव्यसें चैत्यवंदन करना. स्थिरता योगसें इर्य्यावही पूर्वक चैत्यवंदन विधिका उपयोग करना.

सोलहवाँ—सुगुरु—शुद्ध तत्वोपदेशककी सेवा करनी और सुंदर भक्ति करनी, स्तवनादिक वहुतमान अवश्य करनो लायक हैं. आप पवित्र आचारको पालन करके हर हमेशां शासनकी प्रभावना करै वैसे सद्गुरु वडे भाग्य योगसेंही प्राप्त होते हैं. पूर्व पुण्ययोग-

सें वैसे सद्गुरुकी योगवाही पाकर प्रमादरहित बने सके उतना लाभ लेना.

सत्तरहवाँ—साधर्मी वात्सल्यका फल शास्त्रमें उत्तम कहा है; वास्ते उनका स्वरुप समजकर बन सकै उतना लाभ लेनेमें न चूक जाना. समान(एक जैसे सर्वज्ञ भाषित)धर्मका सेवन करने वाले साधर्मी कहे जाते हैं. उनकी गुंजास मुजब जैसा वख्त मोका हो वैसी भक्ति करनी उसीका नाम साधर्मीवात्सल्य है. मायामय संसार चक्रमें माता पितादि कुटुंबी जनोंका संयोग सहल है; मगर साधर्मीयोंका संयोग बडा मुश्किल है. भाग्यबुलंदसें उनका संयोग पाकर उनका यथाशक्ति लाभ लेना ही दुरस्त है. साधर्मीयोंमेंसें जो धर्मबन्धु गुण श्रेणिमें आगे बढ गया होवै उन्होंका समागम—आदर बहुतमान कर गुण ग्रहण कर और वै किसी प्रकारकी तकलीफ उठाते हुए मालुम पडें तो उन्होंको अपनसें बन सकै उतनी मदद देकर सच्चे साधर्मीवात्सल्यका लाभ लेना. दुःखपाते हुए साधर्मीओंकी बेदरकार रख फक्त यश—कीर्तिके लोभसें अपनी माति मुजब पैसे उडानेसें क्या साधर्मीकवात्सल्य गिनाया जाता है ? बिलकुल नहीं ! विवेकसें साधर्मीयोंकी उन्नती होवै उसी तरह चलनेसें सहज में वो लाभ मिल सकता है.

अठारहवाँ—व्यवहारकी शुद्धि स्वहितेच्छु श्रावकको अवश्य करनी लायक है. उस वास्ते श्री हरिभद्र सूरीश्वरजीने धर्मबिंदु ग्रंथमें कहे हुवे मार्गानुसारीके ३५ बोल अवश्य लक्षमें लेने

चाहियें. न्याय नीतिसें द्रव्य उपार्जन, आमदनी मुजब खर्चा, उचित आचरण, मात तातकी भक्ति, लोग राज्यविरुद्ध वार्त्ताका त्याग,—अभक्ष्य निषेध इत्यादि बातें तदन छोड देनी ही फायदेमंद है. जहां तलक बराबर कपडा उजला साफ न हुवा होगा वहां तलक जैसे उन कपडेपर अच्छा रंग न चढ सकैगा, वैसें व्यवहारविकलकों भी धर्मप्राप्ति हो नहीं सकती है. वास्ते विनय, शिष्टाचार, कृतज्ञता, दयालुता, दाक्षिण्यता और परोपकार प्रमुख अनेक शुभ गुण सेवन करके ज्यौं बन सकै त्यौ पहिले व्यवहारकी शुद्धिके लिये प्रयत्न करना.

उन्नीशवाँ—रथयात्रा यानि रथके अंदर प्रभुजीकों बिराजमान करकें महोत्सव पूर्वक प्रभुकी भक्ति करते हुवे नगारेदिक वाजींत्र गीत होते हुवे नगरमें परिभ्रमण करना उसद्वारा कममें कम दर सालमें एक दफै सुश्रावक जन कुमारपालकी तरह शासनोन्नति करै.

बीशवाँ तीर्थयात्रा भी दर सालमें सुश्रावककों विवेकपूर्वक करनी चाहियें, और वहां मन वचन तन स्थिर रख श्री देवगुरु धर्म संघ साधर्मीयोंका विधि सहित पूजन—सेवन—भक्ति करकें अपना समकित शुद्ध कर पूर्व पुण्यबलसें प्राप्त भइ हुइ सामग्री वस्तुपाल तेजपाल आदिकी तरह सफल कर लेनी. इस तीर्थयात्रा संबंधी सविस्तर हकीकत श्री तीर्थयात्रा दिग्दर्शन नामक निबंधमें थोडे वख्त के पेस्तर 'जैन धर्मप्रकाश' में प्रसिद्ध हुइ है. उनमेंसें इस विषय के संबंधवाली बाबत बांचकर—विचारकर लक्षमें रखकर

उचित विवेक अवश्य उपयोगमें लेना.

आर्या छंद.

उवसम विवेक संवर, भासा समिइ छज्जीव करुणाय;
धम्मियजण संसग्गो, करणदमो चरण परिणामो. ७

इक्कीशवाँ—उपशम भाव अवश्य आदरना यानि क्रोधादि कषाय छोडदेनेही योग्य है. नम्रता आदरकर अहंकार दोष छोड देना, और संतोषगुण सेवन करकें लोभ दोषकों त्याग देना. क्रोधादिक कषायसें संतप्त हुवा आत्मा चीलाती पुत्रकी तरह उपशमनीरसें शांत होता है.

बाइशवाँ—विवेकगुण जरुर धारण करना चाहियें. सच्चे झूंठेका, भक्ष्याभक्षका हिताहितका, उचितानुचितका और गुणदोषका जिस मारफत पूरेपूरा जानपना होवै उसीका नाम विवेक है. विवेकीजन हंसके समान और अविवेकी कव्वेकी समान गिने जाते है. विवेकवंत चिंतामणि रत्न जैसे अमूल्य धर्मको पाकर संभाल सकते हैं, और अविवेकी उससें कमनसीवही रहते हैं. विवेकशून्यको पशुतुल्य कहा है.

तेइशवाँ—संवरगुण आश्रवके निरोध—रोकनेसें ही आता है आश्रव यानि नये कर्मको आजानेका रस्ता, पांचो इंद्रियोंका परवश होना, चारों कषायका सेवन करना, अविरतिवंत रहना, शक्ति होनेपरभी व्रत पच्चक्खाण नहीं करना, मन वचन तनकों बुरे योग उपयोगमें लेना, और वैसी ही दूसरी अहितकारी क्रियाअें

करनी यो सर्व आश्रवरुप होनेसें जीवकों कर्मबंधनके कारण-भूत है. उन सबका विवेकसें त्याग करना उसीकाही नाम संवर है. उसीकों चिलाती पुत्रकी तरह भवभीरु आत्महितेच्छु जनोंकों सर्वोत्तम सुखदायी होनेसें जरुर आदरने लायक है.

चोडशवाँ—भाषा समिति यानि बोलेनेमें अच्छीतरका उप-योग श्रद्धा वंत श्रावककों जरुर रखना चाहियें—उन विषय संबंधमें उपदेश मालाके कर्त्तानें कहा है सो जरुर लक्षमें रखने लायक ही है:—

आर्याछंद—

महुरं निउणं थोवं, कज्जावडियम गव्वियम तुच्छं;
पुव्विं मइ संकलियं, भणियं जं धम्म संजुत्तं. १

इन पवित्र गाथाका परमार्थ ध्यानमें लेकर वचन विवेक जरुर रखना चाहिये. परमार्थ यह है कि—जो वचन बोलना वो इस प्रकारका होना चाहिये यानि पहिले तो वो वचन मीठा होना चाहियें—कटुक होनाही न चाहियें दूसरा—वो वचन निपुणता—उमदा समजसें भरा हुवा होना चाहियें, तीसरा वो वचन मतलब जितनाही बोला हुवा होना चाहिये, चौथा—प्रसंगोपात बोलना चाहिये, मगर अति प्रसंग होवै वैसा न बोलना चाहिये, पाँचवा गर्व रहित नम्रता युक्त बोलना चाहिये, छठा—उमदा रहामने वालेका मान मरतबा संभाला जाय वैसा बोलना; मगर अपमान वचन न बोलना चाहियें, यानि हलकापनवाला तुकारेंकार

ज़ुरा न बोलना, सातवाँ—इस वचनका यही परिणाम आयगा, इन संबंधका पूर्ण विचार करकेंही बोलना, मगर ज्यौं आया त्यौं बकदेना न चाहिये, और अंतमें धर्म मार्गसे विरुद्ध भाषन न करना चाहिये. इस मुजब विवेक पूर्वक बोलने वालेका वचन प्रमाणभूत होनेसें विश्वास पात्र होता है; वास्ते आपकी या धर्मकी उन्नति बढानेके लिये अवश्य भाषा समिति आदरनी चाहिये.

पच्चीसवाँ—षट् जीव निकाय यानि तमाम जीवोंके उपर करुणा—दया बुद्धि धारनकर सुश्रावकको उन जीवोंकी बन सके वहां तक रक्षा करनी सब जीवोंको जीना बडा प्यारा लगता है मरना प्यारा नहीं है. ऐसा समझकर सुखार्थी जीवोंको किसी जीवको न मारना चाहियें, न किसीके पास मरवाना चाहिये और न मारन मरवाने वालेकी प्रशंसा करनी चाहिये. अगर किसी जीवको दुःख पैदा होवै वैसा कुछ भी अनुचित—गेरव्याजबी आप खुद करै नहीं, करावे नहीं और अनुमोदन भी करै नहीं. करुणार्द्र हृदयवंत जनोंने किसीकाभी अनिष्ट—बुरा मनसें चिंतवन करना नही, वचनसें बोलना नही, और कायासें करना नहीं. जिस तरह सबका भला होवै उसी तरह सदा चिंतवन कियेही करै उसी तरह बोले, और उसी तरह किया करै तथा दूसरोंको भी वैसाही करनेका उपदेश करै और वैसा करने वालेकी सदा प्रशंसा किया करै.

छव्वीशवाँ—धर्मीष्ट जनोंका संसर्ग—परिचय करना 'जैसी सोबत वैसी असरयानि सोबते असर तुकमें तासीर' ये कहना

चतके इन्साफ मुजब धर्मी सद्गुणी जनोंकी ही हर हमेशा जरुर सोबत–संगत दोस्ती करनी चाहियें धर्म विमुखकी कबीभी संगति न करनी चाहिये. सद्गुणीके संगसेंभी दरकार वाले शख्सकों ही फायदा होता है. वेदरकार वाले या प्रमादीकों कुछ फायदा नहीं होता है. मणिधर–सांपके शिरपर रहा हुवा मणिमें ज्हेरमें ज्हेर दूर करनेकी ताकत है, ताभी वो वेदरकार होनेसें उस ज्होरको फायदा उसकों कुछ भी नही मिल सकता है. आपका झहरभी दूर नहीं होता उसी मुजब गुणीजन वहुत नजदीक होने परभी दुर्जन–खलकों जरा साभी फायदा नहीं होता है. जैसें दुर्जन अपनी दुर्जनता नहीं छोड देता है वैसेही सज्जन भी अपनी सज्जने–सौजन्यता नहीं छोड देता है. सांपका झहर क्या उनके शिरपर रहे हुवे ज्होरेंमें दाखिल हो सकता है ? नहीं हो सकता ! उसी तरह उत्तम सिद्ध स्वभावके गुणी जनोंकी अंदर भी निर्गुणीको असर नहीं हो सकती है; वास्ते वैसे जनकी जरुर सोवत करनीही मुनासीब है. चंदन समान शीतल स्वभावसें अपने सोवतीका तीनूं प्रकारसें ताप हरते हैं वैसे संत हर हमेशां सेवन करनेके ही लायक हैं.

सत्ताइशवाँ–करण दमः यानि पाचों इंद्रियोंका दमन अवश्य करनाही दुरस्त है; क्यौंकि एक एक इंद्रियके तावे हो गये हुवे विचारे पतंगीए, भौरे, मच्छिे–मछलियां, हाथी और हिरन दुर्दशाकों पाते है, तो जब पांचों इंद्रियोंके एक साथ ही तावे हो गये हुवे का तो कहना ही क्या ? विषय वश हो गये हुवे अपनी शुद्ध बुद्ध

भूल जाकर भविष्यमें आपका क्या होगा, उनका भी विचार नहीं कर सकते हैं; वास्ते विषय विवश न होते विवेकी श्रावककों उसी इंद्रियोंको वश कर इंद्रियजीत होना सोही धन्यवादके पात्र है. इंद्रिय दमनसें सद्‌गति होती है. स्पर्शनेंद्रियादिकका सद्‌विवेक द्वारा सदुपयोग—श्रीदेवगुरु संघ साधर्मीककी भक्ति बहुत मान पूर्वक करनेसें सुश्रावक आपके यह और परभव सुधार लेता है. और इनसें विपरीत वर्त्तनवाला उभय जन्म भ्रष्ट करता है. ऐसा समझकर क्षणिक विषय सुखमें न ललचाकर अपना कल्यान हाथकर लेनमें तत्पर रहना; क्योंकि पुनः पुनः ऐसी आत्म साधन अनुकुल सामग्री हाथ आनी बहुत मुश्किल है.

अठ्ठाइसवों—चरण यानि चारित्र—सर्व विरतीकों अंगीकार करने के परिणाम विवेकी श्रावककों जरुर रखने चाहिये. 'सम्यग् दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः' यह पवित्र सूत्रका रहस्य जिसने अच्छी तरहसें जान बूझ लिया होवै. वो एक क्षणभर भी शिघ्र—तुरंत मोक्ष देनेहारे चारित्र धर्मको क्यौं भूल जावै ? परंतु परम चारित्र धर्मकी प्राप्ति बहुत करकें प्राणियोंको क्रमशः होता है; वास्ते दिन प्रतिदिन विरति धर्मकों ज्यादे ज्यादे सेवन करनेकी दरकार रखनी. पहिले तो उभय लोकविरुद्ध परस्त्री वेश्यागमनादिक सप्त महाघोर व्यसनोंका त्याग करना. (इन संबंधमें कुछ सविस्तर हकीकत आगे पृष्टमें कही गइ है वहांसें देखकर उपयोगमें ले लेनी.) उसके बाद क्रमशः श्रावकके बारह व्रतोंका पालना हो सकै उतना

पालन करनेका अभ्यास पाड प्रतिज्ञा करनी. और बाकी रहे हुवे-का अभ्यास कर अनुक्रमसें नियम करना. शक्ति होनेपर भी ऐसी अच्छी सामग्री मिलनेसे प्रमादमें पड आपका खास कर्त्तव्य भूलने-हारे भाग्यहीनकों आगे पर बडा भारी शोच करना पडता है. मुनि महाराजके महाव्रतोंकी अपेक्षासें श्रावकके व्रत बहुतही सर-लतावंत है. जब मुनि महाराजकों हरएक महाव्रत त्रिविध त्रिविध पालन करनेका है, तब श्रावकोंकों अनुव्रतादि भी शक्ति मुजब चाहे उस भांगेसें ग्रहण करनेकी रजा है; तोभी बहुत जन तो ज्ञानश्रद्धादिककी न्यूनतासें इतना भी लाभ लेनेमें भाग्यशाली नहीं हो सकते हैं. श्रेष्ठ श्रावक तो १२ व्रत् धारनकर सर्वथा सचि-त्त भक्षणके त्यागी बनकर सर्वविरति चारित्र धर्मके पूर्ण अभिला-षी होते है. ऐसे विवेकी श्रावक प्रायः चारित्र रत्नकों पाते है.

आर्या छंद- संघोवार बहुमाणो, पुथ्थय लिहणं पभावणा तिथ्थे;

सड्ढाण किच्चमेयं, निच्चं सुगुरु वएसेणं. १

उन्नतीसवाँ—श्री संघके उपर बहुमान् रखना चाहिये, श्री ती-र्थंकर प्रभुजीकी पवित्र आज्ञाकों प्राणसेंभी ज्यादे प्रिय मानकर सेवन करनेहारे साधु साध्वी श्रावक श्राविकारूप चतुर्विध संघ कहाता है; परंतु परमोपकारी प्रभुजीकी पवित्र आज्ञा उल्लंघन कर-नेहारे जनोंका समूह यानि अपनी मरजी मुजब उलटे वर्त्तन चला-नेहारेकों परम पवित्र संघकी गिनतिमें गिनने लायकही नहीं है. उन्होंके आचरण पवित्र आज्ञासें विरुद्ध हैं; वास्ते पवित्र आज्ञा

पालनेहारा चतुर्विध संघ तरह जग जयवंत श्री जिनशासनकी उन्नती करनेके बदलेमें वै तो तदन आज्ञा विरुद्ध वर्त्तनेसें पवित्र शासनकी हिलना–वदी–मश्करी करनेहारे हैं, उस्सें वै प्रभुआज्ञापालक श्री संघके बहार है. पवित्र आज्ञाधारक श्रीसंघ तो श्री तीर्थंकरजीकों भी मान्य है, ऐसे संघका अनादर तीन भुवनमें भी कौन कर सकता है ? अगर कोइ मोह मदिराकें जोरसें अनादर करै तो वो आखिर क्यौं करकें सुखी हो सके ? वास्ते स्वकल्यान चाहनेहारेकों कबी भी पवित्र साधु–साध्वी–श्रावक श्राविकारुप व्यस्त या समस्त श्री संघकी मश्करी–ठठ्ठाबाजी–दिल्लगी–निंदा–अवज्ञादि आप खुदकों करनी नहीं, करानी नहीं और अनुमोदना करनी या संमती भी दैनी नहीं; किंतु यथाशक्ति उस पवित्र संघकी भक्ती करनी; करानी और अनुमोदनी स्वपरकी उन्नति रचनेका ये अति सुलभ मार्ग है. जो सुज्ञजन उक्त विवेक युक्त श्री संघकी भक्ति करता है वो परम भक्तिरससें सकल कर्म दूर करकें अक्षयपद पाता है. श्री संघ जंगम तीर्थ रुपहै, उससें मोक्षार्थीजनोंकों अवश्य सेवन करने के योग्य है.

तीसवाँ–पुस्तक लिखनम्–सर्वज्ञ भाषित और गणधरादिक महापुरुष गुंफित आगम–पंचांगी समेत, प्रकरण या ग्रंथोंका लिखना, लिखवाना और लिखनेवालेकों मदद देना ये सुश्रावकोंका अवश्य कर्त्तव्य है. वै शास्त्र ज्यौं शुद्ध लिखे जावै त्यौं खास ध्यान देनेकी जरुरत है. आजकल हाथोंसें लिखे जाते हुवे ग्रंथ बहुत करकें

अशुद्ध मालुम होते हैं उनके बहुतसें कारण है. वो लक्षमें लेके विचारनेसें और पूर्व के शुद्ध ग्रंथोकी साथ मुकावला करनेसें बहुत दिलगीरी पैदा होती है. और पूर्व प्रभाविक पुरुषोंनें लिखाये हुवे ग्रंथोकी आजकल बहुतसी जगह चलती हुइ गेरव्यवस्था देख अपार खेद होता है. ऐसे परमपवित्र शास्त्रोंकी हानि होनेका कारण अज्ञान और अविवेकका जोरही मालुम होता है; क्यौ कि जो वै पवित्र शास्त्रोंका सच्चा मूल्य समझनेमें आया होता तो पीछे कौनसा मंदभागी वै पवित्र शास्त्रोंका उपयोग न करतें, और न करने देतें? जाने अपने बापकी मिलकत होवै उसी तरह ममतासें महाकृपणके धनकी माफिक उन्होंकों छुपाकर रखके उन्होंका लाभ लेनेमें इंतेजार और सच्चे हकदार समस्त श्री संघकी अवज्ञा करकें दीमग आदिकसें उनका नाश होजाने तक उन्होंकी बेदरकारी किये करते हैं. सचमुच ये कृपणपने सत्यानाशीका वख्त दिखलाया है. नहीं तो दो घंटेकी अंदर ये सब सीधादोर हो जावै. जो ये नाश होते हुवे पुस्तकोंकों अमूल्य समझकर बचा लेने होवै तो उसका सच्चा और सरल उपाय संपही है. आजकल लिखे जाते हुवे हजारो अशुद्ध ग्रंथोंसें नाश हुवे जाते शुद्ध ग्रंथोंका बचाव करलेनेमें बडा भारी फायदा है. नाश हुइ वस्तुका दूसरी जगह पता मिलना ही मुश्किल है, और वैसे ग्रंथोंका बचाव किसी प्रकार भी हो सकै तो अच्छा है, नहीं तो अति विरल और खास उपयोगी ग्रंथोंकी एक एक नकल अति शुद्ध कर, करवाकर उन प्रतकें उपरसें अनुकूल साधन

की सहायता मदद ले दूसरी शुद्ध प्रत करा लेनी दुरस्त मालुम होती है. लाभ गेरलाभ विचारकर जितनी आशातना दूर हो सके उतनी दूर कर पवित्र ग्रंथोंका उद्धार करना ये विवेकवंत समयज्ञ श्रावकोंकी खास फर्ज है. अपने परमपवित्र शासनका सच्चा आधार उपर कहे हुवे अमूल्य और पवित्रशास्त्रोंके उपर ही है. वो अपना अमूल्य वारसा आजकल के कितनेक मिथ्या मान के पुतलों के विश्वाससें अपन गुमा न वेठें उस वास्ते अपनकों ज्यादे सावध रहनेकी जरुरत है वास्ते जिनके कवजेमें वैसे पुस्तक है उनकों समझाकर कुल कवजा हाथकर शासनकी तर्फ गंभीर फिक्र सहित खंत रखनेवाले नररत्नोंको आगेवानी देकर उन्होंकी निगेहवानीके नीचे वो अति कींमती वारसा संभालना. अपनी वेदरकारीसें अपनने वहुत गुमा दिया है, और वो इतना मेंघा था कि उसका मूल्य वडे ज्ञानी झोहरी ही कर सकते हैं; मगर शिंग और पूंछ विगर के नर पशु न कर सकेंगे. उमीद है कि अवी भी कुंभकरणकी गाढ निद्रामेंसें जागृत हो अपना भविष्य सुधारनेके वास्ते अपने कोइ कोइ भाइ कुछ करेंगे, और कुछ ज्ञनुनसें कहे गये कठिन शब्द वास्ते अच्छा मानेंगे.

ईकतीसवाँ—तीर्थ यानि शासन उनकी प्रभावना यानि उन्नति जो सुश्रावक है वो यथाशक्ति अवश्य करेंगे. उपलक्षणोंसें कोइ वुरे संयोगोंसें करके भइ हुइ मलीनताकों भी दूर करेंगे.

यहांपर वर्त्तमान श्री वीर शासनका मुख्य आधार आगम या

आगमधर और जिन प्रतिमाजी या जिनमंदिरजीके उपरही है. आगमोंकी स्थिति कैसी दयाजनक हो गइ है वो पेस्तरके पेरिग्राफसें समझनेमें आ गया है, और उस परसें आजकल आगमधर कैसे है अथवा कैसै हो सकै वो भी कुछ समझने में आयगा; अर्थात् भूले पडे हूवे या पडजाने वाले उक्त आधारकों टेका देनेकी अपनी खास फर्ज है. जिनप्रतिमायें या जिनमंदिरोंके संबंधमें भी करीब वैसाही है—इसका सबब भी मुख्यतामें अज्ञान, अविवेक या कुसंपही नजर आता है. अगाडीके वख्तमें जब पृथिवीकों जिन प्रासादमंडित करनेके लिये समर्थ श्रावक वीर थे, तब अभी आपके गाँवमें या नगरमें जो जिनमंदिर या जिनबिंब है उनका संरक्षण करनेकों भी श्रावक भाग्यसेंही समर्थ होते है; सबब कि आजकल कितनेक धनपात्र पैसेकी केफमें शाहाने—दीर्घदर्शी श्रावकोंकी दलीलपर बेदरकारी बताते हुवे नये नये मंदिर बनवाकर उसमें नयी नयी प्रतिमाजीयें भरवा कर जितना फजूल पैसा उडादेते है सो विवेक विगरही उडाते है; यदि उतना द्रव्य विद्यमान मंदिरोकी मरामतमें या उन्होंकी संरक्षणतामें, जिन भक्तिमें विवेक पूर्वक खर्चा करे तो अपार लाभ हांसिल कर सकै; लेकिन जब जैनकोमका और उसीके साथ आपका बेहतर होनेका होवै तब उन्होंको ऐसी सद्बुद्धि या विवेक जाग्रत होवै ना ? एक दूसरेकी स्पर्धासें फक्त मिथ्याभिमानमां अंध होकर यशकीर्ति गवानेके वास्ते किया गया चाहे वैसा बडा काम उचित विवेककी बडी भारी न्यूनतासें कया

आपको या अन्य जनको उपकारी होवे ? नहीं होवे ! वास्ते उचित है कि–श्रीमंत श्रावकोंको वैसे धर्मकार्यमें दीर्घदर्शी अन्य साधर्मी या निःस्पृह साधु समूहका हितबोध हृदयमें याद रखके आगेको कदम उठाना अन्यथा आपके अविवेकसें उल्टे श्री संघको बोजे–भार रुप हो पडै. "प्राचीन जिनमंदिरोंका उद्धार और संरक्षण करनेसें अगणित लाभ है." वो पवित्र वाक्य अधिकारी श्रावक वर्गको भूल जाना युक्त नहीं है; सबब कि पवित्र शासनका सच्चा आधार अभी मुख्यतासे श्रीजिनागम और जिन पडिमाओंके उपर हैं. आखिर आंखें खोलकर विवेक जागृत करके समझना चाहियेकि उक्त पवित्र आगम, आगम धरोंके आधारसें और पावन जिन पडिमाऐं श्री जिनमंदिरोंके आधारसें रह सकते है, इतनाही नहीं मगर उक्त आगम मुजब वर्त्तनेहारे पवित्र आगमधर और विधि मुजब निर्माण किये गये प्राचीन जिन मंदिर जगत् जयवंत जैन शासनके सचमुच अलंकार है.

श्री भद्रबाहु स्वामी, श्री उमास्वाती वाचक, श्रीसिद्धसेन दिवाकर, श्रीहरीभद्रसूरी, श्रीहेमचंद्रसूरी, वादी श्री देवसूरी तथा महोपाध्याय श्री यशोविजयजी वगैरः प्रभावक आगमधरोंसें जिस प्रकार जैन शासनका डंका वजा है, तैसेही श्री शत्रुंजय, गिरनार, आबु, अचलगढ, राणकपुर, पट्टन, खंभात, तारिंगा–राजनगरादिक अनेक स्थलमें शोभायमान होते हुवे प्राचीन जिनमंदिरमे पुराने जिन बिंबोंसें जैनशासनका जयनाद सर्वत्र फैल गया है. उससें

जिनशासनके सच्चे आधारभूत या अलंकारभूत पवित्र प्राचीन आगम या जीर्णप्राय भये हुवे जिनमंदिरोंका उद्धार करनेकी ही आजकल सच्ची अगत्यता है. और विवेक पूर्वक उक्त महाकार्यमें द्रव्यका सदुपयोग करनेसें ही पवित्रशासनकी वडी भारी उन्नति या प्रभावना होनेका संभव है. उमीद है कि प्रियभाइ-और भगिनीयो-ये अति अगत्यकी वात खास लक्ष्यमें ले अनादि प्रिय स्वच्छंदताकों छोड शास्त्र परतंत्र रहकर स्वहित साधेंगे! या द्रव्य क्षेत्रकाल भाव विचारकर पवित्रशासनके परम रसिक सद्गुरुका सदुपदेशलक्षमें रखकर ज्ञानकी तालीममें वृद्धि करकें दुःख पाते हुवे साधर्मीयोंको उदार सखावतसें उद्धर कर पवित्र शासनकी वडी भारी उन्नति करकें आत्म कल्याण करेंगे! कल्याणके अर्थी भाइ भगिनीयें विवेक-सह लक्ष्मी, यौवन, और आयुषकी अस्थिरता पूर्ण प्रकारसें विचार करेंगे, या गफलत तजकर प्रमाद रहित हो महा भाग्य योगसें प्राप्त भइ हुइ ये सर्वोत्तम सामग्रीका यथेच्छ लाभ लेकर स्वजन्म सार्थक करेंगे. क्षणिक यशकीर्तिके लोभमें खींचाकर अक्षय सुखका लाभ न जाने देंगे, और मुग्धजनोंकों रंजन करनेमें तन मन धनकी आहूती देनेसें तो परमात्म प्रभुकों रंजन करनेमें अपना सर्वस्व अर्पण करनेके वास्ते आगेवानी करेंगे, अपने प्राणसेंभी परम पवित्र श्री परमात्माकी पवित्र आज्ञाकों अत्यंत प्रिय समझकर उनीकी खातिर आपका प्रिय प्राणोंका भी वलिदान देनेमें न डरेंगे! यतः 'आणाए धम्मो' अर्थात्.

उपेंद्रवज्रा-छंद-जिनेंद्रपूजा गुरुपर्युपास्ति, सत्त्वानुकंपा शुभ पात्र दानं;
गुणानुरागः श्रुतिरागमस्य,नृजन्मवृक्षस्य फलान्यमूनी. १

इन श्लोकमें कहे हुवे श्री जिनेंद्रजीकी पूजा आदि तमाम धर्मकृत्य परमकृपालु प्रभुकी पवित्र आज्ञापूर्वक ही सफल होते हैं. और कहा है किः—

" आणा रहियमणुठाणं, पलालपुलव्व पडिहाइ " अर्थात् परमकृपालु श्री तीर्थंकर परमात्माकी पवित्र आज्ञारहित किया हुवा—विरुद्ध अनुष्ठान धान्य रहित परालके पूले जैसा निःसार मालुम होता है—कुछ शोभता नहीं. वास्ते ज्यौं वन सकै त्यौं सावधानीके साथ परम कृपालु प्रभुजीकी परम पवित्र आज्ञाका आराधन करनेकी अवश्य दरकार करनी चाहियें.

फ.ल. लोकप्रवाहमें वहन होकर मुग्ध लोगोंका मन रंजन करनेके वास्ते आगममर्यादा छोडकर मरजी मुजव चलनेमें बहुतसी हानि होती है, और परम पवित्र आगम मर्यादा संभाळ कर—शास्त्र परतंत्र रहकर चलनेसें बहुतसा फायदा है, सो प्रमाद छोड श्री सद्गुरु चरणकमलकी सम्यक् सेवासें परम पवित्र शास्त्ररहस्य मिलनेसें मालुम हो जायगा महाराजश्री यशोविजयजीने कहा है किः— ' जन मन रंजन धर्मको मूल न एक बदाम. ' यह बहुत गहेरे रहस्य वाले वाक्यसें कितना समझनेका है ! यदि आपके आत्माका बेशक कल्यान करनाही होवै तो सद्गुरु चरणाधीन रहकर चलना. परम पवित्र वीतराग वचन अनुसारही हमेशां जिनका वर्त्तना और

कहना होता है वैसे स्वपर हितकारी महात्माओंको सद्गुरुही समझ लिजिये जो अपने झूठे स्वार्थमें अंध हो दूसरेकोंभी उलटे रस्ते चढा देते हैं वे पथ्थरकी नाव जैसे कुगुरु स्वपरकों डुबाने वाले हैं. विषयांध बनकर केवल वेष विडंबक पापात्माओंका नरक विगर दूसरा मार्ग नहीं है. स्वश्रेय साधन करनेकी इच्छा वाले सुगुणी श्रावकोंको वैसे पापी गुरुका संग सर्वथा छोड देना. अहा ! बडेही खेदकी वार्त्ता है कि—कितनेक मुग्धभाइ भगिनीयें ऐसे बहुत नीच हलके कृत्य करनेहारोंका भी संग किये करते हैं. पवित्र शास्त्र तो फरमाते है कि—' काले सांपका संग करना अच्छा;' मगर कुगुरुका संग करना अच्छा नहीं. क्योंकि काला सांप काटे तो कभी एक बेर मृत्यु होवे; मगर कुगुरुसें तो अनाचार सेवन कर या पोषनकर अनंत भवभ्रमण करना पडता है यानि बेशुमार वख्त मरनके शरन होना पडना है; वास्ते आत्मार्थी सज्जनोंकों तो हमेशां स्वपर हितकांक्षी सद्गुरुओंका ही संग करना. कदापि मरणांत कष्ट आ पडे तोभी कुगुरुओंका संग नहीं करना.

शुद्ध देव गुरु धर्म इन्होंकी पूर्ण पहिचान कर अत्यंत भक्ति भावसें उन्हीकाही सेवन करना. पवित्र शास्त्रकारोंने कहा है कि— 'धर्मार्थी जनोंकों धर्मकी परीक्षा सुवर्ण या रत्नकी तरह करनी.' परीक्षा पूर्वक ग्रहण की हुइ श्रेष्ठ वस्तुका श्रद्धासह सेवन करनेसे उनका फल मिल सकता है; और परीक्षा विगर उपरके आडंबरसेंही ग्रहण की हुइ झूठी वस्तुसें मात्र क्लेशकेही हिस्सेदार होना

पडता है. प्यारे भाइ और भगिनीयो ! याद रक्खो कि शुद्ध देव गुरु धर्मकी परीक्षामें अच्छे अच्छे जन भूल खाते हैं, वडे झौहरी चोकसी—कसोटीगर भी भूल खाते हैं, वडे पुराणी, वेदके जानने वाले, और काझी भी भूल खाते हैं. अरे वडे देव दानव और राजा महाराजाभी भूल खा जाते हैं; वास्ते कुल जीवनके सारभूत अति उपयोगी अमूल्य धर्मकी परीक्षा करनेमें गफलत नहीं करनी. तुम तुंगीआ नगरीके श्रावकोंकी वात यादीमें लाओ, और ज्यौं वन सके त्यौं तुरंत अपने अपने उचित आचार विचारमें सुदृढ हो जाओ. तुम समीजन सद्गुरुसेवामें रसिक होकर जो सद्गुरु व-गेरेकी विद्यमान सामग्री छोडकर मरजी मुजब आपमतिसें अकेले विचरिकर धन्य मानते हैं उन्होंका पापी संग छोड दो; क्यौंकि वैसे वेश विडंबकोंको पुष्टि देनेसें तुम फक्त पापकोंही पुष्टि देकर अनर्थ बढाते हो. अगाडी हो गये हुवे श्रावकोत्तम श्रावक श्राविकाओंके चरित्र याद करो ! श्री श्रेणिक राजा अभय कुमार मंत्रीश्वर तथा सुलसा श्राविकाकी तरह शुद्ध देव गुरु धर्मकी परीक्षामें चतुर वन जाओ, जिस्सें ठगाये बिगर स्वस्व उचित आचारोंमे चिरकाल सुदृढ रहकर आखिरमें श्रीसर्वज्ञ आज्ञाकों सम्यग् आराध लेके स-हेलाइसें सद्गति साध सको.

अपने अपने व्रतमें दृढता करनेके वास्ते श्रीसूर्ययशा प्रमुखके चमत्कारीक दृष्टांतोंका पुनः पुनः स्मरण करते रहो, और श्री भर हेसर बाहूवली वगैरःमें वर्णन किये गये उत्तम शीलादिक असंख्य

गुणशाली पवित्रभाइ भगिनीयोंकी तरह चिरकाल पर्यंत अखंड शीलादिके उत्तम गुणमणि रत्नोंका भंडार भरेही करो. तुमसें वनसके उतने दुःखपीत हूवे साधर्मी भाइयोंको मदद दो, और उन्होंको बहुतसी मदद देकर साधर्मीयोंका उद्धार करनेवाले संप्रतिराजा, कुमारपाल भूपाल, विमलशाह वस्तुपाल तेजपाल और जगडुशाह वगैरः पूर्वप्रभाविक परमार्हत श्रावकोंके उत्तम सुकृत्योंकी अनुमोदना करकें आपवडाइ किये विगर हमेशां आत्मलघुताकोंही विचारमें लिये करो. हमेशां याद रख्खोके परनिंदा-आत्मप्रशंसा करनेहारा मनुष्य अपने किये हुवे सुकृतका फल गुमा बैठताहै, और आत्मलघुता शोचनेहारा सत्पुरुष हमेशां-दिनप्रतिदिन गुणानुरागी होनेसें गुणाधिकता पाताही जाताहै. कदाचित् कुछभी सुकृत करनेमें या किये वाद तुमकों अपना उत्कर्ष-आपवडाइ हो आवे तो उसकों दूरकरनेके वास्ते अच्छा और सुगम मार्ग यही हैकि पूर्वपुरुष रत्नोंके चारित्र स्हामने नजर करनी और ' जनमनरंजन धर्मकामूल न एक वादाम '-वस यंही वातकों हरदम याद किये करनी. पवित्र धर्ममार्गमें अन्य जीवोंकों जोड देनेके वास्ते उनका चित्तरंजनमें तो गुणही है यौं शास्त्रकारोंका कथन है. चाहे वैसा उत्कृष्ट धर्म कोइभी श्रावक पालन करता होवै और उस्से कभी उसके दिलमें दूसरे श्रावकोंकी अपेक्षासें अपनेमे अधिकताका भास नजर आवै. तोभी उत्तम महाव्रतोंकों कपट रहित अखंड पालनेहारे उत्तम मुनी महाराजाओंकों देखकर उनका मान दूर हो जाता है.

यहां पर प्यारे भ्राता और भगिनीयोंको आग्रहके साथ कहनेको हैकि जिस प्रकार अपना कल्यान होवै अगर अपने साधर्मीयोंके श्रेय साधनद्वारा पवित्र शासनकी उन्नति-प्रभावना होवै उसप्रकार अहर्निश यत्न करना, यही ए अति अमूल्य मनुष्यजन्मादि दुर्लभ सामग्री पानेका उत्तमोत्तम फल है. श्रावक धर्मकृत्योंका उंहांपर बहुत संक्षेपसें बयान करनेमें आया है, क्योंकि बहुतकरके जीवोंका वडाहिस्सा फक्त संक्षेपरुचीवंत मालुम होता है. विशेष रुचिवंत बाइ भाइयोंको सद्गुरुकी सम्यग् उपासन करके विशिष्टशास्त्र रहस्य मिलालेनेकी दरकार रखनी दुरस्त है. पवित्र शास्त्ररहस्य मिला लेकर जिस प्रकार तुरंत आत्मउपकार और परोपकार कर जगजयवंत श्री जिनशासनकी उन्नति होवैं उसप्रकार यत्नवंत रहना. जो अपूर्वशास्त्रहरस्य अपनको प्राप्त हुवा होय वो दूसरे योग्य जीवोंको समझादेकर कृतार्थ होना, जिसतरह जगत्वर्ति सभी जीव परमपवित्र श्री वीतराग शासनके रागी होवै उसतरह परोपकार दृष्टिसें हमेशां चलन रखना, जिस्सें स्वपर श्रेय साधनद्वारा श्री जैनशासनकी प्रभावना उत्कृष्ट प्रकारकी होने पावै.

विविध विषय संग्रह.

जिनमंदिरमें संभालने लायक दशत्रिकोंके स्वरूपका बयान.

१ निस्सिही त्रिक-तीन वख्त निस्सिही, २ प्रदक्षिणा त्रिक,

३ प्रणाम त्रिक, ४ पूजात्रिक, ५ अवस्थात्रिक; ६ त्रिदिशि निरीक्षण विरति त्रिक, ७ पादभूमि प्रमार्जनत्रिक, ८ वर्णादित्रिक, ९ मुद्रात्रिक, और १० प्रणिधानत्रिक यह दशत्रिकका बाल जीवोंके वास्ते संक्षेपसें विवेचन करेंगे. उसमें पहिले निस्सिही त्रिकका अर्थ यह है कि–तीन वख्त (मंदिरमें दाखिल होतेही) निस्सिही कहना. जो लोग इसका परमार्थ नही समझते है, वो लोग शुक पाठकी तरह तीन वख्त बोल देते है; लेकिन किस लिये तीन वख्त कही जाती है उसकी खबर नही होती है; वास्ते उनकों उसकी मतलब समझानेकाही हमारा ये उद्देश है. सो ध्यानमे लेकर हरएक त्रिकको परमार्थ समझ, समझाकर अपनी फर्ज विचार श्रम सफल करोगे.

१ निस्सिहीत्रिक–पहिले श्रीजिनमंदिरके कोटके दरवाजेमें दाखिल होतेही अपने घर संबंधी व्यापारका त्याग करनेरुप पहिली निस्सिही कहनी. प्रदक्षिणा फिरकर मालुम होती हुइ आशातना दूर कर मध्य बीचले दरवाजेमें पैठतेही श्री जिनमंदिर संबंधी विकल्पकों छोड देनेरुप दूसरी निस्सिही कहना. बाद विधिवत् स्वद्रव्य (चावल–फल नैवेद्यादि)सें श्रीजिनपूजा करके द्रव्य पूजा संबंधी विकल्प तज देनेरुप तीसरी निस्सिही कहकर श्री जिनेश्वर प्रभुकी स्तुतिके लिये चैत्यवंदन विधि संभालनी. स्थिरता योगसें इरियावही पूर्वक भावकी विशुद्धि होवै वैसे प्रभुजीके सद्भूत गुणोंका किर्त्तन करना.

२ प्रदक्षिणात्रिक–प्रभुजीकी दक्षिण बाजुसें भवभ्रमणा मिटानेकी बुद्धि–इरादेसें या ज्ञान दर्शन–चारित्र पानेकी सुबुद्धिसें श्री

जिनमंदिरकी भमतीमें यतना पूर्वक मार्गमें कुछ भी—किसी तरहकी आशातना जैसा मालुम होवै वो आप खुद दूर कर, कराकें तीन दफै उपयोग सह फिरना यानि तीन प्रदक्षिणा देनी.

३ प्रणामत्रिक—चाहे उतने दूरसें श्री जिनेंद्रजीके जब ‘ दर्शन’ होने लगै तब तुरंत आदर पूर्वक दोनु हाथ जोडकर ‘अंजलिबद्ध’ नमस्कार करना, सो प्रथम प्रणाम. बाद प्रदक्षिणादि देकर बीचले द्वारमें आकर प्रभु समीप अर्द्ध अंग झुकानेरुप ‘अर्धावनत’ करना सो दूसरा प्रणाम. और अंतमें यथा अवसर प्रभुजीकी द्रव्य पूजा कर चैत्यवंदनके पेस्तर पांच अंग यानि दोनु हाथ, दो जानु और मस्तक ये पांच अंग संपूर्ण भूमिके साथ लगाकर ‘पंचांग प्रणाम’ तीन दफै भूमिको पूंज प्रमार्जकर करना सो तीसरा प्रणाम.

४ पूजात्रिक यथा अवसर फजर, दुपहर और साम, ये तीन वख्तमें प्रभुकी यथोचित उत्तम द्रव्योंसें पूजा करनी गृहस्थोंको कही है. उसमें प्रातःकालमें वस्त्रादिककी शुद्धिसें वासक्षेपकी पूजा, मध्या-न्हमें सुगंधी जल, चंदन, पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, फल और नैवेद्य द्वारा अष्ट प्रकारी पूजा, और संध्यामें धूप दीपादिकसें पूजा कर-नेका अधिकार है; उस मुजब भाविक सद्गृहस्थ यथाविधि प्रभुभ-क्ति करके स्वद्रव्यकी सफलता ले सकै. जो जो द्रव्य यानि शुद्ध जल—चंदन—फल वगैरः प्रभुके अंगपर चडा सकै वो वो द्रव्यसें ‘अंगपूजा’ करनी सो प्रथम पूजा. जो जो द्रव्य यानि सुगंधी धूप, दीप अखंड चावल, फल, नैवेद्य वगैरः प्रभुकी आगे ढोक—रखकर

भावना भाइ जाय, वो वो द्रव्योंसें 'अग्रपूजा' करनेरुप दुसरी पूजा. और समस्त द्रव्यपूजा किये बाद प्रभुके सत्यगुणोंकी अंतःकरणसें वैसेही उत्तम गुण पानेके लिये स्तुति करनी सो 'भाव पूजा' समझनी. बराबर लक्ष रखकर यतना पूर्वक शास्त्राज्ञा मुजब परम पूज्य प्रभुकी उक्त तीन प्रकारसें अपने अपने अधिकार गुंजास मुजब पूजा करनेवाला आप खुदही परमपदको पाता है. आप परमात्मारुप हूवे बाद पूजाकी जरुरत नहीं; मगर वहां तक तो यथासंभव परमोपकारी पूर्ण आस्थासें पूजा करनेकी जरुरतही है.

५ अवस्थात्रिक—परम कृपालु प्रभुकी छद्मस्थ, केवली और सिद्ध औसें तीन अवस्था अलग अलग जगह भावे; सो इसतरहकि —प्रभुको स्नात्र अभिषेक न्हवण, अर्चन वगैरः की वख्त 'छद्मस्थ,' अष्ट प्रातिहार्यके देखावसें 'केवली' और पर्यंकासन—पद्मासन या काउस्सग्ग मुद्रासें स्थित प्रभुकी 'सिद्ध' अवस्था है.

६ त्रिदिशि निरीक्षण विरतित्रिक—परमात्म प्रभुजीकी परम भक्तिमें रसिक जनोंको प्रभुके सन्मुखही आपकी नजर रख—कायम करनी उस सिवायकी तीनु दिशाओंमें नजर फिरानेका त्याग करना.

७ पादभूमि प्रमार्जनत्रिक गृहस्थको प्रभुकी द्रव्यपूजा किये बाद भावपूजा—चैत्यवंदन समय जयणा पूर्वक उत्तरासंग या वस्त्रांचलद्वारा तीन वख्त पंचांग प्रणाम करनेके वख्त भूमि वगैरःका जीवरक्षाके वास्ते प्रमार्जन करना. मुनि वगैरः भावपूजाके अधिका-

री वर्गकों रजोहरण–ओघा वगैरःसें तिनदफै प्रमार्जन पूर्वक प्रभु-कों प्रणाम कर चैत्यवंदन करना.

८ वर्णादिक त्रिक–श्री जिनेश्वरजीके पास उत्कृष्ट–मध्यम या जघन्य (अनुक्रमसें आठ, चार या एक स्तुति–थोय–थुइसें) चै-त्यवंदन करने वख्त वो वो सूत्राक्षर, सूत्रार्थ इन दोनुमें बराबर लक्ष रखनेके साथ श्री जिनप्रतिमाजीका दृढालंबन रखना: सबबकि उ-पयोग शुन्यतासें की हुइ करणी सफल न होवै.

९ मुद्रात्रिक चैत्यवंदन करने के वख्त नमुथ्थुणं पढते तक योगमुद्रा धारन कर रखनी. काउस्सग्ग ध्यान के वख्त जिनमुद्रा करनी, और प्रणिधानत्रिक यानि जावंति चेइआइं, जावंतकेवि-साहु और जयवियराय पढने के वख्त 'मुक्तासुक्तिमुद्रा' धारन करनी. परस्पर कमलकी कलीकी तरह दोनू हाथद्वारा दशों अंगूलियोंका पेचकर अपने पेट के उपर दोनू हाथोंकी कोंनी स्थापन करनेसें 'योगमुद्रा' हुइ गिनी जाती है. चार अंगुल अगाडी के भागमें और चार अंगुलसें कुछ कम पिछाडे के भागमें पाँव फैलाये हुवे रखकर काउस्सग करना सो 'जिनमुद्रा' हुइ समझनी. और एक दूसरी अं-गुलीओंकों बराबर जोडदेकर दोनू हाथ बराबर पोकल रखनेमें आवै और दोनू हाथ कपालकों लग रखनेमें आवै (कितनेक आचार्यों के मतसें कपालकों नही भी लगानेमें आवे) यों करनेसें दोनू सीप मिली हुइ होने जैसा हाथका आकार होनेसे उसें मुक्ता-सुक्तिमुद्रा कही जाती है.

१० प्रणिधानत्रिक—आगे कहदिये मुजब जावंतिचे०. जावंत के०.—जयवियराय ये तीन सूत्रपाठकों प्रणिधानत्रिक कहते हैं. या मन-वचन-तनके योगकी एकाग्रता भी 'प्रणिधानत्रिक' कहा जाता है.

उपर मुजब संक्षेपसें दशत्रिकका खुलासा पूरा हुवा, उन उपरांत कितनीक उपयोगी और प्रसंगोपात बाबतोंपर भक्तिरसिककों लक्ष देनेकी जरुरत है. आजकल प्राणी प्रमादके वश होकर पवित्र प्रभुपूजादिक नित्यनियमोंमें भी बहुतकरकें अविधिदोष सेवन करते हुवे नजर आते हैं. सो कुछ नीचेकी बाबत परसें समझनेमें आयगा, और वो समझकर स्वपरके सुधारेके वास्ते बन सके उतनी खंत रखनेमें आयगी.

आगेके वख्तमें जिस तरह शास्त्रकी मर्यादासें जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, प्रतिष्ठा-(सुविहित साधुके पाससें विधिवत् वासक्षेपादिक द्वारा) पूजा भक्ति वगैरः शास्त्र नीति मुजब चलनेकी दरकार वाले सुश्रावक करते थे, उसी तरह—वैसे आदर—मान पूर्वक आज कल भाग्यसेंही होता हुवा नजर आता हैं. हां, शास्त्रविधिका अनादर होता हुवा तो नजर आता है. प्रभुभक्तिमें वपराते हुवे द्रव्योंकी जयणापूर्वक करनी चाहिये सो शुद्धिकी वे दरकारी रखनेमें आती है. बहुत करकें गाडरीए प्रवाहकी तरह संमूर्छिम अनुष्ठान क्रिया करनेमें आति हुइ मालुम होती है.

ऐसे विषमकालमें देवद्रव्य वगैरः संभालनेमें जैसी खंत—फिक्र रखनी चाहियें वैसी रख्खी जाती मालुम नहीं होती. क्वचित् उस-

का वेदरकारीसें लोप होता हुवा नजर आता है, क्वचित् चुराया जाता है, क्वचित् हजमकिया जाता है. प्रभुकी पवित्र भक्तिका कार्य बहुतकरके वेठकी तरह बजानेमें आता है. दीपकमें पतंगीए वगैरः जंतु पडकर मरते हैं उनकी प्रायः संभाल लेनेमें नहीं आती है. जिनमंदिर बहुत रात जाने तक भी खुल्ले रख्खे जाते हैं—प्रायः अवसरका काम अवसर पर करनेमें नहीं आता है; इतनाही नहीं मगर अपनी भूल सुधारनेको कभी कोइ प्रेरणा करै तो उसकी तर्फ नाराजी बतलाकर आप जो करता है सोही ठीक है ऐसा स्थापन कर कितनेक विषको छौंकाते हैं, ये सब सचमुच अज्ञानकाही प्रभाव हैं. अपने पवित्र शासनानुरागी वीरपुत्रोको अब ज्यादे जागृत होनेकी जरूरत है. अपनी इतनी पतित स्थिति ऐसे अनेक अविधि दोषोंकाही परिणाम मालुम होता है. जहां तक अज्ञान अविवेक–मिथ्याभिमान दूर न होवेंगे वहांतक अपनी कोमकी स्थिति सुधरनी बहुतही मुश्किल है. सुविवेक धारन किये बिगर अपन अपने उपकारी परमात्माकी पवित्राज्ञाको विधिवत् नहीं पालन कर सकेंगे, और उस बिगर अपन धर्मकरणी करते हुवे परभी यथार्थ लाभ न मिला सकेंगे. ऐसा समझकर मेरे प्यारे वीरपुत्र पुत्रियें ! तुम जागृत हो जाओ ! प्रमादरुपी महाशत्रुका पल्ला छोड दो ! और दिलमें अच्छी उर्मीयें लाकर परमकृपालु प्रभुकी पवित्र आज्ञाको बरोबर पालनेके लिये तत्पर हो जाओ. तुम मनमें धारनकरो तो कर सको वैसा है; क्यौं कि तुम वीरपुत्र पुत्री हो; तथापि

जैसें मूलसेंही बकरोंके जुथ्थमें रहनेसें सिंहकिशोर भी आपका स्वरुप भूल जावै, वैसे अज्ञान—अविवेक, मिथ्या व्हेम कायरता वगैरः दोषोंके समूहमें संमीलन हुवे रहनेसें तुमारा भान भी ठिकानेपर नहीं रह सका है, सो अब ठिकानेपर आ जाय ऐसी श्री वीतराग देवजीकों हर हमेशां प्रार्थना है—सो सफल हो! स्वपरका अंतःकरणसें श्रेयचाहनेवाले हरएक वीर पुत्रकों जिस प्रकार श्री जैनशासनका उदय होवै उस प्रकार कटिबद्ध होकर उद्यम करना उचित है. पुरुषार्थकों कुछभी असाध्य नहीं है; वास्ते ऐसे उत्तम पुरुषार्थकाही अपन सबको शरण हो ! !

श्री देवगुरुवंदनादिक समय संभालनेयोग्य पंचाभिगमादि.

१ सचित्त द्रव्यका त्याग—आपके उपयोगमें लेने लायक सचित्त द्रव्य फल फूल वगैरःका त्याग करना.

२ अचित्त द्रव्यका स्विकार-श्री देव गुरु वंदन पूजन लायक वस्त्रालंकार धारन करना.

३ मनकी एकाग्रता करनी—अन्य प्रकारकें संकल्प विकल्प छोडकर उक्त कार्यमेंही चित्तकों पिरादेना.

४ एक साडी उत्तरासंग—अखंडित नफटा तूटा हो वैसा उत्तरासंग वंदनके वख्त अवश्य धारन करना.

वंदनके वख्त वस्त्रांचलसें भूमि प्रमार्जन और स्तुति समयमें मुंहका उपयोग रखना.

५ दर्शन होतेंही मस्तकके साथ अंजली लगानी–चाहे उतने दूरसें देवगुरु के दर्शन होवै कि तुरंत दोनु हाथ जोडकर मस्तकसें लगा लेना.

यह उपर कहे हुवे पंचाभिगम सर्वे साधारण है.

राजा–चक्रवर्ती वगैरःकों तो दूसरी तरहके पांच अभिगम भी संभालने पडते हैं, सो नीचे मुजब हैः–

जिनमंदिर या समवसरणमें दाखिल होतेही, अगर गुरुमहाराज के निवासकी जगहमें वंदनार्थ दाखिल होतेही छत्र–छत्ता, चमर–पंखा, मुकुट, तलवार लकडी वगैरः अस्त्रशस्त्र और जूते–बूट चांखडी–ये पांच राज्यचिन्ह वहारसें ही छोडकर वहुत मानपूर्वक श्री देवगुरुकी यथाशक्ति भक्ति करै. इसके उपरांत निस्सिही वगैरः दशत्रिक, तथा जिनभुवनमें १० वडी आशातना त्यागनेका और गुरुमहाराजकी ३३ आशातनायें दूर करनेका स्वरुप सुज्ञजनोनें समझकर शुद्ध देवगुरुका यथाविधि आराधन करनेमें वन सकै उतनी दरकार करनी; परंतु वेदरकार न करनी.

श्री जिनेश्वरके मंदिरको कोटकी हदमें दश वडी आशातनाये यत्नसें दूर करनी चाहिये.

१ तांबूल न खाना–पान सुपारी वगैरः श्री जिनद्वार ले जाकर न खाना.

२ जलपान—पानी नहीं पीना.

३ भोजन—अन्न वगैरः कुछभी न जीमना—न खाना.

४ उपानह—जूते न पहनना.

५ मैथुन—विषयक्रिडा—स्त्री पुरुषका विषयसंगम न करना.

६ शयन—न सो जाना और न निंद लेनी.

७ निष्ठीवन—थुंकना नहीं—मुंहका मल—कफ—वलगम वगैरः न डालना.

८ लघुनीति—पेशाब न करना.

९ वडीनीति—दिशा जंगल न जाना.

१० द्यूत—जुगार न खेलना.

श्री गुरुमहाराज संबंधी ३३ आशातनाये नीचे लिखे मुजब वर्जित कर देनेकी जरुर दरकार रखनी.

३ गुरुके आगे पहिले चलना नहीं १, खडा रहना नहीं २, और वैठना नहीं ३, क्यौं आगे और पहिले वैठ जानेसे अवज्ञा होती है.

६ गुरुजी के नजदीक न चलना, न खडा रहना, न वैठना चाहियें.

९ गुरु के दोनु तर्फ—वरावर एक लाइनमें न चलना, न खडा रहना और न वैठना चाहियें.

१० आचमन—गुरुजी के पेस्तर पानीसें मुँह वगैरः शुद्ध करके

मर्यादा छोडकर खडा न हो जाना चाहियें.

११ बहिर्भूमिसें गुरु संग संग आये हुवे परभी गमणागमणे यानि इरीयावही गुरुजी के पहिले ही न आलोयनी चाहियें.

१२ गुरुजीने कुछ पूंछा तो उसका उत्तर न सुनता हो उनकी तरह पीछा उत्तर ही न देवें, वैसा न करना चाहियें.

१३ कोइ आये हुवे श्रावकादिकेकों अपनी तर्फ प्यारवंत बनाने के लिये गुरुजीके पेस्तरही उन्होंकी साथ आलाप संलाप न करना चाहियें.

१४ भिक्षा लाये बाद अन्य शिष्यादिकके पास प्रथम आलोय कर पीछे गुरुजीके पास जा कर न ओलोयना चाहिये.

१५ लाइहुइ भिक्षा पहिले दूसरे साधुओंको बताये बाद गुरुमहाराजकों न बतलानी चाहियें.

१६ भिक्षा लाये बाद पहिले दूसरे साधुओंकों निमंत्रण किये बाद गुरुजीकों निमंत्रण न करना चाहिये. लेकीन पहिला ही निमंत्रण करना.

१७ भिक्षा लाये बाद पेस्तर गुरुजीकी वृद्धादिककी आज्ञा बिगरही मनमें आवै उसकों मरजी मुजब बापरनेकों न देना चाहियें.

१८ लाइ हुइ भिक्षामेंसें मनपसंद–मिष्ट आहार आपकोंही न खा जाना चाहिये.

१९ गुरुजीने बोलाया हुवे तो भी विलंब करकें बोलना या यटित–विनय पूर्वक जवाब नहि देना, यानि धीठाइ या उपयोग रहित अैसा वर्त्तन रखना न चाहिये.

२० गुरुजी बुलावै तब जाने कारखाये जैसे कठोरवचन न बोलना.

२१ गुरुजी बुलावै तब अपने आसन पर बैठे बैठे ही उत्तर न देना यानि तुरंत खडे होकर बहु मानपूर्वक गुरुजीके नजदीक आकर नम्रतासें योग्य जवाब देना चाहिये, मगर उन्मत्तकी तरह मोजमें आवै जैसा जवाब न देना.

२२ गुरुजी पूछे तब 'क्या है' ऐसी असभ्यतासें उत्तर न देना.

२३ 'वो काम तुमही कर लो' इत्यादि विनयरहित गुरुजीके स्हामने न बोलने चाहियें.

२४ गुरुजी कुछ हितवचनसें धर्मकार्यमें प्रेरणा करै, तब उलटा 'हमकोंही देखे है.' ऐसा बोलकर गुरुजीकी तर्जना न करनी चाहियें.

२५ गुरुजीकी प्रशंसासें नाखुस होकर उलटा नाराज होवै गुरुगुणकी प्रशंसा न करै-वैसा न करना चाहिये.

२६ गुरुजी कथा कहते होवै, तब 'तुमकों ये अर्थ याद नहीं है ? ऐसा अर्थ नहीं है'-ऐसा न बोलना चाहियें.

२७ गुरुजी कथा कहते होवै तब बीचमें श्रावकोंकों अपनी सुज्ञता दिखानेके वास्ते 'मैं तुमकों पीछे खुलासा बतलाउंगा.' ऐसा कहकर धर्मकथाका छेद न करना चाहिये.

२८ चलती हुइ कथामें 'पोरसीका वख्त या आहारका वख्त हुवा है' ऐसा बतलाकर पर्षदाका भंग न करना चाहिये.

२९ कथा हो रहे बाद शिष्यनें अपनी सुज्ञता दिखानेके वास्ते पर्षदासमक्ष वही कथा सविस्तर न करनी चाहियें.

३० गुरुजीकी शय्या—संथारादिककों अपने पाँवसें संघट्ट न करना और यदि हो गया होवै तो खमा लेना चाहिये.

३२ गुरुजीसें ऊंचे आसनं पर न वैठना, या अधिक आसन पर न वैठना, गुरुजीसें ज्यादा कीमतवाले वस्त्र उपयोगमें न लेने चाहियें.

३१ गुरुजीके संथारेपर असभ्य रीतिसें वैठना सोना लोटना न चाहियें.

३३ गुरुजीके समान आसन पर वैठना अगर गुरुजीके जैसे ही वस्त्रादिकका उपयोग करना न चाहिये.

ये बताइ गइ संक्षेपयुक्त तेत्तीस आशातनाओंकों दूर करके गुरुजीका बहुमान समालता हुवा शिष्य विधिपक्ष—शास्त्रमार्गका आराधन कर अनेक भवसंचित कर्मरुपी धूलको खपवाकर जरूर आत्मकल्याण कर सकै. विनय यही जिनशासनका मूल है, वास्ते विधिपूर्वक गुरुजीका विनय करना. विनय विगर विद्या, विद्या विगर विज्ञान, विज्ञान विगर विवेक समकित, समकित विगर चारित्र और चारित्रविगर मुक्ति मिलती ही नहीं, उस वास्ते समस्त गुणोंका मूल सबव—वशीकरणभूत विनयगुणको ही विशेष सेवन करना चाहियें, जिस्सें सर्व गुण सहजहीमें आ मिलैं.

श्री देवगुरुका अवग्रह समालनेकी नीति मर्यादा नीचे मुजब है:

विशाल जिनमंदिरमें जगहकी विशालतासें उत्कृष्टपने ६० हाथका अवग्रह—अंतर संभालकर सुविवेकीजनोंकों देववंदनादिक उचित क्रिया करनी चाहिये. विशाल जगह न होवै तो जिनभुवनमें चैत्यवंदनादिक करनेमें जैसी सगवड योगवाइ होवै वैसे अंतरकी मर्यादा समालनेकी दरकार रखनी चाहियें. आखिर जघन्यतासे ९ हाथका अंतर अवश्य अवकाश योगसें समाल लेना. कदाचित् भक्तिचैत्य यानि गृहमंदिरमें उतनी योगवाइ न होवै तो उस्सेंभी कम करतेहुवे जितना बनसके उतना अंतर जरुर रखना. गुरुजीकों वंदनादिक करनेमें भी अंतर अधिकारपरत्वसें जरुर समालना चाहियें. अवग्रह समालनेमें आशातना हानि, योग्य आदर—बहुमान संभालनेके उपरांत अनेक लाभ समाये हुवे हैं. सुश्रावककों गुरुजीका ३॥ हाथका और सुश्राविकाकों १३ हाथका उत्कृष्ट अंतर समालना. खास अगत्यवाले सबबसें—आलोयणादि लेनेमें तो श्रावककों ३॥ हाथ अंदरका और श्राविकाकों ३॥ हाथ तर्कमें गुरुजीकी रजा मिलाकर प्रवेश करना कल्पता है; परंतु गुरुजीके हुकमविगर उक्त मर्यादाका बन सकै वहांतक भंग न करना. जगह विशाल न होवै तब तो उपर कहा गया न्याय ही समझ लेना. तोभी स्त्रीवर्गकों तो ३॥ हाथकी अंदर तिलभरभी आना

नहीं कल्पता है. जैसे साधुके संबंधमें श्रावक श्राविकाकों उचित अंतर समालनेके लिये फरमाया है उसी मुजब साध्वीआश्री सुविवेकी श्राविका या श्रावकजनकों जरुर वाजबी अंतर समालना. यानि श्राविकाकों साध्वीजीका अंतर ३॥ हाथका, और श्रावककों उत्कृष्ट १३ हाथ और अपवादसें जघन्य ३॥ हाथका अंतर जरुर समालना चाहियें. ऐसा श्रीजिनशासनआज्ञा मुजब उचित मर्यादा समालनेसें चतुर्विध संघको हितरुप होसकता है. परंतु उचित मर्यादा उल्लंघन करके आपमतिसें चलनेसें तमाम जैनवर्गकों अहित होनेका संभव है. वास्ते सुविवेकीजनोंकों शास्त्रआज्ञाका आदर करनेमें जरुर दरकार रखनी चाहियें, जिससें स्वपर–उभयका हित होवै.

पवित्र हेतु युत श्री जिनेश्वरजीकी अष्टप्रकारी पूजा

१ श्री जिनेश्वरजीकों जल–अभिषेक करनेमें जैसें सुरेंद्र हर्ष भरसें हर्षदीवाने भयेहुवे परभी अपनेही अंतरमलकों दूर करके आपकों धन्य–कृत पुण्य गिनते है, और आपकी विशाल देवऋद्धिकों तृणवत् मानते है, तैसें भव्य श्रावक उत्तम जलद्वारा प्रभुजीका अभिषेक करनेके वख्त अपने अंतरमलकोंही धो डालकर अपने आत्माकों धन्य मानकर सुकृतका संचय कर लिया करै.

२ अभिषेक कर लिये बाद अत्यंत बारीक और सुकोमल-मुला-यमदार वस्त्रसें श्री जिनजीके अंगोंको पूंछकर अत्यंत शीतल चंद-नादि द्रव्यसें प्रभुजीके तमाम अंग विलेपन करनेंके वख्त अपने अनादिके कषाय तापकी शांति कर लेवै. देवेंद्रभी बावनाचंदना-दिक उत्तम द्रव्योंसें प्रभुकों विलेपन करते है.

३ शीतल द्रव्यसें प्रभुकों विलेपन किये बाद नौ अंगमें केसर कस्तूरी-बरास वगैरः सुगंधी वस्तुसें तिलक करकें विविध प्रकारसें मनोहर अंगरचना-आंगी रचीकें विचित्रवर्णवाले सुगंधी, ताजे, खिलेहुवे, अखंड पुष्प उत्तम बरतनमें विधि मुजब रखकर श्री जिनेंद्रजीकों पवित्र फूल अर्पण करनेके वख्त अपने ही मनकी वैसीही उत्तम प्रसन्नता प्राप्त करलेवै. सुमनस-पंडित या देवजनकी तरहे सुमनस यानि पुष्पसें परम पवित्र परमात्माकों परम प्रमोद-पूर्वक पूजनेसें पूजक-श्रावक श्राविकाअें अवश्य सौमनस्य-मनकी प्रसन्नताकों पावै. जैसें पुष्प आदिक जीवोंकों किलामना न होवै, वैसें यतनापूर्वक पुष्पादिक द्रव्योंसें श्री जिनार्चना करकें अवश्य स्वपरका हित चाहै. कच्ची तोडडालीहुइ पुष्पकलि या पुष्पकी पांखडीयें छेदकर प्रभुजीकों न चढानी चाहियें. पुष्पादिकके जीवोंकों नाहक किलामना-तकलीफ करनेसें श्री जिनाज्ञाकी वि-राधना होती है. वास्ते वो लक्षमें रखकर उत्तम पुष्पादि द्वारा प्रभुकी पूजा करनेसें उत्तम श्रावक श्राविकाअे आप खुदही देवा-दिकोंको भी पूजनेयोग्य होते है.

(यह तीन प्रकार अंगपूजाके संबंधमें समझ लिजिये अब अग्रपूजाके प्रकार कहतेहैं.)

४ धूप—सुगंधी महकदार कृष्णागर दशांगादिक उत्तम द्रव्योंसें बनाये हुवे धूपसें आत्माकी कुवासना दूर कर सुवासना धारन करनेके वास्ते आत्मार्थिजनोंको भावना करनी चाहियें. जैसें धूपोत्क्षेप करनेसें उसकी धूम्रघटा उंची गति करकें आकाश प्रदेशको सुवासित करती है, तैसें उत्तम लक्षसें जिनपूजार्थ उत्तम द्रव्य व्ययसें आत्मभोग (Seif-Sacrifice) करनेसें आत्मप्रदेश सुवासित धर्मवासित होता हैं. द्रव्य सो भावका निमित्तही हैं.

५ दीप—उत्तम सुवासनावाले घीसें जगदीपक श्रीजिनराजजीके समीपमें द्रव्यदीपक धरकर लोका लोकप्रकाशक पंचमज्ञान—भावदीपककोही भाविकजन भगवंतजीके पास प्रार्थना करै. कर्मधूलको दूर करनेके लिये निराजना—आरती और समस्त मंगलको मिलानेके लिये मंगलदीप प्रकटके पवित्र आशय इरादेसें पंचमज्ञान लक्ष्मीको सहजहीमें प्रकट कर सकै—वैसे दीपकको विधिपूर्वक प्रकट कर ऐसा विचार लेना कि अपना अनादिका अंधकार हमेशांके वास्ते दूर हो जाओ !

६ अक्षत—अखंड चावलोंसें अष्टमंगल स्वस्तिक नंदावर्त्तादि आलेखकें प्रभुजीके पास अखंड सुखकी या उसके साधनभूत ज्ञान दर्शन—चारित्रकी प्रार्थना करनी चाहियें. प्रभुजीके आगे रखने

लायक वस्तु यानि चावल वगैरः जयणापूर्वक शुद्ध किये हुवेही चाहियें.

७ फल—अनेक प्रकारकें उत्तम फलोंमेंसें रससहित—पके हुवे नारियल आम वगैरः फल प्रभुजीके आगे धरकर परमोत्कृष्ट मोक्ष फलकीही प्रार्थना करनी; क्योंकि फलद्वाराही फल मिलसकता है. इस न्यायसें वैसे उत्तम देवादिकके दर्शन करनेके समय अवश्य उत्तम फल समर्पण मोक्षकी अभिलाषापूर्वक करनाही दुरस्त है. लौकिकमेंभी राजा वगैरःकी भेटपूर्वक भेट लेनेकी रीति प्रसिद्ध है. योग्य आदरपूर्वक उचित कार्य साधनेहारा सदा सुखीही होता है.

८ नैवेद्य—आपकों अत्यंत अभिष्ट मनहर होवै वैसा मोदकादिक नैवेद्य विशाल और पवित्र वरतनमें भरकेर प्रभुके आगे रखकें आत्मार्थीजीव आपका अणाहारी गुण सहजही प्रकट करनेके वास्ते प्रभुकी प्रार्थना करै—यानि ऐसी भावना लानी चाहियें कि—इस जीवनें अज्ञान और अविवेकके वश होकर अनेक वख्त अनेक रसका स्वाद लिया है तोभी लालचु जीव अभीतक तृप्तिही नहीं पाया. अव परमात्मा प्रभुके पसायसें इस आत्माका असंतोष दोष दूर हो जाओ। और सर्वांशसें संतोषगुण प्रकटभावकों पाओं !!

इस तरह गुंजास मुजव स्वद्रव्यसें श्री जिनेश्वरजीकी अर्चा करकें स्थिरचित्तसें प्रभुकी ही सन्मुख दृष्टि स्थापनकर देववंदन (जघन्य—मध्यम—उत्कृष्ट चैत्यवंदन) रुप भावपूजा करनेके वास्ते

आत्मार्थीजीवकों तत्पर हर्ष चित्तवंत हो रहना. मधुरशब्द पंक्ति वाले स्तोत्र स्तवनादिकसें श्री जिनराजके गुण-गान करना. श्री जिनजीके सद्भूतगुण गानेसें वैसे ही उत्तम गुण अपने आत्मामें अंगांगीभावसें (सर्वांशसें) आवे वैसे उपयोग-लक्षपूर्वक दृढ प्रयत्न सेवन करतेही रहना. प्रभुतर्फके अकृत्रिम (सहज अभ्यासबलसें प्रकट भये हुवे) भक्तिरागसें आत्माकों अपूर्व चित्त-शांति (समाधि) रूप अद्भुत लाभ होता है. जब संसारकी उपाधियोंसे चित्त विराम पाया होवै तभी ही वैसे बुरे संकल्प विकल्पका अभावसें, और शुद्ध अध्यवसायके योगसें आत्मा क्षणभर चित्त समाधिरूपशांतिको अनुभव कर सकता है. अन्यथा वैसा अनुभव नही कर सकता है. ऐसे निरंतर अभ्याससें आत्माकों आखिर अपूर्व समाधिलाभ प्राप्त होता है, उससें वो अनुपम रसमें निमग्न होता है. आत्माकी वैसी स्थितिका साक्षात् अनुभव हुवे विगर भान-स्मृति नही हो सकै. जिस धन्यपुरुषकों ऐसा अपूर्व आत्मानुभव होता है, वही इस दुनियांके विषयजंजालमें एक लव मात्र भी नही फँस जाता है. ऐसे अकृत्रिम-सहज-आत्मसुखका जिनकों साक्षात् अनुभव हुवा होवै वे सहज समाधिसुखके विरोधी विषयसुखमें किस लिये रंजित होवै? क्यों लुब्ध होवै? विषय रसमें लुब्ध होनेहारेकों, आत्माके सहजसमाधिसुखका अनुभव किस तरहसें होवै? आत्मअनुभवी-सहज समाधिरूप समतारम्में निमग्न होनेहारे सहजानंदी पुरुष राजहंसके

जैसी गति धारण करते हैं, और आत्मअनुभवी विविध विषयरसमें मशगुल होनेहारे पुद्‌गलानंदी प्राणीयें तो कुत्तेकी गतिकों धारन करते हैं. विषयानंदी जन विषयसुखकों ही सार समझकर उसीमें ही रचे पचे हुवे रहते है; मगर जिनद्वारा अकृत्रिम–सहज–अतींद्रिय आत्मसुखकी प्राप्ति होवै वैसी वीतराग प्रभुकी भक्ति उपासना नही करसकते है, उससें वैसे शुभ साधनोंके सिवाय उन वराकोंकों अपूर्व भक्तिरस चख्खे विगर चित्त शांतिरुप आत्मसमाधिका अनुभव नही हो सकता है; वास्ते परमात्म प्रभुजीकी तर्फ प्राणियोंका अपूर्व प्रेम प्रसरो–फैलो यही उमेद रखता हुं. इत्यलम्.

श्री तीर्थयात्रा दिग्‌दर्शन.

जो यह भीषण भवोदधिसें पार उतारे या जिसके आलंबनसें भव्य प्राणी ये प्रत्यक्ष अनुभवमें आते हुवे जन्म–जरा–मरणरुपी, या आधि व्याधि–उपाधिरुपी, या संयोग वियोग रुपी महा दुःखदावानलसें अपार पीडा सहन करते हुवे, इस भववनका पार पा सकै वही तीर्थ कहा जावै. वो तीर्थ लौकिक और लोकोत्तर ऐसे दो प्रकारके हैं. उसमें लौकिक तीर्थ ६८ है कि जो अज्ञान और अविवेककी प्राधान्यतासें बहुत करकें बाह्यशौचधारी जनोंके सेवित होनेसें, और रागद्वेष मोहरुप बडे भारी त्रिदोषदूषित देवाधिष्ठित होनेसें; और चित्तशुद्धि करनेके बदलेमें उलटे मलीनताजनक होनेसें निष्कामी मोक्षार्थी सम्यग् दृष्टियोंकों त्यजनेकेही योग्य हैं.

सेवनाके योग्य नहीं हैं. 'लोकोत्तर तीर्थ' स्थावर जंगम भेदसें करके दो प्रकार के हैं. जिसका अल्प अहेवाल तीर्थवंदनमालामें दिया गया है. संक्लेशकों पैदा करनेवाला राग, शमरुप लकडीकों जलानेमें अग्नि समान द्वेष, और सम्यग् ज्ञानकों ढक देनेवाला या अशुद्धाचरण करानेवाला मोह—ये तीनूं दोषोंका जिन्होंने मूलसें ही निकंदन कर डाला है, वैसे अरिहंत देवाधिदेव और उन अरिहंत प्रभुजीके अंतेवासी गणधर महाराज आदि तमाम आज्ञाधारी साधुसाध्वी—श्रावक—श्राविकारुप श्री संघ यानि श्री द्वादशांगी धारक, चौद या दश या एक भी पूर्वके धरनेवाले—पूर्वधर, एकादशांगधार और अष्ट प्रवचन माताके धारक, पंचाचार कुशल, युगप्रधान, आचार्य उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थवीर, और गणावच्छेदक तथा रत्नाधिक—विचित्र लब्धिपात्र मुनिवर, और विनयवैयावच्चादिक उत्तम गुणगणालंकृत श्रमण समुदाय, और प्रवर्त्तनी आदिक गुणशाली साध्वी समुदाय, तथा अक्षुद्रादिक अनेक गुण विभूषित, श्राद्ध व्रतधारी, सचित्तादि चौदह नियमधारी—यावत् सचित्त परिहारी, हर हमेशां एकासनादिक व्रतधारी; उभय टंक (वख्त) आवश्यककारी, त्रिकालदेव पूजाकारी, शम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा और आस्तिकतादिक सम्यक्त्व अनुकूल लक्षण सहित, तीर्थसेवादिक उत्तम भूषण भूषितांग, शंकादिक दूषण वर्जित, चउविह सद्दहणा, त्रिलिंग, त्रिशुद्धि सहित, भक्ति बहु मानादिकसें अरिहंतजीका विनय करनेवाले, शा-

संवेगभावना कारक, षड्विध जयणाके पालनेवाले, खास जरूरतके वख्तही छः प्रकारके आगारका उपयोग करनेवाले, तथा सम्यक्त्वके छः स्थानककों स्पर्शने वाले ऐसें सम्यक्त्व सुरमणिधारक, विवेक पूर्वक श्राद्ध उचित मर्यादा—५ अणुव्रत, ३ गुण व्रत और ४ शिक्षाव्रत एवं १२ व्रतधारी, पूर्ण यकीनसें श्रीतीर्थंकर और निर्ग्रंथ प्रवचनको साधनेके अभिलाषी, सुशील, न्यायमती—नीति निपुण, व्यवहार कुशल, अति आरंभ क्रियाके त्यागी, संतोषी, धीर, वीर, गंभीर हो शासनकी उन्नति करनेमें उत्सुक, प्रासंगिक मलीनता उड्डाह दूर करनेमें हर्षचित्तवंत, निरंतर उचित आचरणा चतुर, स्वसमाचारी कुशल; सुपात्र पोषक, मिथ्यामति मदशोषक, विवेकसंपन्न, नारक चारक समान संसारको गिनकर उसें जलांजली देनेकी तक हाथ करनेमें तत्पर, हमेशाः नौसरहारवत् नौपदका ध्यान हृदयसें न भूलने वाले, अवसानके वख्त ज्यादा ज्यादा सावधानी रखने वाले, निरंतर स्वपर हितकी तर्फ लक्ष देने वाले, कृतज्ञ, दयार्द्रदिलवंत, लज्जाशील, दाक्षिण्यतावंत, मध्यस्थ, लोकप्रिय और शिष्टाचार मुजब उपयोगसें चलनेवाले श्रावक और श्राविकाओंका समुदाय ये सब 'जंगम तीर्थ' कहा जाता है. क्योंकि गंगानदीके प्रवाहकी तरह पवित्र आशय धरनेवाले वै वसुधातल—जमीनपर जगह जगह फिरकर अपने चरणन्याससें अपने समागममें आनेवाले भव्य जीवोंको पवित्र करते हैं. जगतका दारिद्र्यको जंगम तीर्थ अनेकशः अपहरता है, और मंगललीला विस्तारवंत करता है.

उत्तम गुण रुपी रत्नोंके स्थानरुप श्री तीर्थंकरजीके जहां च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवल ज्ञान और मोक्षरुप पंच कल्याणक होवें, तथा जहां जहां गुणमय उन्होंका दीक्षा लेकर विहार-क्रमसें रहना-स्थिरता होवै वहां वहांकी जगह पवित्र चरणन्याससें पवित्र भइ हुइ होनेसें, और मोक्षार्थी भव्य जीवोंको प्रभुके उपकारकी यादीके साधनरुप होनेसें उसें 'स्थावर तीर्थ' कहा जाता है. किंवा जहां प्रभुजीके मुख्य अंतेवासी गणधर वगैरः आचार्य प्रमुख मुमुक्षु वर्गका सिद्धि गमन एक या अनेक वख्त हुवा है, होता है, और होवेगा, वो भूमि भी स्थावर तीर्थरुप गिननेमें आती है.

जंगम तीर्थ और स्थावर तीर्थमें इतना ज्यादा भेद है कि-जंगम तीर्थ, भूत तीर्थंकर, गणधर और समस्त तीर्थंकर स्थापित, व समस्त सुरेंद्रादिक पूजित, मान्य गुणरुप लक्ष्मीके क्रीडागृहरुप सकल साधु, श्रावक और श्राविकारुप संघसमुदाय जहां जहां विचरे करै, और विचरनेके वख्त मोक्षार्थी जो जो भव्य जीव है वै महान् भाग्यशाली तीर्थकी सेवाका लाभ लेनकी चाहत रखवै और लेनके अनुकूल प्रयत्न करते रहे, वै वै भव्य सत्वोंको वो जंगम तीर्थ अवश्य पापरहित-पावन करकें मोक्षगति लायक बना देवें.

और स्थावर तो स्थाइही होनेसें जो भव्य प्राणि खास चाहत करकें भव जल तिरनेकी बुद्धिसें उन् उन् स्थावर तीर्थको जहाज रुप मानकर शुद्धबुद्धिसें उन्होंका आलंबन लेते हैं, उन्होंको विवेकपूर्वक उन उन तीर्थोंके अधिष्टायक देवाधिदेवकी पवित्र मुद्रा (प्रतिमाजी)के

दृढ अवलंबन ध्यान विशुद्धिसें, मोक्षप्राप्ति होती है. इसी लिये शत्रुंजय, गिरनार, आबु, अष्टापद, तालध्वज, समेतशिखर, पावापुरी, चंपापुरी, तारंगाजी वगैरः स्थावर तीर्थरुप मनाते हैं.

जंगम और स्थावर इन दोनुं तीर्थोंकी विवेकसें सेवा करनेवाले भव्यसत्वोंकी तुरंत और सहजहीमें सिद्धि होती है, और विवेक विगर बहुत कष्टसें की गइ सेवनासेभी सिद्धि होनी मुश्कील है; वास्ते ज्यों बन सके त्यों विवेकरत्न धारण करनेके लिये उद्यम करना. उपाध्यायजी यशोविजयजी बतलाते है कि:—

रवि दूजो तीजो नयन, अंतरभाव प्रकाश;
करो धंध सवी परिहरी, एक विवेक अभ्यास. १
रागभुजंगम विष हरन, धारो मंत्र विवेक;
भववन मूल उच्छेदको, विलसे याकी टेक. २

सारांश यही है कि विवेक ये अभिनव सूर्य है, तैसें ही अभिनव नेत्र है. जिनद्वारा आत्माकी अंदर प्रकाश होता है, उसीसें अंदरकी ऋद्धि सिद्धिका भान होता है. उस विगर विद्यमान वस्तु होने परभी मालुम नहीं हो सक्ती; वास्ते हे भव्यजनो! दूसरे सभी धंद छोड करकें फक्त एक विवेकका ही अभ्यास करो. ये विवेक रागरुप सांपका जहर दूर करनेके वास्ते जांगुली मंत्रके समान है, और अखिल भवरुपी वनका उच्छेद—नाश करनेमें भी समर्थ है; वास्ते विवेकको अंगीकार कर उनीका स्मरण करो. स्वपर, जड चेतन, हिता—हित, उचित अनुचित, भक्ष्याभक्ष्य, पेयापेय, विधि

अविधि, यावत् गुणदोषकों जिसद्वारा जान सके–वांट सकै और पहिचान सकै उसीको ही 'विवेक' कहा जाता है. यह जीव अनादि मिथ्यावासनासें पर–शरीर, कुटुंब, परिवार, लक्ष्मी आदिक पदार्थोंमें अपनापणा मान रहा है. खुश होता है, उससे रागकी मेरणायुक्त भयाहुवा अनेक पापारंभ करीकें भी संतोप मानता है. खुश होता है. विवेक जाग्रत होनेसें उनकों मिथ्या मानकर उसमें स्थापन किया हुवा मेरापणा कम होनेसें राग भी कम हो जाता है, और उससें पापसें दूर हटनेका भी वन सकता है. विवेक विगर ये जड शरीर सो 'मैं' युं मानताथा, वो विवेक मकट होते ही ज्ञान दर्शनादिक लक्षणवंत चेतन द्रव्य 'मैं,' और पूर्ण, गलनस्वभावी शरीरसो मैं नहीं, मेरा नहीं, मेरेसें अलग, सो तो पूर्वकृत कर्मयोगसें ये चेतनकी लार लगा है वो मेरा नही; वास्ते उसमें ममता करनी ना लायक है; परंतु ज्ञानशक्तिसें बिचार कर ममताकों हठाके उनपर त्याग वैराग्य धारण करना लायक है. विवेक जाग्रत हुवे विगर मोह मदिराके नस्सेमें मुझे क्या हित–क्षेमकारी है? और क्या उससें उलटा है? मुझको क्या करना लाजिम है? क्या करना वे लाजिम है? मुझको क्या करनेसें सद्गति, और क्या करनेसें दुर्गति माप्त होयगी? इत्यादि नहीं समझा जाता है और विवेकलोचन खुल जावै तव वै सव यथास्थित समझनेमें आ जाता है. भक्ष्याभक्ष्य, पेयापेय और गुणदोषका भी सहजहीमें भान हो जाता है. विवेकीनर जोहेरीकी तरह गुणरत्नकों परख सकता है, और

दोष द्पद्–ढेले–पथ्थरको समझ कर दूरकरसकते हैं, ये सब विवेकका प्रभाव है; वास्ते ही उसका विशेपतासें आदर करना कहा है. अन्यस्थानमें वाल ख्यालमें–अज्ञानताके जोरसें किये गये पाप तीर्थस्थानकी सेवा द्वारा क्षय होजाते हैं; परंतु वैही तीर्थस्थान पर अविवेकद्वारा किये गये पाप वज्रलेप जैसे होजाते है, वे पाप बहुत दुःख देते हैं; वास्ते तीर्थसेवा करनेके अभिलाषी जनोंकों तीर्थ सेवाकी रीति जाननेकी और जानकर उस मुजब वन सके उतनी खंतसें चलनेकी खास जरुरत है.

पहेलें तो देखो कि आजकल भी श्री शत्रुंजयजी आदिकी विधिपूर्वक यात्रा करनेकी दरकारवाले भविकजन अपने स्थानसें श्री संघ समुदाय या स्वकुटुंब परिवार सहित शास्त्रमें वताइ गइ छःरी यानि ब्रह्मचर्य, भूमिशयन, सचित्त परिहार, एकाशनव्रत, जयणायुक्त पैदल चलना, और दोनू वख्त प्रतिक्रमण इतने (छ कार्य अर्थात् स्त्री संगम, पलंग–मांचेमें सोना, सचित्त वस्तुखाना, अव्रती रहना, जयणा रहित वाहनपर बैठ के पंथ करना और दो वख्त पडिकमणे नहीं करना. ये छ कार्यको दूर करके तीर्थके निमित्त जाना, जब छ वस्तु दूर करनेसें–छःरी पालन किया कबूल होता है. उसी लिये ये छः) कार्य सहित तीर्थपतिकी भेट लैनी. और इस तरह करके भेट लेवे तो वेडा पार हो जाता है. वास्ते विशेष भाव और वहुत मान्यसें तीर्थ तीर्थराजकी सेवा भक्ति करनी चाहियें. और विशेष विशेष प्रकारसें व्रत–तप–जप–

शील संतोष–दया–दान–पच्चख्खाण ये सभीका सेवन करना ही चाहियें. जो जो बावतें उपर कही गइ उनमेंसें कितनीक बातें आजकल कितनेक भाविकजन निन्नाणु यात्रा के करनेवाले उमीद सह करते हुए मालुम होतें है. जब निन्नाणु (९९) यात्रा पूर्ण करने तक ऐसा उत्तम विवेक धारन करते है, और छूटक छूटक (पृथक् पृथक्) यात्रा करनेवाले उचित विवेक नहीं पालन करते है तब कैसा बुरा मालुम होवै! सच्च पूंछो तो जब तक ये तीर्थराजकी सेवा करनेकों मंगो, तब तक उचित विधि हाथ धरकर चलन रखनेकी खास जरुरत है. जयणापूर्वक जमीनपर नजर जोड निगाह रखकर चलना, काम जितना ही सत्य और हितकारी बोलना,–कठोर–अप्रीतिकारक वाक्य न बोलना. अनीतिसें किसीकी वस्तु न लेनी. मन–वचन–तनसें करकें कुशील नहीं सेवन करना; क्योंकि चाहे वैसे स्थानपर कुशील सेवन के कटु विपाक कहे हैं, तो ऐसे पवित्र स्थानपर तो जरुर करके न सेवन करना चाहिये. कुदृष्टि भी नहीं करनी और उसपर लक्ष्मणा तथा रुपी साध्वीका दृष्टांत ध्यानमें शोच मनन कर लेना, और अपनी चालचलन सुधार कर अपनी आत्मासें अलग देह, गेह, कुटुंब, परिवार लक्ष्मी के उपर मोह मूर्छा छोड देनी. रात्रिभोजन सर्वथा छोड देना, राग, द्वेष, कलह, क्रोधादि कषाय, मिथ्या कलंकदान, चुगलगिरी, सुखशीलता, खेद, परनिंदा और कथनीसें चलन अलग रखनेरुप मायामृषा इत्यादिक सभी पापस्थानकोंका ज्यों बन सके त्यों त्याग

करकें श्री तीर्थराज—तीर्थंकरादिक नवपद के पवित्र ध्यानमें लीन रहना. ऐसे यत्न वलसें अभ्यास रखनेसें चित्तको साक्षात् वहुत सुख होगा. जीस तरह व्यापारी लोग व्यापारकी मोसम—धूमधाम के वख्तमें ठंडी—धूप—वृष्टि—भूख—तृषाकी दरकार नहीं रखते हैं. किंवा वीर लडायकयुद्धे रणभूमिमें वाणोंकी वृष्टिकी दरकार न रखतें हीम्मत के साथ अपने वीरत्वकी किम्मत करानेको शत्रुदल सन्मुख युद्ध करते हैं, उसी तरह ऐसे उत्तम प्रसंगपर श्री तीर्थराज या तीर्थंकरादिककी भक्ति करकें परभवके रस्तेकी खुराकी लेकर अपना ये दुर्लभ मानवशरीर—जन्म सफल करनेकी सच्ची तकपर सुखलंपट—विषयों के वश्य होना, क्रोधादिकके तावेदार वनना सो अत्यंत आते हुवे लाभमें अमंगल—विघ्नभूत है. उस वख्त तो पवित्र गिरिराजका और पवित्र तीर्थराजका आश्रय ले करकें तिर गये हुवे महान् पुरुषों के गुणग्रामसें संवेगादिक उत्तम गुणोकी पुष्टि करते हुवे वैराग्य रसमें अन्हाते हुवे शांत सुख अनुभवते हुवे, और कठिन हृदय सह परिसहादिक सहन करते हुवे, छट्ठ अट्ठमादिक दुष्कर तप करकें, देहके झूंठे ममत्वको त्यागते हुवे, मोहमल्लकी स्हामने निडरतासें अडग रहकर युद्ध करनेके वास्ते अपना तमाम वलवीर्य स्फुरायमान् करते हुवे, और इस तरह साहसीक रीतिसें जगत् मात्रको हरकेत करनेहारा मोहादिक महान् शत्रु के स्हामने जयलक्ष्मीके स्वामी होने तक लडते हुवे निरंतर ज्यौं ज्यौं नवीन नवीन वीर्य उत्थानसें ज्यादे ज्यादे शक्ति प्रकट होती जाती

है, त्यौं त्यौं अपने आरंभ किये हुवे कार्यकी सिद्धि संबंधी प्रतीति कर देवे वैसा अपूर्व उत्साह वढता जाता प्रत्यक्ष मालुम होता है. इस तरह ऐसे अव्वलमें अपनी वीर्यशक्ति न छुपानेवाले इतनी शक्ति विकश्वर करकें आखिर अपना कार्य सिद्ध कर सक्ता है. लेकिन प्रथमसें ही मंद परिणामकों धारन करनेवाले शिथिल हो कायरकी तरह बोलनेवाले और चलनेवाले शूरवीरकी तरह अपना इष्ट नहीं साध सकते हैं.

द्रव्यका व्यय करनेमेंभी विवेकसें वर्त्तनेकी उतनी ही जरुरत है. आज कल कितनेक मुग्ध भाइयें प्रभुजीकी गोदमें या पाटलीके उपर फल निवैद्यकी साथ पैसे या रुपैये चडाते है; मगर उसे बारीकीसें तपास करनेमें आवे तो बहुत दफै चोरीकों पुष्टि दिजाती है. फिर प्रभुजीके पास द्रव्यकी भेट करनेका सबब भी भंडार—देवद्रव्यकी वृद्धिकाही होता है, सो तो प्रायः ऐसा करनेसें बिलकुल पार नही पड सकता है; वास्ते उसका श्रेष्ठ विवेक पूर्ण यही रस्ता है कि वो द्रव्य प्रभुजीके अंकमें या दूसरी खुल्ली जगह नहीं मूक रखना; बंध करकें जहां गुप्त या जाहिर भंडार होवे वहांही डालने दुरस्त है या कारखानेमें लिखवाकर रसीद ले लेनी योग्य है. तीर्थस्थानोंमे पैसेकी बहुतसी चोरीयें होती हैं उसकों जात्रालु भी नहीं जान सकते है; वास्ते उन्होंकों खबर होनेके लिये यह अनुभवसिद्ध लेख जाहिरमें रक्खा गया है कि प्रभुमंदिरोंमें द्रव्यभंडारमें डालनेकी आदत रखनी चाहियें. और अपने तमाम

लोगोंकोभी यह बातकी समझ देनी ही लाभदायक है. सच्च पूंछो तो अपने अविवेकका फल अपनेकोंही भुक्तना पडता है. पैसेके लोभसें प्राणी कितनेही अनर्थ करते हैं, और पैसे मिलाकर भी मदोन्मत्त अज्ञानी बनकर अपने स्वामीकाभी द्रोह करनेकों दौडते है. ऐसे नीच लोगोंका पोषण करना सो एक जातके पापकाही पोषण करने समान है. यदि अपने भाइ सलाह संपमें एकमत हो काम हाथ लेना चाहें तो समस्त सुस्थित होनेका संभव है. अलबत किसीकी योग्य आजीविकामें बीच पाँव देना योग्य नही, मगर साँपकों दुध पिलाये जैसा दीर्घ दृष्टिसें विचार किये बिगर देनेका विना विचारे चलाये हो जानेसें अंतमें अपनाही विनाश होनेका वख्त हाथ लग जाय; वास्ते ऐसी बाबतोंमें भी विवेक धारन करनेकी खास जरुरत है.

अन्यायके रस्तेमें विवेकीजन एक पाइभी नहीं खर्चते हैं. और न्यायमार्गमें अपनी जितनी शक्ति होवै उतनी अमलमें लेकर द्रव्य व्यय करते है. जैनशासनमें सात क्षेत्र बतलाये है. उस शिवाय भी ज्ञानदान, पोषधशाला वगैरः धर्मकृत्योंमें उदार दिलसे द्रव्य खर्चनेसें ऐसे तीर्थस्थान पर अतुल्य फल बांधते है, दीन दुःखीकी अनुकंपा, और पीडा पाते हुवे साधर्मीजनोंको प्रीतिपूर्वक मदद देकर सुखी करने चाहिये. धर्ममें दृढ करना ये उचितज्ञ विवेकी श्रावकोंकी फर्ज है. सदाचारमें सुदृढ रहना, यावत् सुदर्शन शेठ या विजयशेठ और विजया शेठानीकी तरह उत्तम प्रकारका

शीलव्रत पालना. चाहें वैसे विषम संयोगोंमें भी टेक न छोड देनी, जीव जयणाकों जिनशासनमें धर्मकी माता जैसी धर्मकी वृद्धि करनेहारी प्रशंसनीय कही है. तो हरएक कार्यमें सावधानतासें चलकर जयणा पालनी उसके वास्ते बडे मनके कुमारपाल राजाका दृष्टांत लेना कि जिसने पवित्र धर्मकी परिणतिसें अपने १८ देशोंमें अमारी पडह बजवायाथा यानि अपने राज्यभरमें चोपटके खेलमें भी मार मार ऐसी शब्द तक कोइ न बोल सके ऐसी दया पलानेका ढंढेरा फिरायाथा—डुंडी पिटवाइथी. और दूसरे देशोंमें भी मित्रता बल और धनके बलसें यानि ऐसी अनेक युक्तिसें न्यायसह चलन रखकर जयणा फैलाकर असंख्य जीवोंके आशिर्वाद लिये-थे. शासनकी प्रभावनामें भी उसीही महाराजाका दृष्टांत लेकर अपनी शक्ति दिखलानी चाहिये, जब समजदार अन्यदर्शनी भी एक आवाजसें पवित्र शासनका महीमा गावै ऐसा सद्वर्त्तन शास्त्रानुसार किया जावै, तब शासनप्रभावना की कही जाय.

श्री वीतरागदेवके शासनमें रासिये श्रावक—श्राविकाओंके समुदायकों निर्मल बोध देनेका जिनका आचार है ऐसे साधु साध्वी वर्गकों भी अपने अपने पवित्र आचारोंकों भी बहुत मजबूत रीतिसें समालकर रहना चाहियें. ऐसे विवेकवंत साधु साध्वीयोंसें पवित्र तीर्थमें भव्य जीवोंको जैसा लाभ होवै वैसा मंदपरिणामी और शिथिलाचारीओंसें नहीं हो सकता है. भ्रष्टाचारियोंसें तो उलटा शासनका उड्डाह—हो हा—फजुती ही हो सके. वास्ते ऐसे भ्रष्टा-

चारी जडभक्तोंका किसी तरहसें भी पोषण करना योग्य ही नहीं है, साधु साध्वीओंको सर्वत्र और तीर्थस्थलमें विशेष करिके क्षमा, मृदुता, सरलता, निर्लोभता, निर्ममता सहित उत्तम प्रकारसें संयम पालन करके विचरना चाहिये; क्यौं कि उन्हीके पवित्र आचारकों देखकर वहुतसें जीव धर्म प्राप्त करते है, और अनुमोदना करते हैं. किंतु यदि आचारभ्रष्ठ होनेसें केवल वेष विडंबक हो रहते होवै तो हर किसीकों भी दिल्लगी–गुस्ताखी और निंदा करनेके लायक होते हैं यानि अपमान पाते हैं. और शासनकी मलीनता करनेके कारणिक होनेसें परभवमें भी वहुत दुःख पाते है. वास्ते दंभ छोडकर निर्दंभतासें सच्ची और पवित्र जैनी क्रिया सच्चे तन मन वचनसें सेवन करनी योग्य है; जिस्सें स्वपरकों लाभ, पवित्र शासनकी उन्नती, यह लोकमें प्रत्यक्ष वहुमान और परभवमें इंद्रादिककी ऋद्धि पाकर मोक्षसुख पाता है. अैसा परमसुख छोडकर कौनसा मुढ दुर्मति किंचित् मात्र विषयसुखमें गृद्ध–आसक्त होके अपना और दूसरोंका काम विगाड कर परमाधामीके मारकी चाहना करे ?

फिर ये जीव अनादि कालसें सुखका अर्थी होने परभी सुखप्राप्ति साधनके सच्चे मोकेपर तुच्छ क्षणिक सुखमे लालचु बनके धर्म साधनसें भ्रष्ट हो जाता है तो पीछे उससे ज्यादे निर्भागी दूसरे कौन कहे जाय ? यह तो 'लग्न समय गया निंदमें, पीछे वहुत पिछताय.' अैसा होता है; वास्ते सच्चे सुखार्थिजीवोंकों वडी खवरदारीके साथ चलनेकी जरुरत है. दूसरा तुम आपही खुद सुखशील

चैनकर धर्मसाधनमें बेदरकार रहोगे तो फिर तुमारी आल औ-लाद (शिष्य प्रशिष्य–पुत्र परिवार) क्यौं करकें सच्चा मार्ग समझ सकेंगे और शीख सकेंगे ? सच्चा मार्ग समझनेमें आये विगर या शीखे विगर वै क्यौं करके आदर सकेंगे ? सच्चा मार्ग आदरे विगर सुखी भी क्यौं करकें हो सकेंगे ? इसतरह उन विचारोंको सच्चे सुखोंमें विघ्न डालनेमें सच्चा कारणिक कौन है ? तुमारेही कबूल करना पडेगा कि तुम खुदही हो; तब तुम तुमारी संततिके हितस्वी या शत्रु ? अल्प वाक्योंमें कहे तो तुम खुद अपना और तुमारी संतति या पवित्र शासनका यदि भला चाहते हो तो इंद्र-जालवत् झूँठे विषय सुखसें विमुख हो कर बडे दुःखदायी दोषोंको छोडकर खुद तुमही पहिले बराबर सुधरने गुणोंकी दरकारी करने वाले हो ! अभ्यास करो और पीछे तुमारी संततिकों सुधारा युक्त बनानेका प्रयत्न करो. कोइ खुद आपतो बेधडक व्यभिचार सेवन करे और दूसरोंकों ब्रह्मचर्य पलानेका उपदेश देवै सो क्या लगै ? कुछ नही लगै ! लेकिन आप खुद शील संतोषादिक उत्तम गुण धारण करकें वैसेही गुण धारन करनेका अपनी संततिकों या दूसरे योग्य भव्य जीवोंकों उपदेश देवै तो मैं मानताहुं कि वो अल्प महेनतसें उमीद बर आ सकै ! अरे ! विगर उपदेश दिये भी कितनेक गुणग्राही वीर नर तो वैसे सुशील धर्मात्माओंसें सहजमें उन्हींकी रीति भांति देखकर शीख लेवें.

ऐसे पवित्र गुण धारक साधु साध्वी श्रावक श्राविकारुप चतु-

विध संघको दर्शन मात्र करनेसेंही भव्य चकोर तीर्थयात्राका फल मिला सकें; तो फिर वैसे गुणरत्नोंके निधानरुप श्रीसंघकी भक्ति पूजा-सत्कार सन्मान करने वालोंका तो कहनाही क्या ? वैसे विवेकी नररत्न तो अल्प समयमें ही समस्त पापोंकों दूर करके निर्मल हो पवित्र रत्नत्रयी आराध कर मोक्षपद पाते है. जो जो तीर्थंकरजी होते है वे सभी ये तीर्थोंके आदि लेकर वीश स्थानक अंदरके कुल या एक दो स्थानककों आराधन करकेही तीर्थंकरनाम-कर्म निकाचते है. वास्ते समस्त पापपुंजकों दूर कर परम पवित्र करने वाले पुर्वोक्त जंगम स्थावर तीर्थोंका यात्रा सच्चे सुखार्थी भाइ और भगिनीओंको पवित्र मन वचन तनसें करनी, दूसरे भव्य जीवोंकों उसी तरह करनेका उपदेश देना और उसी मुजब चलने-वालोंकी अनुमोदना स्तुति प्रशंसाद्वारा जितनी वनसके उतनी पुष्टि करनी, यही सम्यक्त्व व्रतका सच्चा भूषण है. इत्यलम्.

सद्भावना.

अय जीव ! तूं विचार कर कि तेरी असल स्थिति कौनसी ? सूक्ष्म निगोद. अहा ! उसकी अंदर कैसी दुःख विटंबना ?! श्वासो-श्वासमें भी साधिक सत्तरह भव कर करकें मरनके शरन होना !! ऐसी दुःखकी कोटीसें स्थिति परिपाकादिक सबबके संयोगसें व्यवहार राशी प्राप्त कर लेकर क्रमसें अनेक भव, अनंत दुःख राशि

सुक्तता मुक्तता किसी महद्पुण्य के योगसें यह दश दृष्टांतसें दुर्लभ मनुष्य देह तेरे हाथ आया है. उसमें भी अत्यंत पुण्ययोगसें प्राप्त होने लायक धर्मसामग्री, आर्यक्षेत्र, सद्गुरुयोग, धर्मश्रवण, और धर्मरुचि वगैरः पा करकें 'देहस्य सारं व्रत धारणंच.' यह दुर्लभ देह पानेके खास साररूप पवित्रव्रत धारण करना यही है. श्री वीतरागदेवभाषित सर्वविरतिधर्म अपूर्व चिंतामणि समान है, सो परम भक्तिसें आराधन करनेमें आवे तो बेशक शास्वत सुख देता है. वैसा परम निरुपाधिक धर्म सर्वथा प्रमादरहित आराधने योग्य है. प्रमाद ये आत्माका कट्टा दुश्मन है. श्री जिनेश्वर भगवंतके पवित्र वचनोंका अनादर करकें आपमतिसें चलन चलाना ये प्रमाद है. वास्ते सब प्रयत्नसें करकें श्री जिन–वचनोंको यथार्थ समझकर पालने के वास्ते हर्षचित्तवंत होनाही श्रेयकारी है सुखशील जीव अल्प सुखके लिये वहुत काल तकका स्वर्गका या मोक्षका सुख हार जाता है. यदि सुखशीलपन तजकर सावधान हो श्री जिनाज्ञाकों पूर्णप्रकार आराधनेकी दरकार रख्खे तो अल्पकालमें, अल्पकष्टसें वहुतकाल के उचे दर्जेका सुख स्वाधीन हो सके. मगर तुं स्वाधीनतासें कायर होकें आत्मसाधन नहीं करता है, उससें सच्चे संवल खर्चे बिगर पराधीन हुवे बाद धर्मसाधन नहीं कर सकता है, वास्ते पानी पहिलें पाल बंधे तो खूब है! पहिलेसें ही आत्मसाधन कर लेना वही सबसें अच्छेमें अच्छा है.

जीव ! अज्ञानदशासें करकें मोहमें फंस कर 'में और मेरा मेरा' कर करकें महा दुःख पाता है. निर्मल स्फटिक रत्नसमान सहज ज्ञान ज्योतिसें सुशोभित आत्मा खुदका असल स्वरुप मोह मदिराकी छाकसें चूक जाकर अज्ञानके वश होनेसें पर वस्तुमें मेरा मेरा करके मरता है. अंतमें सभीकों छोडकर युं ही रुखसद होना पडता है. ऐसा प्रत्यक्ष देखता है तौ भी मोह मदिरासे बेभान हुवा झूंठा ममत नहीं छोड देता है, तो अंतमें पराभव पाकर दुर्गति पाता है कि जहां कोइ शरण भी नहीं होता.

सम्यग् ज्ञान यही मोक्षमार्ग बतलानेवाले दीपक है, यही भवाटवीसें पार पहुंचानेकों सच्चा संगाथी है; वास्ते अंत तक उसका संग न छोडना चाहिये. सम्यग् ज्ञान और वैराग्य ये दोनू इन भवसमुद्रकों तिरनेके लिये जबरदस्त जहाज हैं. वास्ते भव्य जीवोंने उनका दृढालंबन करना ही दुरस्त है. गुण दोष, उचित अनुचित, हित अहित और लाभालाभकों अच्छे तौरसें समझनेरुप विवेक उस अंतःकरणमें प्रकाश करने वाला अभिनव सूर्य है, और उसके प्राप्त होनेसेंही सब सुख प्राप्त होते हैं, उसीसें स्थिरता, समता और त्यागादिक उत्तम गुण प्रकट होते हैं; सच्ची तपास करनेसें तो यह आत्माही खुद गुण रत्नोंका पैदा करंदा दरियाव है गुणमय ही है; लेकिन वो सभी विवेकद्वारा जानकर अंगिकार किया जा सकता है और उसके बिगर गुणोंको हाथ करना चाहे वो तो धुवेंकोही हाथमें पकडने जैसा प्रकार है.

आत्माका सच्चा धन—सच्चा कुटुंब अंतरमें ही है, जिनकों मोह वश हुवा प्राणी अज्ञान द्वारा भूल जाकर भ्रमसें झुंठे धन कुटुंबमें मोहित हो रहा है. जैसें रुधिरसें लिप्त हुवा कपडा रुधिरसें साफ नहीं हो सकता है तैसें प्रमादसें मिलाया हुवा कर्ममल प्रमादसें दूर हो नहीं सकता. अप्रमाद यही आत्म साधनमें अनुकूल मित्र मददगार है. खंतसें करकें श्री जिनाज्ञाका आराधन करना वही सच्चा अप्रमाद है. वास्ते मद, विषय, कषाय, आलस और विकथा दूर करकें सावधान हो सभी प्राणीपर समभाव रखकर, निर्मल मन, वचन, तनसें शील—सदाचार पालनेकों हर्ष चित्तवंत होना, यही बेडा पार होनेका सच्चा इलाज है.

प्राणांते भी दूसरे जीवकों त्रास नहीं देना, अपने खुदकों दुःख उठालेना; लेकिन दूसरोंको हरगीज दुःख नहीं देना. प्राणांत होने परभी कषायादिके तावेदार होके झूंठ नहीं बोलना. जोररों पर प्राणीकों दुःख होवै, अहित होवै ऐसा सच्चा बोलना वोभी झूंठके समान ही समझकर विवेकपूर्वक हित—मित (चाहिये उतना ही) स्पष्ट, धर्मकों हरकत न हो सके वैसा शोच विचार बोलना. ज्यों त्यों विगर विचार धुंधा बोलनेके सबबसें उत्सूत्र भाषणका भी प्रसंग आ जाता है. और उसीसें संसारमें बहुत भटकना पडता है. वास्ते उपयोग पूर्वक ही बोलना. अदत्त भी चारों प्रकारका छोडना चाहियें—यानि तीर्थंकर अदत्त-श्री तीर्थंकर देवने निषेध किये हुवे पदार्थ न लेना, गुरु अदत्त गुरु के हुकम शिवाय कोइ चीज न

लेनी, स्वामी अदत्त–वस्तु के मालिकका हुकम मिलाये विगर वो वस्तु न लेनी; और जीवअदत्त–सचित्त या मिश्र वस्तु न लेनी; क्यौं कि सब किसीकों अपना अपना प्रान प्यारा होता है, वास्ते चारों प्रकार के अदत्त तद्दन छोड देने चाहिये. ब्रह्मचर्य देव, मनुष्य, तिर्यंच संबंधी औदारिक और वैक्रिय–मन, वचन, तनसें करना, कराना और अनुमोदनाके भेदसें अठारह प्रकारकी मैथुन क्रिडाका सर्वथा त्याग करना; परिग्रह–बाह्य और आभ्यंतर–धन धान्यादिक नौविधिका, बाह्य, और ४ कषाय, ३ वेद, ६हास्यादि, और मिथ्यात्व यौं चौदह प्रकारके अभ्यंतर परिग्रहका तद्दन त्याग करना चाहिये. मूर्च्छाकों ही तत्त्वमें परिग्रह कहनेसें मूर्च्छा ही त्यजने योग्य है. धर्मके उपकरणोंका अंदर भी मूर्च्छा परिग्रह रुप ही है–यानि रागद्वेष छोडकर केवल मोक्ष निमित्त दूसरी सब वासना–उमीदके सिवाय ये पांचों महाव्रतें निर्मल तन, मन, वचनसें पालना, दूसरे भव्यजीवोंकों पलानेके वास्ते दृढ प्रेरणा करनी और उक्त महाव्रतोंकी वीतराग वचनानुसार पालनेवालेकी प्रशंसा–अनुमोदना करनी, ये यह दुःख जल भरित भीम भवोदधि तिरजानेका अद्भुत और सरल साधन है. उसके सिवाय रात्रि भोजनका बिलकुल त्याग करना. प्रति लेखन, प्रतिक्रमण, पिंड–विशुद्धि वगैरः का बराबर सावधानीसें विधिकी दरकार रखनेवाले बनकर अपनी शक्तिके अनुसार जो करना सो पूर्वोक्त पंच महाव्रतोंकी शुद्धि या पुष्टि निमित्त समझके ही करना–यानि जिस

प्रकारसें रागद्वेष पतले पडजावै—दूर हठ जावै उस प्रकारसें मोक्षकी चाहतवाले जीवोंको सावधानीसें चलना दुरस्त है.

इंद्रियोंके विषयमें भटकते हुवे मनरुप लंगूरकों रोक रखकर उनकों शुभ संयम क्रियामें जोड देना. मन छुट्टा रेहनेसें जितना अनर्थ—जुल्म करता है उतना शुभ क्रियामें प्रवर्त्तनेसें न कर सकेगा. यह मनरुप तोफानी हाथी छुटा होवै तो संयमरुप फल फूलसें भरपूर हुवे बगीचेकों उखाडकर फेंक डालता है; वास्ते श्रीजिनाज्ञा रुप अंकुश हाथमें रखकर उनकों तावे करलो—नहीं तो तुमारी सब महेनत बरबाद जैसी ही हो जायगी. इसी सबबके लिये ज्यौं बन सके त्यौं युक्तियें अमलमें लेकर मनकों वश्य करनेका दृढ अभ्यास करना अति जरुरतका है. ऐसा करकें मनकों वश्य कर संयमका संरक्षण करना योग्य है. क्यों किः—

अहंकार परमें धरत, न लहे निजगुण गंध;
अहं ज्ञान निज गुण लगै, छुटे पर ही संबंध. १
रागद्वेष परिणाम युत, मन ही अनंत संसार;
तेहिज रागादिक रहित, जाण परमपद सार. २
विषय ग्रामकी सीममें, इच्छाचारी चरंत;
जिन आणा- अंकुश धरी, मनगज वश्य करंत. ३

इस तरह बहुसें महात्मा पुरुष संयम रक्षण करनेके वास्ते उत्तम प्रकारका बोध देते हैं, उसकों हृदयमें धारन कर अपनी शक्तिको फैलाके यथा योग्य उसका उपयोग करै तभी ये अमूल्य तक

कि जो बडे भाग्यके योगसें अपने हाथ आइ है उसीका सार्थक हुवा माना जावै, बाकी तो दरियावमें गोता लगाये समान पीछे संसार समुद्रमें डूब जानेका है. वास्ते जागृत हो–अनादिकी मोह निदको तजकर हुंशियारी के साथ स्वपरहित साधनेको तत्पर होना चाहियें. नहि तो यमकी चपेट लगनेसें फिक्रमें गिरफतार हो यमके महेमान होकर निर्मिन दुःख दीनपनेके साथ जरूर भुक्तने ही पडेंगे; वास्ते पहिलेसंही चेतना सोही बहुत फायदेमंद है. इत्यलम्.

देव द्रव्य ज्ञान द्रव्य और साधारण द्रव्य संबंधी विचार.

नरेंद्र, देवेंद्र, और योगींद्र सेवित जगत् पूज्य श्री जिनेश्वर देवजीकी भक्ति प्रभावनाके वास्ते निर्माण किया हुवा या किया गया द्रव्य देवद्रव्य कहा जाता है. उक्त देवद्रव्य ज्ञान दर्शनादिक गुणोंकी प्रभावना करनेहारा और महिमा बढानेहारा होनेसें सबसें मुख्य गिनालिया है, और उसीका न्यायसें संरक्षण या वृद्धि करनेहारेकोंभी बहुतसा फल बतलाया है. यानि शास्त्रनीति समझकर विवेकसें जहां खर्चनेकी जरूरत मालुम पडे वहां उदार दिलसें झूठा ममत्व छोडकर खर्चनेका उपयोग पूर्वक रक्षण करनेहारा, और शास्त्रनीति अनुसारही न्याय–विवेकसें उनकी वृद्धि करनेहारा बहुतसा फल यावत् तीर्थंकरगोत्र तक उपार्जन करता है; परंतु शास्त्रनीति विरुद्ध वर्त्तन चलाकर अन्याय अनीतिसें देवद्रव्यपर झूठा ममत्व धारनकर उनकों उचित स्थलमें न खर्चे या न खर्चनेके लिये देवे या उनको सूमकी तरह जमीन वगैरःमें गाडकर रक्खें अगर

खर्चनेकी जगह बखीलताइसें चाहियें उतना विवेकसह न खर्चे या बेदरकारीसें उनका गेर उपयोग करै, करने देवै अर्थात् शास्त्रनीति विरुद्ध महा आरंभकी वृद्धि होवै या द्रव्यका नाश होवै वैसे सख्स-कों व्याजसें या अंग उधारसें धीर धार करै, तो उस देव द्रव्यकी वृद्धि करनेहारा उलटा संसार भ्रमणही बढाता है. मतवल येही है कि देव द्रव्यका रक्षण करनेहारा या उनकी वृद्धि करनेहारा शास्त्र न्याय नीतिमें निपुण और प्रमादसें रहित उसी मुजब चलनेवाला चाहियें. वैसे चकोर पुरुपसें देव द्रव्यकी चिंतन कीगइ निश्चयता ज्ञान दर्शनादि गुणोंका महीमा वढानेरुप पार पडती है; लेकिन दूस-रोंसें पार नहीं पडती है. वास्ते वने सके वहांतक वैसे पुरुप रत्नकों ढुंढ निकालके उन्हीकोंही वैसा उत्तम अधिकार सुंपरद करना चा-हियें. वैसा पुरुष न मिल सके तो जो सामान्य रीतिसेंभी व्यवहार कुशल नीति प्रिय—लोकप्रिय श्रद्धाविवेकसें भूषित और वहुत भव-भीरु होवै उसीकोंही उक्त द्रव्यकी व्यवस्था करनेकी भलामण करनी चाहियें और उन मनुष्यकोंभी लाजिम है कि ज्यों बन सके त्यों तुरत वो देव द्रव्यादिक संबंधी शास्त्रनीति जाननेके वास्ते ज्ञानवी पुरुषोंका आश्रय लेकर उपयोग वंत होना चाहियें. कि जिस्सें आ-पकों और संबंधी जनोंकोंभी हरकत न पहुंचै. वन सके वहांतक तो वसे कामके कार्यभारीकी मददमें एक दो दूसरे भी मनुष्य साथ रहवै, और उन कार्यभारीकोंभी साथ रहने वालोंकी सम्मति मिला-कर काम करनेका उपयोग रहवै, तो वहुत फायदा होवै. नहीं तो

कदाचित् मन बिगडनेसें या भूल होजानेसें वडे दुःखका कारण हो पडे. निःशुक परिणामी, श्रद्धा विवेक शुन्य, न्यायनीति—लोक विरुद्ध वर्त्तन चलानेहारे कोइ भी उद्दंडकों उक्त अधिकार कभी सुंपरद न करना. वैसे अधिकारीकों सुंपरद करनेसें उसकों और सुंपरद करनेहारे सभीकों वडा भारी नुकशान होता है, और उत्तम देव द्रव्यका गेर उपयोग या विनाश होजाता है. उन देव द्रव्यका विनाश या वेदरकारी करनेवालेकों—खाजाने वालेकों और दाक्षिण्यतासे उनमें शामिलगीरी करने वालेकों अनंत संसारमें भटककर महा घोर दुःख उठाने पडते हैं. वास्ते ज्यौं वन सके त्यौं भवभीरु विवेकी जनकों खंत पूर्वक उनका लेप—दाघ—दोष न लग जाय वैसी फिक्र रखनेकी जरुरत है. थोडा भी देव द्रव्यका विनाश वडा भारी नुकशान करता है, तो बिल्कुल नुकशान करनेसें या वेदरकारीसें कितना अहित होगा सो विवेक लाकर शोचना चाहियें. विवेक रहित सहसा काम करने वालेकों पीछेसें वहुतही पीछताना पडता है; वास्ते चाहे वैसी आपत्तिके वख्त भी दानत पाक रखकर रहनेसें अंतमें श्रेय होता है. और ऐसेही विवेकी सज्जन सद्गृहस्थही ऐसे अधिकारके लायक है; लेकिन स्वार्थ साधनेमेंही तत्पर विवेकविकलजन लायक नहीं है.

पवित्र ज्ञान दर्शनादिकके महीमाकों वढानेहारा देवद्रव्यका भक्षन—विनाश या वेदरकारी करनेसें, पेस्तर वो चाहे वैसी स्थिति मुक्तता होवै, चाहे वैसा सुज्ञ माना जाता होवै, चाहे वैसा सुखी

होवै, तोभी वो थोडेही रोज में पायमाल हो जाता है, इज्जते आ-बरु गुमा बैठता है, पैसे टक्के कम होजानेसे खाली होजाता है, निर्धन बन जाता है, बुद्धि कंठित हो जाती है, मति मोहवंत हो घमडीती रहती है; और उनका कैसा भविष्य होगा उसका भी भान न रहने पाता है. क्रमशः ज्यादे ज्यादे दोष सेवनसें निःशुक परिणामी हो धर्माचारसें भ्रष्ट हो जाता है, उससें शाहुकारके मुँहमें न दुरस्त लगें वैसे देवालीयेंके जैसा भी बकता है, यावत् आवरु धूलमें मिला देता है. जिस प्रकार आपकी प्रकृतिके प्रति-कूल विरुद्ध—निषिद्ध मांसादि अभक्ष्य भक्षण करनेहारेकी पाय-माली होती है उसी प्रकार इन देव द्रव्य खाने—विनाशने वालेका समझ लेना. पहिले जाने बडी भारी पथ्थर शिला पेट में पडी होवे उस तरह पेट सज्जड होकर अग्निको मंद पाडकर अजीर्ण दोष पैदा होनेसें अनेक व्याधियोंको जन्म मिलता है, उस करतें भी अनंत गुणा नुकशान करनेहारा ये अत्यंताग्रह पूर्वक छोडने लायक बताय गया देव द्रव्यका भक्षण, विनाश या बेदरकारी है. वास्ते ज्यौं बन सके त्यौं पाक दानत रखकर उक्त द्रव्यकी विवेकसें रक्षा या वृद्धि करनी, जिस्सें एकांतिक और आत्यंतिक ऐसा तात्विक मोक्षरुप लाभ होवै.

जैसा देवद्रव्य वैसाही ज्ञानद्रव्य आश्री भी समज लेना; क्यौं कि वो देवद्रव्यसें ज्ञानका अभ्युदय हो सकता है, और वो सम्यग ज्ञानके प्रभावसें वस्तुतत्त्व यथार्थ जान बूझकर समझा जाता है,

जिरसें बहुत करकें दोप के दावसें छूटकर आत्माका बचाव कर लिया जाता है. अन्यथा अनेक दोपों के संकटोमें बेरबेर गिरनेका वरुत आ जाता है; वास्ते उक्त द्रव्य के सदुपयोग पूर्वक उनकी रक्षा या वृद्धि भी देवद्रव्यकी तरह विवेक और खंत रखकर करनी जिरसें पवित्र शासनकी दिन प्रतिदिन उन्नति हुवा करे.

उ. दोनु प्रकारके द्रव्यसें साधारण द्रव्य तर्फ कम ध्यान खींचने लायक नही है; क्योंकि उन दोनुकों पथ्याहारकी तरह पुष्टि-पुष्टि देनेहारा साधारण द्रव्य है. सच्ची रीतिसें वो उभयकों पुष्टि-जनक होनेसेंही साधारण कहा जाता है. वास्ते साधारण द्रव्यकी पुष्टि करनेहारेकों पूर्व उभयकी पुष्टिका फल मिल सकता है. और साधारण द्रव्यका लोप करनेहारेकों पुर्वोक्त उभयकी हानिका फल मिलता है.

प्रसंगपेर कहना मुनाशीब है कि आजकल साधारण खातो बहुतही डूबता हुवा होनेसें दूसरे खातेकों भी बहुत करके धका लगता है; वास्ते दूसरे खाते करतें भी साधारण खातेकी तर्फ भव्य प्राणियोंकों खास ज्यादे लक्ष देनेकी जरुरत है. कितनेक अज्ञानी जीव तो अपने संबंधीओंके मरन पश्चात् कुछ रकम गोलमोल कहकर या कुल रकम धर्मादेमें कहे बाद भी आप अपनी मोज मुजब उस द्रव्यका उपयोग करकें आपकों निर्दोष मानता है, सो न्याय युक्त नहीं. दृष्टांतरुप—फलाने शाहुकारका फलाने दिनसें बाकी निकाल दिये बाद जैसें उनकों व्याज सहित आखिर भरपाया—

करदेना पडता है, वैसे या उस्सें अधिक ये धर्ममहाराजका देवा समझनेका है; तथापि जो शख्स ठगवाजी करके व्याज आप पचाकर मुदल मूडी भी थोडी मुदतमें चुका नहीं देता है, उनको जरुर बहुत संसार भ्रमण करना पडता है. श्री धनेश्वरसूरीजीने श्री शत्रुंजय महात्यमें कहा है कि:—

अनुष्टुप्—छंद—

धर्मेणाधिगतैश्वर्यो, धर्ममेव निहंति यः
कथं शुभायातिर्भावी, सुस्वामीद्रोह पातकी.

यानि धर्म प्रभावसें मिली हुइ लक्ष्मी जीसको ऐसा लक्षणीवंत प्राणी धर्मकोंही लोपता है वो स्वामीद्रोह करनेहारा पापीका भला क्यौं कर हो सके ? अर्थात् वैसी बददानतवाला पापी प्राणीका बहेतर कोइ तरहसें होनेका संभव नहीं है. वास्ते बोलना वैसा ही पालना यही सज्जनताका लक्षण है. सच्च रीतिसें तो पहिले बोल बोलना—प्रतिज्ञा करनी—सो पूर्ण तरहसें अपनी शक्ति विचार कर करनी के जिस्सें पीछे उस जबानसें फसक जानेका—प्रतिज्ञा भंग करनेका वख्त न आवे. आजकल इस तरह पूर्ण विचार किये विगर ही फक्त गाडरीये प्रवाहसें प्रतिज्ञा कर भ्रष्ट होते हुवे और भये हुवे और वैसा कर आखिर महा दुःखी स्थिति साक्षात् अनुभवमें लेते हुवे बहुतसें प्राणी नजर आते हैं.

जब ज्ञानी पुरुष लक्ष्मी पैदा करनेका मुख्य साधन न्याय प्रमाणिकता ही बतलाते हैं, तब आजकल बहुतसें गँवार अन्यायको

ही मुख्य पद देकर संतोष पाते हैं, जिसके परिणाममें आजकल मतीत होती हुइ अधम स्थितिके ही भोग पडनेका वख्त बहुत करके आये विगर नहीं रहता है. या जान बूझकर पथ्य छोड कुपथ्यकों भजनेहारेकों हितसुख किस मकार होवै ? पथ्यसमान तो न्यायमार्ग है, और कुपथ्य समान अन्यायमार्ग है. तो हे भव्य-माणी ! यदि तुम इस लोकमें मत्यक्ष या परलोकमें भी विशेष सुख पानेकों चाहते हो तो अन्यायरूप कुमार्गकों छोडकर तुरंत न्यायका सीधा रस्ता पकडलो, स्वच्छंदमति तजकर शास्त्रमति भजो, अविवेक छोड विवेक आदरो, कुमतिका संग तजकर सुमतिका संग भजो ! आजदिन तक अज्ञान दशासें भूले हुवे भटके उसका पश्चाताप करके फिरसें भूल न करनेके वास्ते दृढ संकल्प करो, और दूसरे भी तुमारे मित्र या संबंधी जनोंमें अच्छी आचरणासें छाप लगाओ, उनकों अच्छी हितशिक्षा दो कि जिस्सें वै भी अच्छे मार्गपर वहन करने लगे.

६० कदाग्रह दूर कर जिस मकार अपना अच्छा होवै उस मकार वर्त्तना; इतनाही नहीं मगर अपना वहेतर होता हुवा या वहेतर भया हुवा देखकर दूसरे भी अपनने ग्रहण किया हुवा उत्तम मार्गपर चलने लगे, उस मुजब वर्त्तना. अपन शोच लेवै कि अपने अपना वहेतर अगाडीपर कर लेवेंगे, मगर वो केवल मोहभ्रमही मान लो; क्यौंकि मत्यक्ष अपना होते हुवे विगाडकी तर्फ वेदरकारी वता करके भविष्य पर सुधरनेकी उमीद किस वहानेसें रखनी

चाहियें ? वास्ते वैसी उपेक्षा बुद्धि न रखतें ज्यों जलदी जलदी अपनी भूल सुधार लेकर अपना श्रेय सधाया जाय वैसे वर्त्तना यही उत्तमताका लक्षण है, और समझ भी वही सच्ची गिनी जावै. सुधरनेकी झूंठी आशापर जीते रहे हुवेकों अचानक—एकदम—बेमालुम कालने अपनी राक्षसी दाढके नीचे दबा लिया तो पीछे किसकों पूछनेकों जाना ? वास्ते " पानी पहिलें पाल बंधे तो खूब है—" ये न्याय मुजब अव्वलसेंही आपके श्रेय निमित्त उपाय शोच उपयोगमें ले लेना वही दुरस्त है.

इस मुजब आत्म सुधाराके वास्ते सचिंत और खंत वाले भव्य प्राणी सचमुच अपना हित साध सकते हैं. तात्पर्य यही है—कि देव द्रव्य, ज्ञान द्रव्य, साधारण द्रव्य या चाहे वैसे धर्म खातेके देवेसें आप मुक्त होकर दूसरे भी डूबते हुवे अपने मित्र संबंधी जनोंकोंभी मुक्त करनेकी खास उत्कंठा रखनी; और इकट्ठे हुवे देव, ज्ञान, साधारण द्रव्य या पुण्य संबंधी द्रव्यकी योग्य व्यवस्था करनेके लिये एक अच्छी व्यवस्थापक कमीटी स्थापन करनी जो, कमीटीके प्रमुख या सेक्रेटरीओंने उस उस द्रव्यकी योग्य व्यवस्था करनेमें अपनी बुद्धि शास्त्र परतंत्र रखकर विचारके जहां जहां खास जरूर हो वहां वहां उसका उपयोग कर ज्यौं ज्ञान दर्शनादिक उत्तम गुणोंकी प्रभावना होवै त्यौं करनेमें चुक जाना नहीं; और होती हुइ आशातनायें दूर करनेका पहिलेसेंही विचार रखना उपरांत उन उनद्रव्यकी रक्षा वृद्धि भी पवित्र शास्त्राम्नाय समझ कर उसके अ-

नुसार करना और उस मुवाकिक अमल करने अन्य कों सलाह देना. सारांश यह हे की श्री वीतराग वचनानुसार ज्यौं स्वपरका श्रेय और पवित्र शासनकी उन्नति होवै त्यौं द्रव्यक्षेत्रकाल भावकों लक्षमें रख करके वर्त्तना चाहिये.

यह विषय वडा गंभीर गहन और उपयोगी होनेसें विशेष रुचि भव्य सत्वोंकों इस विषय संबंधी ग्रंथ खास अवलोकन कर तत्त्व रहस्य खींचकर ज्यौं स्वपरका श्रेय होवै त्यौं सरलपनेसें वर्त्तनेका यत्न करना. धर्म रहस्य जानकर उस मुजब सरलतासें वर्त्तना यही सार है. जान लिया भी उनीकाही मंजूर व दुरस्त है; नहीं तो केवल भारभूतही समझना. सच्ची रीतिसें न्यायकों यथार्थ समजने वाला भवभीरु हो उसी मुजब न्याय पुरःसर चलनेवाला जगत्कों आशिर्वाद रुप होता है. और उनसें विरुद्ध वर्त्तनवाला शाप रुपही होता है, प्रमाणिकतासें चलने वाला मनुष्य सरल हो सक्ता है मगर अप्रमाणिकतासें चलनेवाला अन्यायी तो सांपकी तरह वक्रताही धारन करता है. वो मिथ्या विषसें पूर्ण होनेसें भवभीरु सज्जन उनका संग या विश्वास नहीं करते है. उनसें दूर ही रहेते है या उनकों दूर करते है. न्यायके अर्थी जीवोंको समजनेके वास्ते एक दृष्टांत बताते है कि—श्रीमान् पितादिककी लक्ष्मीका वारसा मिलानेमें उनके पुत्र वगेरः जितने दर्जे हक्कदार है उतने दर्जे वही पितादिकका देव-ज्ञान—साधारण या चाहे वो धर्मादा द्रव्य आपकी भइ हुइ हीनपतसें लेकरके या फक्त प्रमादसेंही देना रह

नाया होवै वो वो द्रव्य देनेमें उनके पुत्रादिकका कम हक नहीं है. जब मर गये हुवे या बेभान भये हुवे मावाप आदिकका लेहना भी उनके पुत्र वसूल कर सकते हैं, और देनाभी वेही रकमसें चुकाते है; लेकीन जो शख्स केवल स्वार्थांध हो लहेना लेकर देना देनेको न चाहें वै न्याय मार्गसें दूर चलने हारे है योंही समझ लेना. वैसे अन्यायाचरणसें आखिर उन्होंकी बडी भारी ख्वारी होती हैं. जैसा आहार वैसाही उद्गार ? उस न्यायसें बुद्धि मलीन हो जानेसें वै थोडेसे वख्तमेंही धर्म और लक्ष्मीसें भ्रष्ट हो जाते हैं. या तो जबसें अन्यायमति धारन करकें अन्याय अंगीकार किया होवै तबसें धर्म भ्रष्ट तो हो गया, और जो न्याय लक्ष्मीका वशीकरण है वो न्यायको दूर छोडनेसें—अन्याय सेवन करनेसें तुरंतही यश लक्ष्मी आदिसें भ्रष्ट हो जाता है, और केवल दुःख अपयशका हिस्सेदार हो भवांतरमें महा दुःख दावानलमें सींझता है. नरक निगोदादिकमें बहुत भव भटकता है. यावत् दुर्लभ बोधी हो अनंत दुःख पाता है. ऐसा होनेसें हे सुज्ञमित्रो और बान्धवो ! जागृत हो और सद्य प्रमाद दूर कर ऐसे अनर्थसें मुक्त हो जाओ और दूसरोंको मुक्त होजानेका उपदेश दिया करो.

श्री जैन श्वेतांबर वर्गके पूज्य मुनीराज तथा विवेकी श्रावकोंको अति अगत्यकी सूचनायें.

प्रिय महाशय गण ! आप दीर्घानुभवसें जानतेही हो कि

कुसंपसें अपनी वडी भारी अवनती–ख्वारी हुइ है. पेस्तर जब श्रावक लोग सुसंपद्वारा बहुतसे व्योपार रोजगारादि न्यायनीतिसें करके अनर्गल लक्ष्मी पैदाकर, तीर्थयात्रा सद्गुरु भक्ति और साधर्मी भाइयोंकी योग्य सेवा कर, पवित्र शासनकों शोभायमान् कर न्यायोपार्जित लक्ष्मीका ल्हाव लेकरके अपना जन्म सार्थक करतें थे, तब अभी कुसंपसें करकें धंदे रोजगार–पैसे–टके–न्यायनीति और इज्जत–आवरुसें श्रावकभाइ वहुत करकें कमजोर हुवे मालुम होते हैं. ऐसी वडीभारी अवदशा होनेका मूल सबब ढुंढ निकालना वो खास जरुरतकी बात है. उसका खास कारण कुसंप अज्ञान और अविवेकही है. जहांतक काले मुँहवाले कुसंपकों दूर फेंक कर सुसंप वढानेमें न आयगा, और एक दूसरे की उन्नति मारफत शासनकी उन्नति करनेके वास्ते उदारतासें योग्य कदम भरनेमें आवेंगे नहीं, वहांतक जैनोंकी स्थिति सुधारनेकी या सुधरनेकी आशा रखनी व्यर्थ है. आजकल कुसंप और अविवेकके जोरसें अकेलेकाही पेटपोषण करनेका स्वार्थ (Seifishness) और वे परवाही (Indifference) ये दोनू बडे भारी दोषोंने श्रीमानोंके दिलमें भी निवास कर लिया है. इसका परिणाम यही आया कि–वै अपने सगेभाइ या साधर्मीभाइयोंकों दुःखी स्थितिमें प्रत्यक्ष देख लेवें तो भी परोपकार बुद्धिसें उन्होंका उद्धार करनेके वास्ते सोचाविचार करने जितना भी नही कर सकते हैं. ऐसें एक जैन द्रव्यवान् होने पर भी वजाने लायक अ-

पनी लायक फर्जसें जब वे बिलकुल विमुख रहते हैं—मतलबमें दुःखी भाइयोंकी कुछ भी फिक्र दिलमें नहीं धरते हैं, तब ये स्वाभाविक है कि अन्यद्रव्यहीन दुःखी श्रावकवर्ग भी उन्होंकी तर्फ अपना अभावही प्रदर्शित करे! इस प्रकार कुसंपके कारण बढनेसें कुसंप भी बढताही जाता है. इस मुजब दिन प्रतिदिन बढते हुवे कुसंपके मुल काटडालनेके लिये जहां तक स्वार्थी श्रीमानवर्ग अपने खास खास कर्त्तव्य लक्षमें लेकर पूर्ण फिक्रके साथ भगीरथ यत्न नही करेंगे और जिस द्रव्यको यहां ही छोडकर रीते हाथसें अपने परभवको चला जाना है उस अस्थिर द्रव्यका मोह छोडके उसद्वारा अपने दुःखी होते साधर्मीयोंका बने उतना उद्धार नहीं करेंगे वहांतक दिनप्रतिदिन होती जाती करुणाजनक स्थिति कभी नहीं सुधर सकेगी. ऐसा निश्चय पूर्वक समझकर दाने दिलके मुनिराज और शासनका हित चाहनेहारे श्रावकजन अपनी अपनी उचित फर्ज बजानेको तत्पर होकर जिस प्रकारसें ये कुसंपका सडा दूर हो सकै उस प्रकार करके भगीरथ यत्न सेवन किया जायगा तब आशा है कि वो काम समस्त जैन कॉमको बडे भारी आशिर्वाद-रूप होवेगा. निःस्वार्थपणे प्रयत्न करनेवालेको अतुल लाभ संपादन होवेगा. और शासनकी बडी उन्नतिमें दूसरे अनेक जीवोंको बेरबेर लाभ हो सकेगा. प्यारे भाइयो! आप यदि अन्य निरुपयोगी उपर टिप्पेकी झूंठी धूमधाम तजकर यह समयोचित सूचना लक्षमें लेके उसमें आपका सच्चा हित समझ विवेकसें वर्त्तन रखोगे तो खसूस

समझ लेना कि उससें तुम थोडेही श्रमसें भी वडा भारी लाभ प्राप्तकर सकोगे. अपनी मतिकल्पनानुसार चाहे उतना अच्छा काम करनेसें भी वीतराग वचनानुसार काम करनेमें ही वडा भारी फायदा है. अक्षय सुख मिलानेकी इच्छा करनेवालेकों तो जरुर ज्ञानी के वचनानुसारसेंही वर्त्तन रखना श्रेयकारी है. स्वमति कल्पनानुसारसें वर्त्तन रखनेसें तो जीव अनंतकाल भ्रमण किया तो भी अवतक उसका अंत नहीं आया. वास्ते निश्चयसें माननाही लाजिम है कि शास्त्राज्ञा मुजव परमार्थ बुद्धिसें समयादिक उचित कार्य ही करनेमें सच्चा हित समाया गया है. इस कानूनसें विरुद्ध वर्त्तन रखनेवाले सव कोइ आपत्ति के भागीदार होते हैं; वास्ते अपनकों अपना सच्चा हित चिंतन करना यही अपना खास कर्त्तव्य है. ज्ञानी पुरुष तो परमार्थवृत्तिसें सुलटाही मार्ग वतलाते हैं; तथापि अपन अपनी मतिसें उलटे हो उनकी आज्ञाका उल्लंघन करते है. तो उसमें अपने किरणातकाही दोष है.

२ आप सभी जानते ही हो कि अपन सभीमें काले मुंहवाले कुसंपने वडाभारी जुल्म कर दिया है, उसकों निर्मूल करनेके वास्ते आगेवानी करनेवालोंकों अवश्य तत्पर होना ही मुनासिव है. नहीं तो वो उनके अपार वुरे फल वतलानेमें वाकी न रख्खेगा. वास्ते "पानी पहेलें पाल वंधे तो खूव हैं." ऐसी दीर्घदृष्टि—समय जाननेवालेकी खास नीति है. तो अव ज्यादे देर करनी छोडकर जल्द जाग्रत होनेकी जरुरत है; यदि ऐसा न किया जायगा तो वेशक

आगे बहुत ही पिछताना पडेगा.

३ अपनमें विवेककी बडी भारी तंगी मालुम होती है, वो अब खास सुधारनेकी जरुरत है. अविवेकसें अपन दूसरेके सद्गुणोंकों भी ग्रहण नहीं कर सकते हैं. अरे! अपन उस्की पुष्टि करनी भूल कर विवेककी बडी भारी खामीसें अपन उलटे उसकी निंदा-बदी भी करने लगते है; वास्ते जो वीतराग वचनानुसार सत्य है, उसकों सच्चे दिलसें सत्य समान कबूल करना और आदरना वो अवश्य अपनकों शीखनाही चाहियें.

४ वीतराग वचनानुसारसें सत्य क्या है और क्या होसके? वो जाननेके वास्ते श्री हरीभद्रसूरी, श्री हेमचंद्रसूरी तथा श्रीमद् यशोविजयजी प्रमुख धर्म धुरंधर पुरुषोंने सर्वज्ञ वचनके मुजब रचे हुवे प्रमाणिक ग्रंथोका बारीकीसें अवलोकन करनेकी खास जरुरत है. लेकिन बडी अफसोसीकी बात तो यही है कि अैसें ग्रंथोंका तो कहनाही क्या, मगर बहुत सरल सादी-सीधी भाषामें सत्य सर्वज्ञ प्रणीत धर्मकों प्रकाशमें लानेकी बुद्धिसें लिखनेमें आये और आते हुवे लेखोंकों पढनेकाभी मोह बश जनोंसें नहीं बन सकता है, तो उस संबंधी धटित शोच विचार कर अपनी भुल ढुंढ निकालके उनकों सुधारनेकी तक तो वै बिचारे किस तरह हाथ कर सके?! अद्यापि भी अैसे बारीक़ समयमें महा गाढ मोह निंद छोडकर कछु जाग्रत हो केवल परोपकार बुद्धिसें लिखे गये उत्तम लेख वांचनेकी अमूल्य तक यदि न जाने देनेमें आवे और उनमेंसे बन सके

उतना परमार्थ ग्रहण करनेमें आवै, तो उमीद है कि समयानुसार वैसे मूढ जनोंको भी हित हो सकै.

५ उपकारी महात्मा चाहे इतनी महेनत लेकर परम पवित्र सर्वज्ञ प्रणीत धर्मको प्रकाशमें लानेके वास्ते विविध धर्म विषय संबंधी अच्छे अच्छे लेख लिख कर श्रोता वर्गका या सामान्य रीतिसें समस्त जैन कोमका ध्यान खींचते है; परंतु जहांतक अपने लोग वेपरवाह रखकर अपना परायेका सच्चा हित किस प्रकार हो सके ? वो जाननेके वास्ते मतलब जितनी भी महेनत लेकर उनको पढे सुने भी नहीं, या पढे सुने तो उस संबंधी चाहिये उतना विचार नहीं करे, और कभी विचार कीया तौभी जहां तक उसी मुजब आचरण करे नहीं; वहांतक अपना पराया हित–कल्याण क्यौं कर हो सकै ? अमेरीका जैसे प्रदेशमें एक जाती अनुभववाले मित्रके मुँहसें सुने लिये मुजब खेडूत कृषिकार लोग भी अखबारोंको बडी आतुरतासें पढने के वास्ते तत्पर रहते हैं, और यहांपरतो अपने प्रत्यक्ष अनुभवसें जान सकते है कि जनसमुदायका वडा हिस्सा तो स्वहित साधनेमें भी वे परवाह या आलसु बन रहता है. अहा ! असी सत्यानास निकालने वाली वेपरवाह छोडकर अपने मुमुक्षुजन (साधु साध्वीअें या श्रावक श्राविकाअें) समयकी तर्फ पूरे तौरसें निगाह देके अपना अपना हित साधनेके लिये उत्कंठित रहवै तो उमीद और आशा है कि जरुर जल्दी या देहीमेंभी अपनेमें कुछ भी सुधारा हो सके सही ! सच्चा सत्य जो समझा जाय तो मनुष्य

के अल्प आयुष्यमें भी आत्मसाधन करलेना वो कुंडीमेंसें रत्न-
निकाल लेने जैसा सहल है; लेकिन वो हस्त करनेकी फिकरवाला
हो उन्हीसें हो सकता है. जो आलसु होगा उनको तो बडी भारी
मुश्केली वाला मालुम होगा. अपनी अनादीकी भूलोंको अच्छी
तरह जाननेके वास्ते पूर्ण ज्ञानकी जरुरत है. सम्यग्ज्ञानके प्रवेशसें
विवेकसें क्षणिक और असूचीमय यह जड देहपरकी ममता छोडकर
अपना कर्त्तव्य करनेमें किंचित् भी पीछा पाँव हठाना दुरस्त नहीं
है. ऐसा सोचकर 'देहे दुःखं महाफलं—' यानि समझकर समतापू-
र्वक धर्मकरणी करनेमें देहकुं कुछभी दुःख होता हो तो उसको सहन
करलेना सो वडा फलदायी है; क्योंकि सम्यग् ज्ञान और सम्यग् क्रि-
याके जोरसें संसारसागर तिरना सुलभ हो जाता है. और वोही ज्ञान
तथा वोही क्रिया के अभावसें चतुर्गति संसारमें अनेक दफे भ्रम-
णही करना पडता है; वास्ते अव्वलमें तो सम्यग् वस्तुतत्त्व जान-
कर उत्तम विवेकसें उसी मुजव आचरण रखनेकी खास जरुरत है.
इन दोनूमेंसे एककीभी उपेक्षा करनी वडी दुःखदायी है. तो दोनूमें
बेपरवाह रहने वाले मूसलाग्र बुद्धिवंतका तो कहनाही क्या? जैसें
मंत्रशास्त्री मंत्रका पूर्ण प्रकार प्रयोगकर विषधर सांपका भी विष
निकाल सकता है, वैसेंही विवेकी जन सम्यग्ज्ञान—क्रियाके जोरसें
कर्मरुप सांपका भी झहर दूर कर सकते हैं. किंतु अकेले ज्ञानसें या
अकेली क्रियासें वो नहीं दूरकर सकता है. वास्ते प्रथम सन्मार्गका
पूर्ण प्रकार भान करके अपने शत्रुप्रमादको छोड पूर्ण प्रेमसें मोक्ष नि-

मित्त दोनूका सेवन करना न भूलना चाहिये ऐसा समझ करें कि-'महाजनो ये न गत स पंथा-शिष्ट-सुविहित पुरुषोंने जो मार्ग हाथ धरलिया है वही मार्ग कल्यानकारी है.'

६ अपनी अंदरका वडा हिस्सा तो इतना जडताग्रस्त है कि उन्होंकी जडता दूर करनेमें युग के युग चले जाय तोभी पार आना वडा मुश्कील है; परंतु जो छोटे वालकोंको या युवकोंको धर्मशिक्षण देनेका अभी तुरंत अच्छे तोरसें शुरु करनेमें आवे तो उसका वहुत अच्छा परिणाम आनेका संभव रह सकता है. यदि मावापोंने उत्तम शिक्षण प्राप्त किया होवे तो वे अपनी संततीकों भी अच्छी धर्मीष्ट वना सकते हैं; मगर वे खुद तालीम रहित होवे तो उनकी संतती भी वैसीही रहती है. आजकल के मावाप जब एक वखत आप खुद पुत्र पुत्रीकी अवस्थामें थे तब उन्होंकों अच्छा शिक्षण नहीं मिलसका, उससें वे उत्तम शिक्षण या धर्मशिक्षण उनके वच्चोंकों देनेमें विजयवंत न हो सके. इसी तरह अभीकी संततीकों अच्छा मजबूत शिक्षण देनेमें नहीं आयगा तो वैभी एक देशीय-एक लक्षीय शिक्षण मिलनेसें संसारकी असारता, वैराग्य, गांभिर्यता, प्रौढता आदिसें विमुख रहकर सहनशीलता खामोश आदि उच्च गुण कि जो व्यवहारिक कार्य कुशलतामें जरुरत के हैं, वे प्राप्त नहीं कर सकेंगे. वास्ते जो अभीसें ही समयानुकूल शिक्षण माता पिता या गुरुजनोंकी तर्फसें वालकोंकी रुचि अनुकूल सादी सीधी सरल भाषामें दिया जाय तो वहुत करकें वै सद्गुणी-धर्मीष्ट

मावाप बनकर अपनी भविष्यकी प्रजा तर्फ अपनी पवित्र फर्ज अदा करनेमें नहीं चूकेंगे. वालकोंकी अति कोमल और फलद्रूप हृदय भूमिकी अंदर यदि समयोचित अच्छे शिक्षण के बीज बोनेमें आवै और पीछे दररोज खंतपूर्वक सूक्त वचनजलका सींचन करनेमें आवै तो उन्होंमेसें एसे तो धर्म के अंकुर स्फुरायमान होवें कि उन्होंमेसें हरएक साक्षात् कल्पवृक्षकी बराबरी–हरीफाइ कर सके! हरएक जैन के अंगनमें ऊगे हुवे ऐसे कल्पवृक्ष कैसे शोभायमान होवे? लेकिन लक्ष्य कौन देता है?

७ ऐसे अति बारीक समयमें भी श्रीमानोंसें लगाकर गरीब लोग तकमें कितनेक निकम्मे–फजूल खर्चे–जैसें कि नाच, नाटिक, आतशबाजी, किनकौए. जलूस, व्यसन, आदि बे फायदे के खर्चे (फक्त अच्छा मालुम होने के सबबसें) सैंकडो–हजारों रुपै ऊडा देनेमें आते हैं, उस तर्फ श्री संघ या ज्ञातिके अग्रेश्वरोंको खास अंकुश रखनेकी जरुरत है. ऐसा लखलूंट खर्चने के वास्ते किसीको भी आग्रह करना–करवाना न चाहियें. मुनीराजको भी ऐसे निकम्मे खर्चके बदलेमें जिस बातसें जैनोंका कल्यान होता हो अगर हो सके वैसे सुलभ मार्ग–हेतु उन्हीको युक्तिके साथ समझाने चाहियें. दृष्टांत रुपकि सात क्षेत्रोंमेसें दुःख पात्र भये हुवे क्षेत्रमें ज्यादा विवेकपूर्वक व्यय करनेका उपदेश देना चाहियें. जो एकमतसें शासनकी शोभा बढ सकै ऐसे कदम हरएक स्थलपर भरनेमें आवै तो बेशक थोडे ही वख्तमें एक अच्छा अगत्यका तफावत हो

सकै; मगर याद रखना चाहिये कि, ये सभी विवेककी खामी-न्यूनता दूर करनेसेंही सिद्ध हो सकै, अन्यथा तो आकाशकुसुमवत् असंभवितही समझ लैना. अरे! लाभ हानीको भी पूरे नहीं सोचनेवाले-सच्चे वनिये ही नहीं कहे जावै, तो सच्चा जैनवीर सर्वज्ञ पुत्र तो कहे ही क्यौं जाय? एक स्वच्छंदपनसें चलनेरुप अविवेक ही दूर किया जाय, और परम पवित्र परमात्माके आगम अनुसारसें निःशंक पूर्वक पूर्ण श्रद्धा-प्रेमसें वर्त्तनेमें आवे तो कुल जैनशासनमें हर हम्मेशां दीवाली हो रहवै. अहा! ऐसा शुभ समय आया हुवा अपन साक्षात् कब देख सकेंगे? अपन कम बोलकर ज्यादा अच्छा कर बतलाना कब शीखेंगे? अपनमें घुसी हुइ मलीनवृत्तियोंका कब अंत आयगा? अपन प्रसन्न चित्तसें अपनी फर्ज समझकर अदा करनेमें कब भाग्यशाली होयेंगे? अपन एक दूसरेकी तर्फ अमृत नजरसें देख गुन ग्रहण करलेनेका कब शीखेंगे? और अपन वैसे कायमके अभ्याससें दोषदृष्टिकों तदन कब दूर कर सकेंगे?

८ अपने श्रावक लोगोंमें मरणके वख्त पुण्यदान कथन करनेकी रीति चल रही है, उस मुजब पुण्यदान किये बाद तुरंतही उनद्रव्यकी चाहियें वैसी व्यवस्था करदेनी चाहियें, उसके वदलेमें वो द्रव्यके देवेमेंही आप दान पुण्य कथन करनेवाले डूब जाते हैं और उनके पापके छींटे औरोंकोभी लग जाते है; वास्ते वैसे दान पुण्य निमित्त निकाले गये द्रव्यका तुरंतातुरंत निर्णय किये गये

खातेमें या पुण्य स्थलमें वापरकर खुलासा कर उनका चेप ज्यादा न पहुंचने पावे वैसा जगह जगह वंदोवस्त होनेकी खास जरुरत है, यह बात लक्षमें रखनेही लायक है. स्वपरकों डूवते हुवे अटकाकर धर्म निमित्त निकाले गये द्रव्यका खुलासा कर अच्छा उपयोग करना—ये स्वपरकों तिरने तिरानेका रस्ता होनेसें अवश्य आदरने लायक है. वास्ते सुखके—अर्थी जीवोंकों इस वावतमें प्रमाद करना अयोग्य है.

९ दिनपर दिन समय कठिन आता जाता है. उसमें श्रीसंघके आधारभूत मुख्यतासें श्री जिनराजप्ररुपित आगम और जिनेंद्रजीकी प्रतिमाजी हैं. इन दोनूकी तमाम आशातनाअें दूर कर विशेष विनय करनाही योग्य है. शास्त्र पुराने होकर उन्होंका विच्छेद न हो जावै, और जिर्ण चैत्य भी उद्धार किये बिगर पतन स्थितिकों न भेट पडै, उसीकी अच्छी तरह निगाह रखनीही चाहियें. मूर्ख लोग लाभा लाभ न शोचते केवल यश—नामना—कीर्तिके वास्ते मरते हैं; लेकिन जिर्णोद्धारसें कुछ कम लाभ या कम नामना नहीं हैं. जिर्णोद्धारसें तो अमर नाम होकर अक्षय यश और सुख मिलता है. वास्ते स्वच्छंदता छोडकर शास्त्र नीतिसें अक्षय लाभ लेनेके लिये यत्न करनाही दुरस्त है. लखलूंट खर्च यानि ज्ञातिभोजन—नाच, मुजरा, खेल, तमाशे—आदि करनेके बदलेमें अैसे वारीक वख्तमें दुःख पाते हुवे साधर्मी भाइयोंकों मदद देकर उन्होंकों उद्धार करनेमें वहुत लाभ समाया गया है, तो सुमती धारणकर

स्वच्छंदता छोड स्वपरका हित होवै वैसा मार्ग सेवन करना यही शासनके उदयका सत्य मार्ग है.

१० आजकल विवेककी न्यूनतासें मावाप बहुत करकें बुरे या झूठे व्हेमोंसें भरे हुवे तथा बाधक रीति रिवाजोंको विलगे हुवे मालुम होते हैं, उन्होंको सुधारनेका काम बडा कठीन है; परंतु नइ पैदा होती हुइ मजा—जैन बालकोंके और युवकवर्गके वास्ते धर्म-शिक्षण—नीति,—न्याय—सत्य—प्रमाणिकता संबंधी अच्छी तालीम देनेमें आवे तो कम महेनतसें अच्छा सुधारा अल्प समयमेंही होजानेका संभव है; वास्ते हरएक जगह विचरते हुए साधु मुनीराज और तालीम पाये हुवे विद्वान श्रावक इन संबंधी अपनी खास फर्ज सोच—समझकर चाहियें वैसा अच्छा प्रयत्न करै तो जरुर कुछना कुछ सुधारा हुवे बिगर न रहवेगा. वर्त्तमान समयमें कितनेक जैन युवक लेख लिखकर उच्च आशयसें जैनोंकी आधुनिक—अभीकी स्थिति सुधारनेके वास्ते कुछ महेनत करते हुवे मालुम होते हैं और ऐसा करनेमें उन्होंको प्रयत्न तद्दन निष्फल होता होवै ऐसा कहाजावै वैसा तो नहीं है; तथापि इतना तो कहा जा सके वैसा है कि आजकल विद्वान मुनिराज या श्रावक, बडी उमरके जैनभाइ, और भागिनीयोंकों लेख लिखकर या व्याख्यान देकर बोध करनेके लिये जितना श्रम उठाते है उतना श्रम यदि संपूर्ण खंतसें कोमल वयके जैन बालकोंके कोमल मगजमें पवित्र जैनतत्वोंका रहस्य बहुतही सरल—सादी भाषामें समझानेके वास्ते,

उन्होंके दिलमें ठीक ठीक ठसाजाय वैसा असरकारक प्रबोध देनेके वास्ते समयोचित विचारे तो आजकल कोशके कोश भरकर उपदेशजल, जिनकी हृदयभूमिमें उतरना मुश्कील है वैसे अशिक्षित शुष्क जैसे जनोंको सींचनेसें कुछ काल गये बादभी जिन अच्छा लाभ नही मिल सकता है उस करतेंभी बहुत और उत्तम लाभ अल्प वख्तमें बालवयके कोमल रुंखडेको ज्ञानजल सींचनेसें अवश्य मिलनेकी बडी भारी आशा बंधी जाती है. आजकलके युवान तथा बुद्धोंको मार्गपर आनेके वास्ते जाग्रत करनेका एक अच्छा रस्ता ये मालुम होता है कि आजकल जैनोंमें ज्यादे फैलावा पाये हुवे जैनधर्म प्रकाश, कॉन्फरन्स हैराल्ड, आत्मानंद प्रकाश और आनंद जैसे मासिक तथा साप्ताहिक जैन, जैनविजय, जैन गेझट वगैरः अखबारोंमें जो जो अपने पवित्र धर्म व्यवहारानुयायी उत्तम लेख लिखाकर प्रसिद्ध होते है, उन उनके सभी लेख सभा समक्ष कोइ विद्वान मुनी या श्रावकद्वारा पढवाकर और व्याख्यान बंचाया जाता होवे वहां व्याख्यान बांचनेवाले मुनीजन भी वे लेखके विषयानुसार अच्छा असरकारक विवेचन देकर श्रोताजनोंका सन्मार्गकी तर्फ लक्ष खींचनेका सतत यत्न करै तब समयानुसार आजकलके श्रोतावर्गको ऐसा अच्छा लाभ होनेका संभव है. यह बातका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव मिल चुका है, और वैसा अनुभव मिलानेका प्रसंगवशात् विद्वान मुनीवर या श्रावक जन धारेंगे तो बहुत अच्छा लाभ मिला सकेगा ऐसी उमेद रहती है.

११ आजकल बहुत करके श्रावक लोगोंकी सांसारिक स्थिति कुछ ज्यादे बारीक होनेसें उन्होंकों समयोचित मदद देनेका भी उदार दिलके-दूले श्रीमान् श्रावकोंका अवश्य कर्त्तव्य है. इस तरह समयानुसार मदद करनेसें पूर्वपुन्य के योगसें प्राप्त भई हुइ लक्ष्मीके सार्थक्य साथ परलोकके वास्ते महान् सुकृतका संचय होता है. जिस्सें अंतमें देव मनुष्य संबंधी उत्तम भोग सुख कर वे अक्षयसुखके स्वामी होते हैं. अपने श्रीमान्-धनाढ्य श्रावक विवेकद्वारा सोच विचारकर ऐसे बारीक वख्तमें सुन्ने चांदीपर लग रही मूर्छा कमती करके श्री सर्वज्ञ प्रभुने बतलाये हुवे उत्तम क्षेत्रमें शुभ परिणामपूर्वक बीज बोने लगै तो दुगना तीगनां नहीं मगर सो गुनोसें बढकर अनंतगुने फल तक-फल पैदा किया जावै. और द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकों यथार्थ देखकर समयानुकूलपनेसें वर्त्तन चलानेसें श्री जिनाज्ञा आराधक भी हो सकते हैं. ऐसा समझकर सज्जनोंको ऐसा अति शुभ और शासनकों हितकर मार्ग सेवन-आराधन करनेमें नहीं भूलना चाहिये; क्योंकि ज्ञानीपुरुष कहते है. किः-लक्ष्मी जलतरंग जैसी चपल है, यौवन पतंगके रंगवत् तीन चार दिनहीमें उड जानेवाला है, और आयुष शरद्ऋतुके बद्दल समान अथिर है. तो हे भव्यजनो! अंतमें अनर्थ क्लेशादि मूलक द्रव्यकी अंदर किसलिये घभडाकर मर जाते हो? यदि तुमारा कल्यान करना चाहते हो तो परमोत्कृष्ट सर्वज्ञभाषित दानादि उत्तम धर्मका सेवन कर दश दृष्टांतसें दुर्लभ मानवभवकों सार्थक करलेनेमें नहीं

चूकना. धर्मकार्यमें विलंब-प्रतिबंध-प्रमाद करना योग्य नहीं. क्योंकि कहा है कि-"श्रेयांसि बहु विघ्नानि." वास्ते जो कुछ शुभ कार्य आत्मकल्याणके निमित्त करना होय सो तुरंत कर लो. कल करनेका इरादा रख्खा होवै सो आजही कर डालो; क्योंकि कलकों कालका भय है. जो कभी किसी भाग्ययोगसें ऐसा शुभ अध्यवसाय हुवा तो उसकों सार्थक करनेके वास्ते एक क्षणभरभी प्रमाद करना लायक नहीं है. क्योंकि कालकी गति गहन है. सो छाउं के बहानेसें तुमारा छल देखता फिरता है; वास्ते उनका विश्वास करनो योग्य नहीं है. यह प्रस्तुत समयोचित सूचनाको अनादर न करतें उन द्वारा बन सके उतना लाभ हाथ करनेमें चूक न जाना चाहियें. सुज्ञेषु किं बहुना ?

१२ अहो ! आजकल श्रीमंत लोग भी कैसे मुग्ध बन गये है कि, सर्वज्ञ भाषित शास्त्रानुसारसें तपासनेसें अपनकों प्राप्त भइ हुइ लक्ष्मी पूर्वमें किये हुए सुकृत्य-सुपात्रदानादिके ही योगसें मिली है, और उदार दिलसें अबी भी वो प्राप्त भइ हुइ लक्ष्मीका विवेकद्वारा व्यय करनेसें ही उसका सार्थक्य तथा भवांतरमें महान् लाभ होय वैसा है; तथापि मुग्ध तवंगर लोग केवल मोहनस्ससें मशगुल रहकर अपन स्वच्छंदी नाद मुजब वर्त्तन चलाये जाते हैं वो किसी तरहसें प्रशंसापात्र गिनाया जावै वैसा नही हैं. क्यों कि शास्त्रकारोंका तो एसाही फरमान है कि-"आणाजुत्तो धम्मो"-श्री सर्वज्ञ प्रभुके हुकम मुजब किया हुवा

धर्म स्वपरकों हितकारी होता है; किंतु केवल आपमतीसें किया धर्म हितकर नहीं होता है. द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकों पूर्ण प्रकारसें लक्षमें रखकर उचितमार्ग सेवन करनेके लिये श्री अरीहंत प्रभुकी नीति है. वास्ते उच्चपदाभिलाषी सज्जनोंकों सर्वज्ञ प्रभुजीने परम करुणाद्वारा बताई गई ऐसी अनूपम नीतिकों अनुसरके चलनेकी तथा अप्रिय स्वच्छंदी—आपखुदी आचरण छोडदेनेकी ही आवश्यकता है. अभी या पीछे भी स्वच्छंदता छोडकर जिनाज्ञा मुजब वर्त्तन चलाये बिगर जीवका मोक्ष होनेका ही नहीं. तो अभी सामग्री विद्यमान होने परभी प्रमाद करना ये किसी रीतिसें आत्माकों हितकारि है ही नहीं.

१३ अहा ? आजकल जीवमात्र प्रथम तो अपनी अपनी फर्ज कवचित् ही समझते हैं, और समझकर प्रमादकों छोड कोइ विरले नररत्न सन्मार्ग पर वहन करते हैं अर्धदग्धोंकों तो समझाने वास्ते ब्रह्मा या वृहस्पति भी असमर्थ हैं, तो फिर अपन तो उन्होंकों किस तरह समझा सकेंगे ? स्वल्पमें कहदेवै तो, जीव जैसा खाली हाथसें आया है वैसा ही पीछा रीते हाथोंसें चला जानेवाला है. अरे ! आप खुद भी प्रत्यक्ष अनुभवसें ऐसा जान—देख सकता है; तथापि ऐसा दुर्लभ सामग्री सफल करनेके वास्ते कुछ भी चाहियें वैसा नहीं कर सकता है, यही महान् आश्चर्यसूचक वार्त्ता है ? झूठे मान लिये स्वार्थकी खातिर तो बडा भारी भगीरथ यत्न करता है, उस वख्त तो प्राणवत् प्रिय द्रव्यकों भी पानीकी तरह

व्यय करडालता है, जरुरत होवै तो चाहे वैसे की खुशामत भी करता है, यावत् दासत्व भी स्वीकार लेता है. परंतु अपना सच्चा स्वार्थ साधनेके वख्तमें तो गरीयार बहेलकी तरह सत्वहीन—कायर—पुरुषार्थ विगरका वन जाता है, ये क्या ओछि शरमकी बात है? मगर खेर ! संपूर्ण ज्ञान विवेककी खामीसें मनुष्य मात्र भुलका पात्र होता है. या विवेकदृष्टि विगरका मनुष्य भी पशु समान गिनाया जाता है. तो अब तकभी कुछ विवेक लाकर यह दश दृष्टांतसें दुर्लभ मानव भव वगैरः विशिष्ट सामग्री सफल करनेकी इच्छा हो तो अब ज्यादे तोरसें सावधान होकर प्रमाद शत्रुके तावे हुए विगर अपना तन, मन, धन आदिको सदुपयोगसें स्फुरायमान करनेके लिये भारी प्रयत्न करनेकी खास जरुरत है. जन्म, जरा, मृत्यु, आधि, व्याधि, उपाधि, संयोग और वियोगके संबंधवाले अनंत दुःखमें सर्वथा रहित शास्वत सुख संपादन करनेकी चाहत वाले भव्य जीवोको खुद विचार करलेना ही दुरस्त है कि कोइ भी भारी अगत्यका कार्य किसीने कबी कुछ भी स्वार्थ भोग दिये विगर सिद्ध किया है ? उसके उत्तरमें 'ना किसीने नही किया !' बस यही कहना पडेगा. तब क्या मोक्ष संबंधी अनंत सुख अपन अपने आपसे ही तन मन धनके भोग दिये विगर ही क्या सहज साध शकेंगे ? ना कबी भी नहीं. तब मेरे प्यारे भाइयो ! आजकल चलती हुइ अंधाधुंधी यानि अपनी अपनी मोज मुजबका वर्त्तन अैसाका अैसा कहांतक चलाये जायेंगे ? मुनिजन मोजमें आवै

ऐसा उपदेश देवें और गृहस्थ–श्रावक उन महात्माओको मन प्रसन्न रखनेके वास्ते उत्सव महोत्सव कर एकठो अच्छा ज्ञातीभोजनरुप कलस चढाकर अपने जन्म या द्रव्यका सार्थक हुवा मानते हैं यह कैसा आश्चर्य है ! तथापि अपन वैसे भाग्यशाली महात्मा और श्रावकोंको शांतिसें ही कहेंगे कि, भाइओ ! जब अपने बहुतसे जैनी भाइ भागिनी या कुटुंबी जनोंकी बहुत बारीक स्थिति आ गइ है, उनको खाने पीनेके लिये भी बडी हैरानी–परेसानी हो रही है, भुखके मारे बिचारे धर्मसाधनभी नहीं कर सकते है, तब अपन क्या अपने स्वामीभाइयोंका दुःख दिलमें धरना और वैसा करकें यथाशक्ति उचित करना कराना योग्य नहीं है ? अभी जैनमात्रने अपना अपना कर्त्तव्य समझकर अवश्य दुःखी जैनोंको दाद देनी योग्य है. ये आप लोग जानतेही होगे; तदपी परभव योग्य सबल साधन साथ लेनेके वास्ते परम पवित्र परमात्मप्रणीत प्रवचनको उत्कृष्ट भावसें अनुसरनेमें किस लिये विलंब होता होगा ये समझना बहुत कठीन हो पडता है, वो आप हमकों समझानेके वास्ते तथा तद्वत् उचित विवेकसें चलकर संतोष देनेके वास्ते जितना बन सके उतना करना ने भूल जाओगे तो आपका वडा भारी उपकार अत्यंत खुसीसें मानेंगे. अरे ! समयको मान देकर चलना ये साधुजनोंका खास कर्त्तव्य है. परंतु इतनी इतनी नम्रतासें विज्ञप्ति करने परभी फक्त मानपानकी लखलूंटमें गिर कर मुग्ध हिरनके समान आज कलके प्राय:

विवेक विगरके श्रावकोंको ज्यों मोजमें आवै त्यों वर्नन चलाते और मोहजालमें फँसकर खुवार होते हुएकों यदि न रोकने लगे तो सचमुच खुद निंदापात्र हुए विगर न रहेंगे. क्या अपनेमें विश्वास रखकर आश्रय लेनेके वास्ते आये हुवे और आते हुवे मुग्ध जैनी भाइयो और भगिनीयोंकों, सर्वज्ञ पुत्रका वडा भारी विरुद धारन करके खुद अपने पिता परम पूज्य श्री तीर्थंकर महाराजके पवित्र आगमके आधारसें द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकों यथार्थ लक्षमें रखकर सर्वदा उचित सत् प्रवृत्ति करने करानेरुप उत्तम नीतिका आलंबन लेकर योग्य इन्साफ न दोगे ? अहा ! अगाडीके वख्तमें जब न्या-यासनपर विराजित हुवे चाहे वैसे कुशल लौकिके न्यायाधीशसें भी बहुत उच्च प्रकारका संतोषकारक उभय लोक सुखदायी कर्मशत्रुकों त्रास देकर सम्यग् ज्ञानदर्शन चारित्रादि अनेक सद्गुणोंकों पुष्टि-कर-न्याय श्री सर्वज्ञ महाराजके पाससें मिलानेके वास्ते भव्य लोक सर्वदा भाग्यशाली बनतेथे, तब आजकल वही सर्वज्ञके विरुद धरने-वाले आचार्य-उपाध्याय प्रवर्त्तक या पन्यास वगेरः पद्वीके धरने-हारे मुनीवर्गके पाससें उत्तम प्रकारके निष्पक्षपात इन्साफकी भव्य चकोर क्या उमीद न रख्खे ? अलबत्त रख्खे ही रख्खे. ऐसा होने पर भी जब उनकों परम पवित्र अर्हन्नीति मुजब चाहि-ये वैसा संतोषकारक न्याय न मिले, तब वै निराधार होनेसें किस-के पास जाकर पुकार करें ? यह सब बात निगाहमें लेकर जिस तरह भव्य चकोरोंका दिल प्रसन्न और परम पवित्र शासनकी

उन्नती होवै उस प्रकार आप साहब सांप्रत समयोचित सत् पथमें आपके आश्रय लेनेकों आये हुवे और आनेवाले मुग्ध हिरन जैसे श्रावकवर्गका पालन पोषण कर अनेक भव्य सत्वो के द्रव्य और भाव प्राण बचाकर गोप, महागोप, निर्यामक आदि बिरुदकों सार्थक करोंगे, तभी ही इस वख्तमें पवित्र जैनशासनकी लाज रहेगी. शासनकी लाज बढानी सो आपकेही हाथमें है. मानपानकी लख-लूंट छोडकर केवल पारमार्थिक बुद्धिसें शुद्ध वीतराग मार्ग स्वयं सेवन कर दूसरे आश्रितोंकों भी सेवन करनेकी फर्ज पाडनेसेंही लाज बढ सकेगी. परंतु जैसा चलता है वैसाही चलने देवैं, जैसा भावी होगा वैसा बनेगा वगैरः सत्य मार्ग सेवन करनेसें विघ्नकारी विचारोंसे तो प्रायः अपनी ऐसी शोचनीय दशा हो गइ है, ऐसी प्रत्यक्ष मालुम होती हुइ अपनी अवदशा दूर जाय और शुभदशा जाग्रुत होवै वैसा भगीरथ यत्न सेवन करनेकी खास जरुरत है; तथापि जब अपन केवल प्रमादके तावेदार बनकर कुछ भी सानु-कूल उद्यम नहीं करेंगे तो, कहिये साहबो! अपनी शुभदशा किस तरह जाग्रुत हो सकेगी? एक थोडासा काट निकालनेमें भी कष्ट सहन करना पडता है, तो यह तो दीर्घकालके महा प्रमाद-योगसें लिपटा हुवा जबरदस्त काट दूर करना ये फक्त बातेंही करनेसे नहीं बन सकेगा. ये कुछ लडकोंके खेल समान सहजहीमें बन सके वैसा काम नहीं है. जब लोगसंज्ञा छोडकर लोकोत्तर शैली धारन करकें राजहंसकी तरह उत्तम नीतिद्वारा सतत शुभा-

शयसें भगीरथ प्रयत्न सेवन करनेमें आयगा तभी अपने शुभोदयकी संभावना हो सकेगी. अपना शुभोदय साधने के वास्ते जो जो साधनोंकी जरूरत है वो वो शुभ साधनोंका स्वरुप सद्गुरु द्वारा समझकर-विचार-मुकररकर पूर्ण प्रीति प्रतीतिपूर्वक उत्तम उल्लास-वंत भावसें उन्होंका सतत सेवन करनेके वास्ते विवेकवंत चकोरोंको भूलजाना न चाहिये. अंतमें संक्षेपपूर्वक मुझ सज्जनोंके हितके वास्ते यावत् स्वपरके अभ्युदयद्वारा सर्वज्ञ शासनकी उन्नति वढानेके वास्ते निम्न लिखित शुभ साधनश्रेणिका स्वरुप सुगुरु समीप जाकर सविनयसें समझ और उसका पूरेपूरे तोरसें निर्णय करके उसी मुजव चलनेको यथाशक्ति उद्यम करनेके वास्ते हंस जैसे गुणग्राही विवेकी सज्जनोंको आया हुवा समय हाथसें जाने न देना चाहिये.

१ 'संप वहांही जंप' और कुसंपका मुँह काला' यह ध्यानमें लेकर कुसंपको काटनेके वास्ते और सुसंपको स्थापन करनेके वास्ते अनुकूल सामग्री सजनेके लिये भगीरथ प्रयत्न सेवन करना. सुसंप विगर अपना या पराया कल्यान सहेलतासें नही हो सकता है, और जैन शासनकी शोभा भी नही वढ सकती है; वास्ते पहिला कर्त्तव्य संप-ऐक्यता करनेकाही है.

२ दुःख पाते हुवे यानि दुःख पूरित स्थितिमें फंसे हुवे साधर्मीभाइ और भगिनीयोंको जितनी वन सके उतनी तन, मन, धनकी ताकीदसें आहूती देकर हो सके उतना उद्धार करना, और वोभी ऐसा समझकर करनाकि उन्हीके हितहीमें अपना हित

तत्वमें समाया हुवा है. परोपकार करना ये पुरुषार्थका प्रबल अंग है. धर्म धर्मीजनके आधारसे रहता है. धर्मीजनका नाश हो जानेसें फिर धर्म निराधार हुवे बाद कहां रह सकेगा ? ऐसा सम्यग् विचार करकें धर्मके अर्थीजनोंकों धर्मीजनोका यत्नसें संरक्षण करना उचित है. उस विगर धर्मको लोपका प्रसंग आ जाता है. साधर्मीरुप शुभ क्षेत्रमें अपने द्रव्यरुप बीजकों विवेकयुक्त वोने वाला अनंत लाभ मिला सकता है. ऐसा समझकर सज्जनोंकों ऐसी उत्तम तकका लाभ अवश्य हाथ करनाही योग्य है.

३ उत्तम प्रकारके व्यवहार संबंधी और धर्मसंबंधी साधर्मीयोंकों अच्छा शिक्षण देना यह सुशिक्षित सज्जनोंकी मुख्य फर्ज है. तन मन या वचनद्वारा स्वार्थकी आहूती दिये विगर कबीभी परमार्थ साध्य किया जायगाही नहीं. ऐसा समझकर सज्जन यथासंभव अपने साधर्मीभाइयोंकों मदद देनेके वास्ते उद्यमवंत रहते हैं. धनवंत धनसें और बुद्धिवंत बुद्धिसें यथाशक्ति मदद देनेहारे अनंत गुना लाभ उपार्जन करते हैं.

४ अपनी अंदरके कितनेक साधर्मीभाइ देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य, या साधारण द्रव्य संबंधीकी जोखमदारीसें अनजान होनेसें बहुत बख्त धर्मपुण्यके ऋणमें डूबे हुवे मालुम होते हैं, और उन्हीके दोष के छींटे दूसरे साधर्मीयोंकों भी लगते हैं; वास्ते वैसे भोले लोगोंकों युक्तिके साथ समझाकर, जरुरत मालुम होवे तो उचित द्रव्यकी सहायता देकर जिस तरह वे उपर कहे हुवे ऋणमेंसें छूट जाय

उस तरह अनुकंपा धारण कर वै विचारे अज्ञजनोंको उद्धार करनेके लिये सुज्ञ सज्जनोंकी मुख्य फर्ज है.

५ बाल्यावस्थामेंसेंही जैन बालकोंको (लडकेलडकीओंको) लायक शिक्षण देनेके वास्ते माता पितादि गुरुजनोंकी सबसें पहिली फर्ज है. अनुभवसें सिद्ध होता है कि, यदि जैन बालकोंको पहिलेसेंही विकश्वर होती हुइ बुद्धिके वख्त बोजारूप न हो पडे वैसा योग्य नीतिका अच्छा शिक्षण दिया जाय, तो लायक उम्मर होनेसें वही बालक उत्तम मात्रापका बिरुद धारन करके अपने और दूसरोंका बने वहांतकका सुधारा करनेमें न चुकेंगे, वास्ते उस तर्फ खसूस ध्यान देनाही मुनासीब है.

६ बाल्यावस्थामें योग्य नीतिका शिक्षण लेनेमें बेनशीब रहे हुवे अपने जैन युवकोंको स्वधर्मतत्त्व सम्यग् समझानेके वास्ते भी अच्छा बंदोबस्त ताकीदीसें करदेनेकी खास जरुरत है. विकसित बुद्धिवाले युवकोंको यदि न्याय युक्तिके साथ पवित्र धर्मतत्त्व समझानेमें आवे तो वै तुरंत समझ लेके सुलभतासें स्वीकार कर लेते हैं. बुद्धिहीन वैसा नहीं कर सकते हैं वैसा समझकर जैन युवकोंको शासनोन्नतिकी खातिर तत्त्वशिक्षण देनेके वास्ते योग्य बंदोबस्त करनेकी जरुरत है. ऐसे अशिक्षित या कुशिक्षित युवकोंको मजबूत लाभ देनेके वास्ते विवेकी सज्जनोंको विचार करनेकी खास आवश्यकता है.

७ बाल्यावस्था और यौवनावस्थाकी अंदर धर्मका शिक्षण

हाथ करनेमें वेनशीव रहे हुवे 'अर्धगत उम्मरवाले तथा बुढ्ढेभाइ और भगिनीओंको धर्मरहस्य समझानेके वास्ते प्रतिबंध रहित गाँव-गाँवमें विचरते हुवे महाशय साधुवर्ग या साध्वीवर्ग आप खुद शास्त्राभ्यास करके, शास्त्राज्ञा मुजब शुद्ध संयमकी दरकारवाले बनकर स्वाश्रित श्रावक, श्राविकाओंको धर्मरहस्यकी पूर्ण समझ पडे वैसी सादी सरलभाषामें उपदेश देना शुरु कर लेवै, और दूसरी कितनीक निकम्मी बाबतोंमें—विकथाओंमें अपना अमूल्य वख्त जाहीं न गुमाते उसका पारमार्थीक हेतुसें सदुपयोग कर लेवै. उन्हों-कों जैनोंके पवित्र आचार विचारकी समझ पाड देवें, उन्कोंके बुरे रीत रिवाजके दुर्गुण खुल्ले कर बतलावै, भक्ष्याभक्ष्य कृत्याकृत्य संबंधी खुलासा कर दिखलावै, धर्मक्रियाके हेतु समझाकर जिस प्रकार वै नियाणा रहित निर्मल चित्तसें करनेमें आती हुइ धर्म-करणीका रहस्य पाकर, प्रभुजीकी पवित्राज्ञानुसार धर्मका आराधन कर सद्गतिके भोक्ता होसकै, उस प्रकार चलन रखनेकी दरकार रख्खें, तो सुलभतासें अच्छा सुधारा हो सकै. एक समान चलन व कथनयुक्त चलते हुवे मुनीराज भव्य प्राणियोंका तत्त्वसें जितना भला कर सकै, उससें सोवें हिस्सेका भी रुखी कथनी मात्रसें नहीं किया जायगा. और ऐसा कहा भी है कि—'जन मनरंजन धर्मका, मूल्य न एक बदाम.' यानि लोगोंको राजी करनेके वास्ते ही वेष धारन करना वो तो फक्त कष्टरुपही है. संत सुसाधुजनोंका सद्वर्त्तन मात्रसें कितनेक अल्पकर्मी जीवोंका बहेतर हो सकता है,

उस वास्ते अगत्यका कथन है कि–' कहने करतें करकें बतलानाही अच्छा.' मोक्षार्थी–मुमुक्षुजन सद्वर्त्तनवाले शुद्धाशय संत सुसाधु-जनोंका बहुत मानपूर्वक सेवन करते हैं. इष्टफलकी सिद्धिके वास्ते कल्पवृक्ष–कामधेनु–सुरमणि या मंगलकलश जैसे उन महात्माओंका सद्भावसें आश्रय लेते हैं. अनेक मोक्षसुखके अर्थी सज्जनोंके आश्रयरूप आप साधुजनोंको कैसी उमदा चालचलन रखनेकी जरुरत है. वो सहजहीमें समझा जाय वैसा है.

८ तालीम–व्यवहारिक और धार्मिक ऐसे दोनुप्रकारकी मजबूत तालीम देनेकी जरुरत है. अव्वलकी प्राथमिक तालीमके किरणोंसें तत्त्वजिज्ञासा प्रकट होती है, उसें योग्य पोषण मिलजानेसें सत्य तालीम विकसित हो सकती है. कि जो परिणाममें अपना पराया हित सिद्ध करसकती है. वास्ते उदार सखावतें करकें ये खातेको आजकल यशस्वी करनाही दुरस्त है. उनमें जितनी वेदरकारी उतनाही स्वपरको नुकशान है.

९ निकम्मे लखलूट खर्च–फजूल बाबतोंमें जो हुवा करतो हैं वो उसी द्रव्यके अंदरको कुछ हिस्साका, उपयोगी मजबूत तालीमके वास्ते और दुःख दुर्दशावंत क्षेत्रोंको अच्छी मदद देनेके वास्ते यदि खर्च करनेमें आवै तो तो उमीद है कि कम ज्याद वख्तमें भी अपनी स्थिति सुधर सकेगी. वास्ते लाजिम है कि, अपनी अपनी पैदासके मुजब दरसाल ऐसे धर्मकार्य सुधारनेके वास्ते कुछ

चंदो-फंडमें रकम देकर अपने जैननामकों सार्थक करना चाहियें. किं बहुना ?

१० वख्तकी किम्मत अपने लोगोंकों चाहिये उतनी समझनेमें नहीं आइ है, उसें 'क्षण लाखिणो जाय, गोयम मकर प्रमाद' वगैरः वृद्धवाक्य अपन सुनते हैं, कहते है, तोभी उनके करोडवे हिस्से भी नहीं चलते है. विकथा, विरोधादिकमें निकम्मा वख्त गुमाडालते हैं; किंतु श्रेष्ठ शास्त्रोंका अभ्यास करनेमें या अच्छा संप करानेवाली उत्तम सलाह देनेरूप परोपकार वृत्तिमें अपने वख्तका सदुपयोग नहीं करते है, ये क्या ओछे शोचकी वार्ता है ? मानवभव आदिकी सामग्री वारंवार मिलनी वडी दुर्लभ है, तथापि अपन वेदरकारी रखकर मरजी मुजब चलन चलानेसें सर्वस्व गुमाकर रीते हाथोंसें मजल करनेके जैसी कार्रवाही करते है ये वहुत दिलगीर होने लायक है. अपनी निर्मल बुद्धिका, अगर जो जो अपनकों शुभ सामग्री प्राप्त हुइ होवे उसका जिस तरह उपयोग होसके उस तरह करलेनेमें कटिबद्ध रहना चाहिये. क्यौंकि कालका कुछ भी भरोसा नही 'कलकों कालका डर है' यह कहावत न भूलजानी चाहियें ज्यों अपनकों तत्त्वज्ञान प्रकट होता जाय, त्यौं श्रीसद्गुरु द्वारा शास्त्र श्रवण करकें यावत् उस वचनोंकों पूर्ण प्रकार मनन कर यथाशक्ति स्वकर्त्तव्य समझकर उसी मुजब चलन रखनेका प्रयत्न करना चाहियें. ज्ञानी पुरुषके सद्विचार और सदाचारोंकों देखनेसें अपनकों कितना दिलगीर होना चाहियें ! अंतमें यथाशक्ति

शुभकार्यमें यत्न करके स्वजन्म सफल करना चाहिये, नहीं तो संसारचक्रमें पुनः पुनः भ्रमण करनेसे बडी भारी खराबी होवेगी. स्वाधीनतासें वख्तका मूल्य समझकर उनका सदुपयोग किया जायगा तो आगेको पराधीनता नहीं सहन करनी पडेगी. जहांतक आयुषका संबंध है, वहांतक यदि शोच विचार करके सन्मार्गपर चड गये तो सुखी ही होयेंगे. नहीं तो दुःखकेही दिन हमेशां गुजारने पडेंगे. अब सुज्ञजनोंको इस्सें ज्यादा क्या कहे ? क्षण क्षणपर आयुष घटता ही जाता है. जो पल चली गइ सो फिर पीछी आनेकीही नहीं, ऐसा समझकर आगुंसेंही चेत लेयेंगे, वेही स्वहित साधकर फतेह हाथ करेंगे और दूसरे अविवेकी उपेक्षावंतको तो दुःखका पात्र ही होना पडेगा।

११ अपने जैनोंमें मिथ्यात्वी लोगोंका गाढ परिचय होनेसें, और सम्यग् ज्ञानके वियोगसें कितनेक बुरे रिवाज व रीति रसम जडमूल डालकर घुस गये है, उसको निकालडालनेके वास्ते अमूल्य वख्तका भोग देकर भगीरथ यत्न करनेपर भी नहीं निकलते है, तो भी उनको निर्मूल करनेके वास्ते निरंतर प्रयत्न शुरु रखनेकी ही जरुरत है. ज्यौं ज्यौं वे वे हानिकरनेवाले रीति रिवाजोंके संबंधमें उत्तम तरहकी व्यवहारिक तथा धार्मिक तालीम मारफत अपने जैन ज्यादे वाकेफगार होते जायेंगे, त्यौं त्यौं वे अपने ही फायदेकी खातिर उन्होंको छोडते चले जायेंगे. इस संबंधमें सुशील साधु साध्वी समूहकी अच्छी मदद मिलनेकी आवश्यकता है. मुग्ध

जैनोंको ऐसी बावतें खास करके समझाकर छुडादेनी ये उन्होंका खास कर्तव्य हैं; क्योंकि यह बावते धर्ममार्गमें जहां तहां हरकतें डालती हैं, वै दूर हो जानेसें उन्होंको धर्ममार्ग सरल हो जाता है, और करनेमें आताहुवा धर्मोपदेश सब सफल होता है निष्पही और विवेकी मुमुक्षु वर्गको इस संबंधमें ज्यादे नही कहना पडेगा.

१२ आजकल अपने जैनवर्गमें विद्या संबंधी तालीमकी बडी भारी न्युनता होनेसें अपने या दूसरेके कल्याणकी खातिर योग्य शुभ विचार करनेकी ताकत बहुतही कम मालुम होती है. इससे करकें वै कवचित् बारीक समय आतेही बहुत बहुत घभराते है. इनके लिये उमदा इलाज तो यही है कि, जो जो हितवचने सुननेमें आवै या वांचनेमें आवै उनका योग्य चिंतवन करनेकी आदत पाडनी चाहियें और स्वच्छंदता छोडकर ज्ञानी पुरुषोके वचनानुसार चलन रखनेमें अपना पुरुषार्थ स्फुरायमान करना, यौ करतें करतें परिणाममें वहुत अच्छा फायदा होनेका संभव है. अपने सब जैनोंके अभ्युदय हितार्थ जो कुछ संक्षेपसें कहा गया है उनको सफलता प्राप्त होनेका वख्त हाथ होवो ? अस्तु !

जैन श्वेताम्बर मुमुक्षु वर्गको नम्र विज्ञप्ति.

"अपना सुधारा"

(SELF IMPROVEMENT.)

मेरे प्यारे भाइ और भगिनीयों ! अपने अपनाही सुधारा करनेके लिये कौन आयगा । क्या सिद्धिसौधमें सिधाये हुवे सिद्ध भगवान किंवा अर्हत् प्रभु या सुधर्मास्वामीकी पट्ट परंपरामें होगये हुवे आचार्य महाराज या उपाध्याय महाराज या तो सुविहित मुनिमंडल आकरके अपना सुधारा कर देवेंगे ? अपने पवित्र शासनकी मर्यादा मुजब सिद्ध भगवानतो अपना निरुपाधिक मुक्तिस्थान छोडकर यहांपर कबीभी अन्यदर्शनियों के मानने मुजब आनेके हैही नहीं, उस्सें वै संपूर्ण सुखी होनेपर यहां अपना सुधारा करनेकों पधारें ऐसी उमेद रखनी सो तो झुंठीही है. अरिहंत भगवानभी ऐसे पंचम–विषम–दुषमकालमें इस क्षेत्रकी अंदर प्राप्त नहीं होवै, ये भी आप भाइ बाइ अच्छी तरहसें जानतेही हो; शेष स्वर्गपुरीमें सिधाये हुवे आचार्यादिक महान् पुरुषोंकी भी अपने अत्यंत प्यारे परलोकवासि पूज्यपितादिककी तरह यहां अपने सुधारेकी खातिर आनेकी आशाभी निकम्मी हैं. तब मेरे प्रिय भाइ भगिनीयें ! अपने आपका सुधारा करनेके लिये अब किसकी आशा रखनी कि जो आशा किसी वख्तभी सफल होवै ? अहा ! मेरे प्यारे ! सचमुच मैं तो समझता हुं कि अपन कस्तुरीये मृगकी तरह

तद्दन मुग्धतासें वहार व्यर्थ भटक रहे हैं. सुगंधका समूह अपनी अत्यंत समीपमें है तथापि अपन उससें अनजाने होकर दूर दूर और ठौर भटकते हैं. महाराज आनंदघनजीने कहा है कि:—

" शिरपर पंच वासे परमेसर, वामें सूछम बारी;
आप अभ्यास लखे कोइ विरला, निरखे ध्रुकी तारी. "

ऐसें पंचपरमेष्टि रुप तत्त्वसें आपही है तोभी केवल विभ्रम द्वारा अपना आत्मा उलटा दौडता है, जिससें दिनपर दिन स्वहित न करतें अहितमें ही वृद्धि करता है. वही योगीश्वर आनंदघनजी कहते हैं:—

" आशा मारी आसन धरी घटमें, अजपा जाप जपावे;
आनंदघन चेतनमय मूर्ति, नाथ निरंजन पावै. "

सच्ची वस्तु आपकी पास होनेसें, और उसीकों ही तालिम लेकर उसीका अनुभव करनेकों भाग्यशाली बन सके वैसा है; तदापि बेदरकारीसें या विभ्रमसें विपरीत आत्म अहितकारी जडवस्तुओंमें मोहित हो जानेसें ये जीव अपना कितना सत्य श्रेय गुमा बैठते हैं या विगाड देते है वो कहाजाय वैसा नहीं है; प्रमाद परवश होकर चोगर्द लगे हुवे अग्निवाले मकानमें लंबी सोंड खींचकर सोनेवालेकी तरह सोया हुवा है. बिलकुल भी डर रखकर अपना सच्चा स्वार्थ साध लेनेके लिये तत्पर नहीं होता है. किंपाक फलकी तरह देखनेमें मनोहर, खानेमें लहेजतदार और शुरुमें आनंदकारी मगर आखिर महान् विरस विषयोंमें अत्यंत आसक्त बनकर म-

हान् दुर्दशा पाता है. आपके पूज्य पूर्वज सुशीलताके जो सख्त नियमोंको अनुसरतेथे उनकों अलग रखकर केवल मरजी मुजब कुशीलजनोंकी सोबत कर कुशीलताकों सेवनकरने लगे हो, आपके या अपने पूज्य पूर्वज जब सुशीलजनोंकों कल्पवृक्ष कामकुंभ या मंगलकलश अथवा कामधेनु–सुरधेनु और चिंतामणिरत्न समान गिनकर समझसह आदरपूर्वक सेवन करतेथे, और स्वहित साधनेके वास्ते वैसे सत्पुरुषोका शरन लेतेथे, तब आजकल तो दृष्टिरागके जोरसें बहुत करकें उससें विपरीतही मालुम होते हैं. पहिलेके पुण्यशाली जन गुणरत्नोंकों झौहरीकी तरह परख लेतेथे, और अभीके अर्धदग्ध उससें उलटाही करते हुवे नजर आते हैं; इससें दिनपरदिन परिणाम बुरा आता हुवा नजर आता है; क्योंकि–' गतानुगतिको लोको, न लोकः पारमार्थिकः ' गाडरीयेप्रवाहकी तरह ज्यौं चले त्यौं चलेही चले. परमार्थ देखने करनेका कुछ नहीं रहता है. इस तरह अपना श्रेय नहीं सधाया जावै. अपने श्रेयका उत्तम रस्ता तो यही है कि–अनादिकी अतिप्रिय स्वच्छंदता छोडकर परम पवित्र सर्वज्ञप्रणीत शास्त्रोंको मान देकर स्वपरको तिरानेमें समर्थ सद्गुरुओंकी अति नम्र भावसें सेवना करकें उन्होंकी अमृतसमान हित वानी समझकें अति आदरसें कर्णपुटद्वारा पी पीकें पुष्ट बनकर उनके फलरुप अपनी अनादिकी गफलतमें चली जाती हुइ भूलें सुधार–उनकों अच्छितरह जानकर, उनकों त्याग करनेमें तत्पर हो, त्यागकर, उत्तम गुणरत्नोका निधान जो अपनेही

संनिधिमें अनादि दोषोंसें ढका गया हुवा है उसीकोंही प्रकट करना, यही सत् संगतिका फल है. हरएक मावाप उपर मुजव सद्गुरुद्वारा शास्त्र श्रवण करके या अभ्यास करके उन अंदरकी हितशिक्षायें हृदयमें धारन कर अपनी पूर्वकी बुरी आदत–भूले सुधार करकें अपने वाल वच्चांओंको वरावर सुधार न सकेंगे; क्यों कि उन्होंका संस्कार न पायो हुवो हृदयमें दूसरेकों सुधारनेकी फिर कहांसे पैदा हो सके? आत्मसुधारेके अति स्वादिष्ट फल चाखनेमें आपखुदही वेनशीव रहे हुवे दूसरोंकों किसतरह भाग्यशाली वना सके? " जिसका अग्रुआही अंधा उसका लश्कर कुवेमें ही गिरता है." इस न्यायके अनुसार उन्मार्गपर चलती हुइ स्व संततिकों कौन रोक सकै? उन्मार्गपर चढकर पायमाल होती हुइ आपकी संततिकाही भला या रक्षण करनाही जव अशक्य है, तो फिर इतर सव संतति–प्रजाका भला या रक्षण करनेकी तो वातही कहां रही? वारीकीसें तपासनेसें स्पष्ट मालुम होकर समझनेमें आ सकै वैसा है कि हरएक घर कुटुंव–ज्ञाति–जाति या समस्त कोम–समुदायका सुधाराके लिये उन हरएक हरएकके अग्रेश्वरोंको सुधरनेकी खास जरुरत है. अच्छे राहपर अच्छी और सरल सुधारेकी ये कुंजी अति उपयोगी होनेसें वे हरएककों खसूस लक्ष्यमें लेने लायक है.

मावाप वगैरः गुरुजनका सच्चा सुधारा हुवे विगर कभी गृह–सुधारा हो सकेगाही नही, समस्त गृहसुधारा हुवे विगर कभी

उमदा कुटुंबसुधारा हो सकेगाही नहीं, और समस्त ज्ञाति जातिके उमदा सुधारे बिगर समस्त कोम–समुदायका सुधारा चाहियें वैसी उमदा रीतिसें कभी न हो सकैगा. ऐसा सामान्य नियम अपनकों प्रत्यक्ष अनुभव गोचर हो सकता है. जिस घरमें विद्यारसिक विवेकी वृद्ध वर्त्तते होतेहैं उसी घरमें बहुत करकें सबसंतति गुणशालीही होती है, इसी मुजब आगे सर्वत्र समझ लेना. जैसें लौकिकमें वैसेही लोकोत्तर–मुनिमार्गमें भी समझ लेना. जिनसाधुसमुदायमें नायक गणाध्यक्ष उत्तम होगा यानि सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र आराधनेमें हमेशां तत्पर–हर्षचित्तवंत होगा, उनका शेष परिवार भी बहुत करकें वैसाही होगा. लेकिन जहां अग्रेश्वरही निर्गुणी–पंच महाव्रतरुप पंचमहा प्रतिज्ञाऐं अर्हंतादिक समक्ष करकें वमनभक्षी श्वान–कूतेकी तरह छःकायका हरहमेशां नाश करावै, झूंठ बोलै, न दी हुइ पराइचीज लेवै–लिवावै. मैथुन सेवै सेवावै. (चिंतामणिरत्न सादृश दुर्लभ शील आप खंडन करै और महा पापमति हो औरोंका खंडन करावै.) परिग्रह–महा अनर्थकारी द्रव्यादिक मूर्छारुप बाह्य और मिथ्यात्व कषाय काम सेवादिक आभ्यंतर परिग्रह आप रक्खै–रखावै. यावत् 'बिटली हुइ बमनी तुरकडीसेंभी जाय' उसी मुजब खुल्ली रीतिसें रात्रिभोजन करै, जुगार खेलै, कंदमूलादिक अभक्ष्य भी भक्षन करै, शिरमें सुगंधी तेल डालकर बालोंको समारै, आयनेमें मुँह देखै, कल्पपादपादिक सदृश संतशिरोमनी गुणरत्नाकर सुविहित साधु मुनिराजोंकी अवगणना

करे—ऐसी अति अधम निंदा पात्र जिसकी स्थिति बन रही होवे उसीका परिवार भी बहुत करके वैसाही होवे यह बात भी अनुभवमें ली जासके वैसीही है.

अलबत्त आजकल साक्षात् तीर्थंकर, गणधर, सामान्य केवली अवधि, मनःपर्यवज्ञानी, चौदह पूर्वधर, दश पूर्वधर, यावत् एक पूर्वधरके विरहसें सारे शासनका आधार पूर्व महा पुरुषोंने पर्षदा समक्ष मरूपे हुवे परमागम—उत्तम शास्त्र और परमपवित्र तीर्थंकर भगवानादिककी प्रतिमाजी ऊपरही है. वही आगम और पावन प्रतिमाजीओंका यथार्थ रहस्य बतानेवाला मुख्यतामें अधिकारी निर्ग्रंथ मुनिवर्ग ही कहा गया है. यह अपार संसार सागर तिरने तिरानेमें समर्थ जिनशासनरुपी सफरीजहाजको बराबर गतिमें चलानेमें सुविहित आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थविर और गणावच्छेदकादिक ये वडे अधिकारी वर्गको सुकानियोंकी जगह समझनेमें आते है, और वाकीके साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाके समुदायको सायांत्रिक—उक्त महाशयोंको अवलंबके ये अति भीषण भव समुद्र उल्लंघ करके मोक्षपुरी जानेको रवना हुवेले जीवोंको जगह, गिनेमें आये हैं—आते है. स्पष्ट रीतसें समझाजाता है कि सबसें ज्यादे जोखमदारी गिनाते हुवे सुकानीओंके शिरपर है उन्होंकी हुशीयारीमें दूसरे तदाश्रितोंका वडा लाभ समाया हुवा है. उ... सुकानियें महान् जोखमवाले होदेके बराबर लायक हो या पूर्ण लायक होने लायक प्रयत्नपर रहकर केवल परमार्थ बुद्धिसेंही ग्रहण

करने योग्य ये अति उत्तम होदेकों मिथ्या मानादिकमें अंध न होते अथवा किसी प्रकारकी भी झूंठी लालचमें न लिपटाते तदन निस्वार्थ बुद्धि रखकर पूर्व महापुरुषोंसे आत्म लघुता भावत भावते ग्रहण करके तदनुकूल अपनी कुलफर्ज पूरी खंतसें बजावै, भव भीरुता धारनकर किसी तरहकी उन्मार्गी देशना या सन्मार्ग लोपनवार्त्ता न कहते हुवे प्रतिरोज जयवंता वर्त्तता हुवा जिनशासनको पुष्टि मिल सके वैसे सावधानपनेसें पंचाचारादिकमें तत्पर रहवे, तो बेशक जरुर पवित्रशासनके प्रभावसें और अपने सद्भावके योगसें ये प्रत्यक्ष अनुभवमें आता हुवा महा भयंकर चतुर्गतिरुप संसार–समुद्रकों तिरके दूसरे-अनेक भव्य सत्वोंको भी ये दुःखोदधिसें तिरानेमें समर्थ होसकै. इससें सुकानियोंका अति उमदा मगर जोखमवाला आधिकारकों अपनी योग्यता ल्याकत विगर आप मतिसें आदर लेनेसे परिणाममें स्वपरको बडीभारी नुकशानीमें उतरना पडता है, इस मुजब उपदेशमालादिक अनेक प्रमाणिक शास्त्रकार कहते हैं; तव इस परसें ये सिद्ध हुवा कि पवित्र शासनकी रक्षा और पुष्टिके लिये अति उत्तम सुकानीओंकी खास जरुरत है, वै यदि अच्छे पवित्र शास्त्र रहस्यके ज्ञाता हो, पवित्रशासनकी जाहोजलालीके लिये अतिगहरी खंत–फिक्र रखते होवै, और चाहे वैसे नियम संयोगोंकों लेकर कदाचित भइ हुइ शासन मलीनताकों दुर करनेके लिये जिन्होंके अंतःकरणमें पूर्ण खंत–उर्मी होवै, सभी शासन रसिक साधु–साध्वी–श्रावक–श्राविकाओंको औसर उचित, उनको

सुहावना लगै वैसा सदुपदेश देकर उन्होंकी धर्म संबंधी उर्मीयोंको सतेज करै, और किसी विषम संयोगसें धर्मसें पतित हो गये हुवेका ज्यौं पुनरोद्धार होवै त्यौं परम करुणारससें प्रेरित हुइ पूर्ण खंतसें करे ये आदिक असंख्य गुणगणालंकृत हो अपने सुभागी सुकानीये धार लेवै तो दुनियांमें कोइ न कर सकै वैसा परम आश्चर्यभूत काम कर सकैं. अलवत अपने पवित्र शासनके ऐसे सुकानि अपने सदूभाग्यवलसें जाग्रृत होवै तो वै तर्फकी अपनी फर्ज भी अपनकों जरूर अदा करनी चाहियें. अक्षरशः परम पवित्र परमात्माकी आज्ञावत् वै महाशयोंकी आज्ञा मुजव अपनकों अति नम्रतापूर्वक अनुसरकेंही चलना चाहियें, पूर्ण श्रेय साधनेका सीधा मार्ग यही है. जहां तक पवित्रशासन तर्फकी अपनी फर्ज और उसी के साथ अति निकट संबंध धरानेवालोंकी तर्फकी अपनी फर्जे अपन समझेंगे नहीं, या समझने कुछ आनेपरभी प्रमादादिक परवश हो अपनी योग्य फर्ज अपन अदा करेंगे नहीं, वहांतक अवश्य अपनही हानि पावेंगे. मिथ्यामानमें मोहित हो एक दूसरेकी परवाह न रखतें वेपरवाह रखनी ये विनयमूल पवित्र शासनकी रीतिसें तद्दन उलटा मालुम होता है. उस मुजव आपखुदीसें वर्त्तन चलानेसें कभी अपना श्रेय होनेका संभव नजर नहीं आता है.

अपनने धर्म के प्रभावसेंही सब कुछ सुख संपत्ति पाइ है; तो भी उस उपकारी धर्मका उपकार भूलकर उन तर्फकी अपनी योग्य फर्ज न वजाते हुवे अपन मोह मदिराके कैफमें अपना कर्त्तव्य वाजु-

पर छोड मदांध या रागांध बनकर तदन विपरीत वर्त्तन चलावैं तो अपने स्वामी–धर्मका द्रोह करनेहारे अपनके क्या हाल होयेंगे? वास्ते मुनासिब है कि–अपनकों परम उपकारी श्री धर्मकी खातिर अपने तन, मन, धन, अर्पन करनेमें पीछा पांव न धरतें जितनी बन सके उतनी उन्नति–प्रभावना करनी चाहियें. निर्ग्रंथ महात्माओंको समुचित है कि अपने पीछे लगे हुवे शुभाशयवंत साधु साध्वी श्रावक–श्राविकारुप श्री चतुर्विध संघकी ज्यौं उन्नति होवैं त्यौं निःस्वार्थ–निराशी भावसें प्रवर्त्तना चाहियें. श्रीसंघकी सच्ची उन्नतिकी नींव उन्होंमे परस्पर सुसंप साथ आचार विचारकी शुद्धतामें रही हुइ है; वास्ते मुनासिब है कि पवित्र मुमुक्षु वर्गकों ज्यौं श्री संघमें सब जगह सुसंप सुदृढ होवै, और ज्यौं उन्होंमें पवित्र आचार विचारकी शुद्धि सुदृढ होवै त्यौं करनेके लिये आपस आपस मुमुक्षु वर्गमेंही पहिले अति उमदा दिलसें ऐक्यता करके–ऐक्यता वढाकरके आपके अंदरही पहिले पवित्र आचार विचारकी चाहियें वैसी उमदा दिलसें शुद्धिकर सद् वर्त्तन दिखला देनाही मुनासिब है.

लेखक दिखला देनेमें अति दिलगीर है कि–आजकल जब मुमुक्षु वर्गही ऐक्यताकों नहीं चाहते हैं या उसी वर्गमेंही ऐक्यता दूर होनेसें जगह जगह अव्यवस्था फैल रही है तो आपका निस्तार करनेमें उक्त मुमुक्षु वर्गकाही आलंबन लेनेहारे श्रावक वर्गका तो कहनाही क्या? बहुत करके मुमुक्षु वर्गकाही नाम जैन सांप्रदायमें उपदेश रुपसें प्रसिद्ध है. यदि उपदेशक वर्गमें ऐक्यता होवै तो

इच्छित कार्य उपदेश द्वारा कितनी सहेलाइसें साध सकै? यदि उपदेशक वर्गका केवल परमार्थ बुद्धिसें पवित्र शास्त्रानुसारसेंही द्रव्य, क्षेत्र, कालादिक विचार कर श्रोतावर्गकों समझ बुझ पडे वैसा सरल सादी सीधी भाषामें उपदेशद्वारा कथन किया जाता होवै तो उपकारमें कितनी वडी भारी वृद्धि हो सकै? मंद परिणामी-शिथिल गडवडिये साधुओंके संगसें जो सडा हो गया होवै वो किस तरह जल्दी निर्मूल हो सकै? उत्तम प्रकारके त्याग वैराग्य धारन करकै विवेक पूर्वक शासनके सच्चे लाभकी खातिर गहेरी खंत और फिक्रसें उपदेश द्वारा प्रयत्न किया जाता होवै तो कैसा अनहद लाभ हो सकै? मिथ्यात्वीओंकी सोबतसें, अज्ञानताके जोरसें, या चाहे वैसे निर्जीववत् सबबके लियेसें जो जो बुरे रीत रिवाज घुस गये होवै, अपने सच्चे आचार विचार भूलाया गया होवै और व्हेमोंने घर घाल दिया होवै, वो सभी निर्दंभ मुनि उपदेशबलसें कितनी सहेलाइसें सुधार सकै? जब मुनियोंमें ऐक्यता-संप और योग्य आचार विचारकी शुद्धिसें पवित्र शासनकों और पवित्र शासनरागी जनोंकों असा अचिंत्य अनुपम लाभ हाथ आ सकै वैसाहै, तो पीछे मेरे प्यारे भ्राता और भगिनीयें भागवती दिक्षा ग्रहण कर लिये परभी; अगार (गृह) छोड अणगारपना अंगीकार कियेपरभी, राग द्वेष मोहादिककों हठानेके वास्ते गांव-नगर-ज्ञाति-कुटुंब-कबीलादिकका प्रतिबंध छोड देने परभी, और आखिर मानापमान छोड सुख दुःखकों समान गीनकर-सभी परिसह उपस-

गोंको सहन कर श्रीवीतराग प्रभुजीकी निष्कपटतासें आज्ञानुसार चलकर अपने अनादि मलीन आत्माकों निर्मल करनेका खास निश्चय कियेपरभी, क्षणभरमें वो सब भूल कर अपना आत्मा उलटा मलीन होवै और चार गतिरुप संसारसमुद्रमें पुनः पुनः डूबकर महा दुःखका हिस्सेदार होवै ऐसा पवित्र प्रभुजीकी आज्ञाकों उल्लंघन करकें अपनकों करना क्या उचित है ?

परमकृपालु प्रभुने अपनकों निरंतर मैत्री, प्रमोद, करुणा और उदासीनता रुप चार उमदा भावनाऐं भावके अपने अंतःकरणकों निर्मल करनेका कहा है. अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्वादि बारह भावनाऐं हरहमेशां भावकर अपना वैराग्य सतेज करनेका फुरमाया है, और पंचमहाव्रतोंकी २५ भावनाऐं रोजरोज भावकर संयमकी रक्षा करनी कही है, वो क्या तदन अपनकों भूल जाना चाहिये ? नहीं कभी नहि ! मेरे प्रिय भाइभगिनीयें ! ये अपनें हृदयपटके उपर खास कोतर रखना और निरंतर लक्षमें रखना योग्य है कि परम पवित्र जैनशासनके मजहवी कानुन मुजब अपनकों जीवमात्र तर्फ मित्रभावसें देखनेका या वर्त्तनेका है. पवित्र शासनरसिक–शुद्ध गुणवंत गुणानुरागी तर्फ अपनकों प्रमोदभावसें देखनेका या वर्त्तनेका है. द्रव्यादिकसें दुःखी हो दुःख पातें हुवे साधर्मीकादिकोंकों यथाशक्ति द्रव्यादिकसें और चाहे वो अन्य विषय संयोगसें धर्मपतित हो गयें हुवे या पतित होते हुवे या धर्म न पाये हुवेकों शुद्ध वीतराग धर्मतत्त्व समझाकर पवित्र धर्मप्राप्तिरुप

उत्तम करुणाद्वारा मदद देकर उद्धार करनेकी अपनी मुख्य फर्ज है. केवल धर्मविमुख अनार्यवृत्ति पाप रति प्राणियोंकी तर्फ भी द्वेष न लाते उदासीन भावसेंही देखना या वर्तनेका है. अपने सत्य श्रेयका मार्ग तो करुणावंत देवनें यही बतलाया है, और उनकों आदरनेमें अपनकों कष्ट भी नहीं पडता है, उलटा परम सुख प्रकटता है. सर्वत्र उक्त मर्यादासे वर्त्तन चलानेसें स्वपरमें सुख शांति फैलती है. पवित्र आचारपरायण प्राणी इन लोकमें चंद्र समान निर्मल यश पाकर पीछे परत्र भी सुख पाते है. इनसें विरुद्ध वर्त्तन रखनेसें इस लोकमें प्रकट अपवाद अपयश प्राप्तकर परभवमें महान् अनर्थ पाता है.

एक सामान्य राजाका हुकम न माननेसें बडा भारी अनर्थ प्रकटता है, तो केवल अपने हितकी खातिर परम करुणासें प्रकट हुई त्रिजगपूज्य श्री तीर्थंकर प्रभुजीकी पवित्र आज्ञाका स्वच्छंदतासें उल्लंघन करनेसें कितना भारी अनर्थ होनेका ! वो मेरे प्यारे भ्राता भगिनीयोंकों अच्छी तरहसें सोचना लाजिम है. सम्यग् विचार करके गेरमर्यादासर होता हुवा आपखुदीका तदन विपरीत वर्त्तन बिलकुल छोडकर परम पवित्र प्रभुकी अति उत्तम आज्ञाका पूर्ण प्रेमसें सेवन करना दुरस्त है, पीछे पूर्णश्रद्धासें प्रवर्त्तनेसें प्रतिदिन अपना अभ्युदयही होता हुवा अपन देखेंगे. जो सच्चे सुख शांति अनुभवने के लिये अपन अणगार हुवे है. तो अनुभव लेनेका दिवस अपनकों तभी हाथ आवेगा कि जब अपनने परवस्तुमें

खोटी मानलीहुइ ममता अहंताकों छोडकर अपने शुद्ध आत्मद्रव्यमेंही अहंता, और शुद्ध ज्ञानादिक गुणोंमेंही ममता लावेंगे. ऐसा सद्विवेक लानेके वास्ते हमेशां हरकत करनेवाले सबबोंकों दूर कर साधक सबबोंकोंही सजने चाहियें. यदि अपने हृदयमें सान होवै तो ऐसा अनुपम चिंतामणि समान, दश दृष्टांतसें दुर्लभ-किसी पूर्वके योगसें प्राप्त भया हुवा ये अमूल्य नरभव अपने वृथा न खोदेना चाहियें; किंतु जितना आत्मवीर्य स्फुरायमान किया जा सके उतना स्फुरायमान करकें बन सके उतनी सुकृत कमाइ कर लेनी चाहियें, जिससें करके अत्र और परत्र सुख शांति प्राप्त होवै. परम कृपालु परमात्माकी पवित्राज्ञाका आराधन करना ऐसा अमोघ लक्ष्य करना चाहियें. कि दरम्यान सेवन करनेमें आते हुवे धैर्य, गांभिर्य, औदार्य, क्षमा, मृदुता, ऋजुता, निर्लोभता, निराशंसता और सत्य विवेकतादि सद्गुणोंकी श्रेणिकों देखकर भव्य चकोर प्रमोद पूर्वक पूर्ण प्रेमसें उसका अनुमोदन करै. इतनाही नहीं; मगर वै भी उस सद्गुणश्रेणिकों अंगांगी भावसे भेटकर अपनी भविष्यकी प्रजाके वास्ते वो अति उमदा और अमूल्य वारसा छोड जांय.

अहा ! मेरे प्यारे भाइ भगिनीयें ! यदि प्रमादशत्रुकों छोडकर परम मित्र समान परमात्माकी पवित्राज्ञाकों प्रेमपूर्वक तन, मन, धनसें आराधनेकों तत्परता भज लेवै तो अहाहा ! शासन कैसी जाहोजलाली झुकते ? सकल मुमुक्षु वर्ग साधु साध्वीयें ऐक्यतासें पवित्र आचार विचारकी शुद्धिसें द्रव्य और भावसें कितने सुखी

होवे ? और इस मुजब ऐक्यता रुप अखंड जंजीरसें संबंध भये हुवे और वीतरागप्रणीत शुद्धाचार विचारको सेवनसें प्रसन्नाशय धारनकर वै महात्माऐं साक्षात् जंगम कल्पवृक्षकी श्रेणीकी तरह अपनी अति शीतल छायासें संसारतापसें खिन्न होकर भावशांतिके लिये आश्रय लेनेको आये हुवे सुश्रावक-श्राविका वर्गको सदुपदेशरुप अमृतफल चखाकर कितना भारी आनंद देनेको शक्तिवंत हो सके, इस मुजब प्रसन्न दिलसें उ. नीतिके सेवनद्वारा कैसा अनूपम लाभ संपादन होवे.

अहा ! ऐसी सोनेरी तक कब आयगी कि जब उत्तम झौहरीओंकी तरह सदा जयवंता वर्त्तता हुवा जैनशासनरुप बाजारमेंसें अपन भी परीक्षापूर्वक गुणरत्नोंकोंही ग्रहण करेंगे, और दोष दृषदोंको फेंक देवेंगे ! ऐसा सुनहरी सूर्य कब उगेगो कि जब अपन विवेकप्रकाशद्वारा प्रकट रीतिसें गुणदोषको समझकर सद्गुणोंको ही आदर करते शिखेंगे ! ऐसी सुनहरी घडी कब देखेंगे या पावेंगे कि जब अपन पराये छिद्र शोधन करनेकी बुरी आदत भूलकर फक्त गुणग्रहण करनेकी उत्तम रीति आदरेंगे-श्रीकृष्ण महाराजकी तरह क्रोडो अवगुनमेंसें गुण मात्र ग्रहण करेंगे ! ऐसी उत्तम मीनीट कब मिलेगी कि जब पूर्वोक्त सदा शीतल संत सुरतरुकी पवित्र छायाका आश्रय लेकर वो संत सुरतरुकी सुवासनाके बलसें परदोष दुर्गंध ग्रहण करनेकी अपनी अनादिकी बुरी आदत सर्वथा दूर करेंगे ! और निरंतर सद्गुणवासना ग्रहण करनेकी स-

-मति सजेंगे! ऐसी अमूल्य सेकन्ड कब प्राप्त होगी कि जब अनादि प्रिय कुसंगको बिलकुल जलांजली देकर सत्संग भजनेका दृढ निश्चय करेंगे!

यह बात अनुभवसिद्ध है कि अपन जहांतक महामलीनताजनक, कुसंग तजकर सुसंगति सजेंगे नहि, वहांतक अपनको कुबुद्धि देकर दुर्गतिमें लेजानेवाली कुमतिके पाशमेंसे छुटकर सुबुद्धि देकर सुगतिमें ही लेजानेवाली सुमतिके अपन कभी स्वामी न हो सकेंगे. सुमतिके दृढ संबंध बिगर अपन दोषवासनाको दूर कर शुद्ध गुणवासनाको धारन न कर सकेंगे. दुष्ट दोषवासना त्यागन किये बिगर और शुद्ध गुणवासना अंगिकार किये विगर अपन कभी परदोष देखे बिगर या उनी दोषोंको ग्रहण किये बिगर रहनेके नहीं और शुद्ध गुणरत्न या शुद्ध गुणिजन होने परभी अपन उनको देख शकेंगे ही नहीं. तो पीछे गुणरत्नका ग्रहण करना तो क्यों करके ही बनेगा? जहांतक परदोषग्राहक बुद्धि प्रबल वर्त्तती है, वहांतक गुणग्राहकपना नही आ सकता है; क्यों कि परस्पर विरोधी है वास्ते नहीं आसकता है. जहांतक शुद्ध गुण ग्राहक बुद्धि नहीं प्रकट होगी, वहां तक सत्संग रुचिके पात्र हुवा ही नही जाता जहां तक आश्रय करने लायक शीतातिशीतल छायावाले कल्पवृक्ष समान संतसमागम रुचेगा नहीं, वहांतक अमृतका तिरस्कार करे वैसा अतिमिष्ट-मधुर सत्य धर्मोपदेश कर्णगोचर होवे ही नहीं. जहांतक अभिनव अमृत समान सत्य धर्मोपदेश सुना नहीं, वहांतक तत्त्व-

विवेक प्रकटता नहीं जहांतक तत्वविवेक प्रकट होवे नही, वहांतक हिताहित बराबर समझनेमें आ सके ही नहीं. जहांतक हिताहित सम्यग् समझनेमें आवे नही, वहांतक अहितके त्यागपूर्वक हितमार्गका सम्यग् सेवन हो सके ही नहीं. जहांतक अहितके त्याग पूर्वक सम्यक् हितमार्गका सेवन न किया जाय, वहांतक परमकृपालु परमात्माकी पवित्र आज्ञाका उल्लंघन हुवे विगर रहे ही नही. और जहांतक पवित्राज्ञाका उल्लंघन किया जाता है, वहांतक ये अति भयंकर भवोदधि तिरना वहुत मुश्किल है, और पवित्राज्ञाका सम्यग् आराधनसें वही संसार तिरना सुगम हो पडेगा.

परमकृपालु परमात्माकी पवित्र आज्ञाका आराधन सम्यग् रीतिसें हितमार्गका सेवन करनेसेंही होता है. सम्यक रीतिसें हित सेवन विवेकपूर्वक अहितमार्गके त्यागसें होता है. बराबर हिताहितकी समझ सम्यग् ज्ञान क्रिया के सेवन करनेहारे सद्गुरुद्वारा हो सकती है. ऐसा सिद्ध होता है कि सम्यग् हितमार्गदर्शक उक्त सद्गुरु होनेसें आत्महितैषीवर्गने वैसे महात्मा पुरुषोंका अवश्य आश्रय लेना दुरस्त है. तब आश्रय करनेयोग्य मुमुक्षुवर्गने आपकेही कल्याणार्थ और आश्रय लेनेवाले इतर आत्महितैषिवर्गकी खातिर आपके असंख्यप्रदेशरूप आत्मामें कैसी उमदा और विशाल–गुण सृष्टि रचनाकों पैदा करनी चाहियें. लोकप्रसिद्ध वार्ता है कि– कुवेमें होगा तो होझमें आवेगा ' मगर कुवेमेंही पानीका तोटा होगा तो होझमें कहांसे पानी आ सकेगा ! यदि मुमुक्षुजें उत्तम गुण-

रत्नधारक होवै तो सहजमें उनके आश्रितोंको वो उमदा गुणरत्नोंका लाभ मिल सकता है; मगर सम्यग्ज्ञान वैराग्य सद्गुरु भक्ति और भवभीरुतादिक सद्गुणोंकी न्यूनतासें खुद आपही गुण विरक्त होवै तो वो अपने आश्रितोंकों किस तरह गुणवंत बना सकै ? आप निर्धन होवै तो दूसरोंकों किस तरह धनवंत बना सकै ? जगतमात्रका दारिद्र दूर करनेकी इच्छावाला कैसा महान् भाग्यभाजन होना चाहिये ?

जगत्कों ऋणमुक्त करनेहारे श्रीतीर्थंकरादि जैसे वैसे सामान्य जन नहि थे. वै असाधारण नररत्नो या पुरुषसिंह थे. श्रीसंघके उपर अवसरउचित अनुग्रह—कृपा करकें पवित्र शासनकी प्रभावना करनेहारे श्रीवज्रस्वामि वगेरः आपके अति उत्तम ज्ञान वैराग्य गुरुभक्ति और भवभीरुतादि कोटि सद्गुणोद्वारा श्रीवीतराग शासनकी अमूल्य सेवा बजानेमें सुप्रसिद्ध है. मेरे प्यारे भाइ—भगिनीयो ! ऐसे उमदा गुणोंकों धारन करके पवित्र शासनकी अमूल्य सेवा बजानेमें अपनकों भी ऐसे महात्माओंके दृष्टांत ध्यानमें लेनेकी जरूरत है; और पवित्र शासनकी वैसी अमूल्य सेवा बजाकरकेंही अपनकों अपना ये दश दृष्टांतसें दुर्लभ कहा हुवा मनुष्यजन्म, महाभाग्ययोगसें प्राप्त कियेहुवे उत्तम कूल, पंचेंद्रिय पाटव, शरीर सौष्टव, सुगुरु समागम, वीतरागजीके वचन श्रवणादिक उत्तम धर्मसाधन अनुकूल सामग्री, तथा उसद्वारा भइ हुइ धर्मरुचि और क्रमशः प्रकट भइ हुइ श्रद्धा विवेकादि सद्गुण श्रेणिकी सफलता माननेकी है.

पवित्र शासन तर्फकी अपनी उत्तम और उचित-फर्ज समझने-के वास्ते और समझकर बराबर लक्षमें रखकर उसी माफक वर्त्तने के वास्ते श्री गौतमस्वामी, श्री जंबूस्वामी, श्री प्रभवस्वामी, श्री शय्यंभवस्वामी, श्री भद्रबाहुस्वामी, श्री आर्यसुहस्तिसूरी, श्री स्थूलिभद्रजी, श्री वयरस्वामी, श्री उमास्वातिवाचक, श्री आर्यरक्षित-सूरी, श्री सिद्धसेनदिवाकर, श्री देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण, श्री हरिभद्रसूरी, श्री धनेश्वरसूरी, वादीश्री देवसूरी, श्री हेमचंद्राचार्य, श्री जगचंद्रसूरी, और श्री हीरविजयसूरी वगैरः महान् प्रभाविक पुरुषसिंहोंके अति उत्तम बोधजनक चरित्र खास लक्षपूर्वक वांचने विचारने और बन सके वहां तक अनुकरण करने लायक है. यदि इस तरह उक्त महापुरुषोंके सच्चरित्रोंका आबेहूब चितार अपने मनमंदिरमें करनेमें आवै और वै पावन पुरुषोंके कदम दर कदमसे प्रयत्नपूर्वक चलकर स्वसाधर्मीभाइयोंमें ऐक्यताके साथ मुमुक्षु वर्गके उचित आचारविचारमें केवल परमार्थदृष्टिसें चाहिये वैसा सुधारा करनेमें आवै, तो मेरे अति नम्र विचार मुजब स्व-उत्कर्ष और पर अपकर्ष करनेका वख्त कबी भी न आने पावै. उसी मुजब मुमुक्षु साध्वी समुदाय अपनी और पवित्र शासनकी उन्नति-के खातिर जो गुण निष्पन्न नामवाली यानि चंदनबाला, मृगावती, पुष्पचूला, राजिमति, तथा ब्राह्मी-सुंदरी समान महान् सतीयोंके दृष्टांत लेकर परमपूज्य परमात्माकी पवित्र आज्ञानुसार चलकर परस्पर-संपरूप मजबूत ग्रंथी पाडकर विनयपुरःसर वर्त्तन रख्खे,

तो प्रतीति पूर्वक कहा जाता है कि जरुर कुछ अच्छा परिणाम आवेही आवै. ऐसे अच्छे परिणामके वास्ते उन्होंने भी ऐक्यताका सेवन करके अपने उचित आचार विचारकी प्रणालिका सुधारलेनीही मुनासिब है. मेरे प्यारे भाइ भगिनीओंको अति नम्रतायुक्त विनती करनेकी है कि जब अपन इस मुजब अपने परमपूज्य पितारुप पूर्वाचार्योंके पवित्र कदमसें प्रणति पूर्वक चलकर अतिक्लिष्ट परिणाम कर खटपटको खडी करने हारे हजारों लोगोंके बीच तमासा बतलाकर निर्मल शासनको निस्तेज करवाले, तथा आपके शुद्ध ज्ञान दर्शन चारित्रके रसको ढोल डालनेवाले और परिणाममें परम दुःखदायक मिथ्या मान मत्तंगजको मार नाशकर परस्पर योग्य नम्रता धारनकर पूर्वे घुस गया हुवा कुसंपको काट–दाटकर ऐक्यता धारन करके उचित आचार विचारकी शुद्धि कर अपना कितनेक वखतसें गेरव्यवस्थासें विसंस्थल भया हुवा पवित्र धर्मकी प्रणालीका सुधारेंगे, तो पीछे अपन अपना स्वकल्याणसह अपने आश्रित श्रावक श्राविकाओका भी कल्याण सिद्ध होवै ऐसा सरल मार्ग खुल्ला करदेंगे मगर जहांतक मिथ्या मानमां मोहित हो उचित विनय नम्रता भी छोडकर क्लेशकारी कुसंपका पोषण कर–शक्ति होनें परभी अपने पवित्र आचार विचारकी हानि होने देकर–पवित्र शासनकी मलीनताको कारणिक होकर अपने आपकेही कल्याणकी बेदरकारी करेंगे, वहांतक अपने आश्रितभूत श्रावक श्राविकाओंका कल्यान करनेकी अपनी इच्छा वंध्याके पुत्र होने जैसी व्यर्थ आशा

हैः अपना आपकाही कल्यान करनेको असमर्थ अपन अन्यजनोंका किस तरह कल्यान कर सकेंगे ? वास्ते मेरे नम्र विचार मेरे प्यारे भाइ भगिनीयें ! पहिलें तो अपनकों अपने कल्याणके वास्ते दूसरी तमाम बावते बाजुपर छोडकर खास प्रयत्न करनाही योग्य है. जहांतक उक्त अति उपयोगी बाबतमें विलंब या बेदरकारी करनेमें आयगी, वहांतक दिनप्रतिदिन झूंटी अहंता ममताके सेवनद्वारा संपकी वृद्धिके साथ पवित्र आचार विचारकी अति हानिका विशेष प्रसंग आनेसें अति निर्मल भी वीतराग शासनकी मलीनता होनेका कठिन संभव रहता है. वास्ते मेरे प्यारे ! अपनकों अब निर्विलंबसें तुरंत जागृत होनाही दुरस्त है. अब ज्यादे वख्त प्रमादकी पथारीमें पड रहनेका नहीं है. अपनकों श्रीगौतमस्वामीजीके जैसे महापुरुषोंका वेष धारन करके उनकों एक क्षणभरभी शरमिंदा करना नहीं; किन्तु सर्व शक्ति फैलायके उनकों पूर्ण यकीनसें भजनाही चाहियें. अपनकों सच्चा सुख चाहियें और वैसा काम न करै अगर उससें विपरीत करै, तो सुख क्यौं करकें संपादन होवै ? अपन नरक—तिर्यंचादिकके दुःखसें डरै तोभी रस्ता तो वैसा ही लेवै तब वैसे दुःखसें क्यौं कर बच सकै ?

हा, मेरे भाइ भगिनीये ! बचनेका एक मार्ग है सो यही है कि अपनने ग्रहण किया जो वेष उसकों लज्जापात्र क्षणभरभी न करतें अपना अंतरंग मान मायादि मैलकों धोडाल कर नम्रता सरलता विवेकतादिक उत्तम गुणवंत सुसंपधारन करकें पवित्र आचार वि-

शुद्धिकर—निर्मल शासनकी प्रमाद परवश होनेसें भई हुई मलीनता दूरकर—श्री वीतराग शासनकी शोभा बढाके—हमेशां अप्रमत्त रहकर—मोह मत्सरादिक दुष्ट दोषोंका पराभव कर समतादिक सत् सहाय बलसें शांत सुधारसका पान कर—परम शांत बनकर अनेक भव्यजनोंको आश्रयस्थान हो केवल निष्पृह—निरासभावसें स्वात्महितैषी जनोंको शास्त्र रहस्ययुत शांत सुधारसका पान कराके, श्रेष्ठ स्वार्थ साधते हुवे अखिन्नतासें परोपकार करते हो आखिर समाधि पूर्वक द्रव्य भाव संलेषणा कर—समस्त विरोध शांतकर समस्त पापस्थानक आलोय—निंदकर कायमके लिये पच्चख्खाण कर अंतिम श्वासोश्वासमें भी धर्म पवित्र अरिहंत सिद्धकाही सस्मरण करते हुवे यह बाह्य प्राण छोडकर पवित्र शासनी वेषको भजालेना यही सर्वोत्तम है. इस मुजब उत्तम आराधना—पताका स्वाधीन करली जावै, जय जय नंदा जय जय भद्दाके मांगलिक शब्द ध्वनिसें वंधाये लिये जावे, और अंतमें परमानंद पद भी इसी तरह प्राप्त किया जावे. अहा ! ऐसी परमानंद दायक स्थिति साक्षात् सर्वदा अनुभवनेके लिये किस वास्ते भुलजाना चाहियें ? और कुमति कदाग्रहका पल्ला पकडकर किस वास्ते पायमाल होजाना चाहिये ? इतनी हदपर पहुंचने परभी सुखकी बेदरकारी कर केवल कल्पित सुखमें मशगुल् हो, जीती हुइ बाजी क्यौं हारजानी चाहियें ? पुनः पुनः विनय पूर्वक विनती करता हुं कि अय वीरपुत्र ! और वीर पुत्रियें ! अब विलंब बिगर जाग्रत होजाओ और तुमारा हित

तपासलो. प्रमाद पथारी छोडकर अप्रमाद वज्रदंडसें मोह राक्षसका निकंदन कर अपना और अपने आश्रित भव्योंका संरक्षण करो. नही तो ये मस्त हो रहा हुवा मोहनिशाचर अपना और अपने निराधार सेवकोंका सब कुछ देखते देखतेमेंही छिन लेगा. वास्ते आप लोग अच्छी तरह जागत होकर अपना और दूसरोंका संरक्षण करो. मुमुक्षु किं बहुना ? !

असल फकीरी.

सच्ची फकीरी कहो या सच्चा साधुत्व कहो, मगर वो प्राप्त होना जीवकों बहुत ही मुश्किल है; क्यों कि जब कुल उपाधियोंकों जलांजलि देकर अपना मन–बचन–तनकों अवंचकपनेसें अध्यात्म–योगकी पुष्टिके वास्ते ही प्रवर्त्तानेमें आवै, तभी ही सच्ची फकीरीकी लहेजत आ सकती है. उपाधिसें मुक्त हो गये हुवे सच्चे फकीर, फीकरके साथ कैसा संबंध रखते है सो इस छोटेसे द्रष्टांतसें स्पष्ट मालुम हो जायगा:

फिकर सबकों खा गइ, फिकर सबका पीर;
फिकरकी फाकी करै, सोही पीर फकीर. १

शिर मुंडाडाला; मगर मनकों नहि मुंडाडाला तो शिर मुंडवानेसें क्या शुकर हुवा ? योग लिया मगर भोगकों साफ न छोड दिया तो योग लेनेसें क्या कमाया ? सच्च तपास करनेसें तो पात्रके बिगर योग शोभारूप ही नही मालुम होता है; मगर फजीतीरूप ब-

नकर स्वपरके अहितकी वृद्धि की जाती है; तथापि ये विषमकाल योगसें कितनेक अहंबक ऐसा व्यापार ले बैठे हैं, उसमें वैसे कठोर परिणामीयोंकों क्या लाभ होगा? ऐसी शंका हो आवै, उनकी समाधानीके वास्ते श्रीमद् यशोविजयजीमहाराजनें अध्यात्म सारमें कहा है किः

(अनुष्टुप्–छंद.)

स्वदोषनिन्हवो लोक–पूजा स्याद् गौरवं तथा;
इयतैव कदर्थ्यंते, दंभेन बत बालिशाः ॥ १ ॥

आपके दोष ढके जाय और लोगोंमें आपकी पूजा सत्कार वडाइ होवै–फ.॥ इतनेही के वास्ते मूर्ख शिरोमणिभूत दंभी लोग दंभद्वारा कदर्थना पाते है सो खेदकी वार्त्ता है!" पुनः भी कहा है किः–" जमीनपर सो जाना, भीख मंगकर खाना, पुराने जैसे कपडे पहेनना, और बालोंकों नोंच डालना ये सबी साधुकों करना शुकर है; लेकिन एक दंभकाही त्याग करना वडा दुष्कर है. और जहां तक दंभ–माया कपट न छोड दिया जावै, वहां तक करने आती हुइ सभी कष्ट करनी फोकट–फजूल है." वडे वडे नाम धारन करके या फलाने फलानेके शिष्य कहलाकर केवल स्वपरकों कलंकनही किये जाते हैं. जब असल फकीरीकी किम्मत बूझकर चक्रवर्ती–आपके छः खंडके साम्राज्यकों छोडकर योग साम्राज्य भजतेथे और आपके शरीरपर भी ममत्व न धरते अखंड व्रतकाही सेवन करतेथे, तब आजकल जागृत होनेवाले और जागृह हो गये

हुवे कितनेक माया देवी–कपटके उपाशक तदन उस्से विपरीत–अनर्थकारी काम करते हुवेही मालुम होते हैं. धर्मका वेष धारन करके भोले भाले नर नारी मंडलकों फंदेमें फसाकर अपनी स्वार्थ-वृत्ति–नीचवृत्ति साधनेके वास्तेही धूमधाम मचाते है. यत्न प्रयत्न करते हैं ये कैसा कायरपना और भवाभिनंदीपना कहा जावै ? फक्त अपनी नीच विषय वृत्तियोंकोंही तृप्त करनेके वास्ते अपने गुरु वगैरःका अनादर करके स्वच्छंद मतिमंद फंदमें मशगुल होकर शास्त्रविरुद्ध आचार विचार स्त्री परिचयादिककों सेवन करते हुवे उच्छृंखल 'साधु नामधारीकों' योग नशीहत करनेके वास्ते कुल जैनबच्चोंकी फर्ज है. ऐसा होनेपर भी वैसे बेशरम निफट लोगोंकों पुष्टि देनी वो तो प्रगट पापकोंही पुष्टि देने बरोबर मैं तो समझता हुं. ऐसे वेष विडंबक, विषयलंपट और मुग्ध जन विप्रतारक–वंचक–ठगारे दंभी वर्गकों और वैसे पवित्र शास्त्र विरुद्ध वर्त्तन रखने हारे वर्गकी मुग्धतासें पुष्टि करनाहारे मुग्धजनोंकों असल फकीरीका संक्षिप्त बयान और उसद्वारा उन्होंका कुछभी सद्भाग्य होवे तो उन्होंकों जागृत करनेके वास्ते श्रीकपूरचंद्रजी–चिदानंदजी महाराजने कहा हुवा पद यहां पर दाखिल करताहुं किः

(नाथ कैसे गजको बंध छुडायो ? ये राह.)

अवधू निरपक्ष विरला कोइ, देख्या जग सब जोइ, अवधू निर॰
समरस भाव भला चितजाके, थाप उथाप न होइ;
अविनाशीके घरकी वातें, जानेंगे नर सोइ. अवधूनिरपक्ष॰ १

राव रंकमें भेद न जानें, कनक उपल सम लेखें;
नारी नागिनीको नहीं परिचय, तो शिवमंदिर पेखे अवध. निर. २
निंदा स्तुतिको श्रवन सुनिकें, हर्ष शोच नहि आनें;
सो जगमें जोगीसर पूरे, नित चढते गुनठानें अवध. निर. ३
चंद्र समान सौम्यता जाकी, सागर ज्यौं गंभीरा;
अप्रमत्त भारंड तरह नित, सुरगिरि सम शुचि धीरा. अवध. नि. ४
पंकज नाम धराय पंक सुं, रहत कमल ज्यौं न्यारा;
चिदानंद इस्या जन उत्तम, सो साहबकों प्यारा अवध. निर. ५

उक्त विषयके संबंधमें श्री चिदानंदजी महाराजका बनाया हुवा पद्य पढकर अपनकों लाजीम है कि उसके परमार्थ संबंधी विचार–मनन करना. समभाव भावित आत्माही तत्वसें निर्ग्रंथ है. वैसे पवित्र आत्माओंही निर्ग्रंथ प्रवचन (शुद्ध आगम रहस्य) सम्यग् समझा जाता है. और सम्यग् परिणाम (परिणमन) शुद्धि आचार भी वेही सेवन कर सकते हैं, दूसरे बाह्याडंबरी उस तरहसें सेवन नहीं कर सकते हैं. निस्पृहतासें वैसे महाशय राजा और रंककों समान गिनते हैं, कनक (सुवर्ण) और पाषाणकों बरोबर गिनते हैं. ऊपरसें सुकोमल होनेपरभी वक्रगति रागादिभाव–विषसें भरपूर भामिनीओंकों भयंकर भुजंगिनी तुल्य गिनते हैं. ऐसे शुद्धाशयवाले संतजन नहीं मुक्ति महालयमें मौज करनेके पूर्ण अधिकारी हैं; परंतु इनसें विपरीत तुच्छ विषयसुखके कामी हो विषयांध हो–एक दीन-

दासकी तरह दीनता दिखलानेवाले और ऐसेही कल्पित सुखके सबबसें धोली–पीली मिट्टी (सुना–चांदी) पर राग रखकर बैठे हुवे, किंवा प्रकट नरकके द्वारभूत नारीमें रति–प्रीति रखनेवाले अधम–वेष विडंबक तो किसी सूरतसें भी अक्षय शिवसुखके अधिकारी हैही नहीं. सांप जैसें कंचुकीका त्यागकर डाले वैसें बाह्य परिग्रह मात्रका त्याग करकें अंतरंग काम क्रोधादिक अरिगणका जिन्होंनें जय किया है वैही सच्चे निग्रंथ हैं–निग्रंथके नाँवकों वैही सार्थक करते हैं. लेकिन उनसें विपरीत चलनेवाले तो निग्रंथ नांवकों डुबाते हैं. शरमिंदा बनाते है अलबत्त ऐसे दंभी मायादेवीके सेवकोंकों उनके प्रतिकूल वर्त्तनके लिये योग्य शिक्षा बेशक होवेगी ही होवेगी, उसमें कुच्छ संदेह नहीं. उपशम रसमें मज्जन करनेवाले क्षमाश्रमणगण निंदक या वंदकपर समभाव सह समाधिस्थ रहता है, वे कषाय कलुषित लिंगधारियोंकी मुवाफिक क्षनभरमें मासा और क्षनभरमें तोला नहीं होता है. निंदकका उपहास्य या वंदककी प्रशंसा नहीं करता है. दोनुपर समान हितबुद्धिही धारन कर रहता है, वैही सच्चे योगीश्वर कहे जाते है. वै क्षमाश्रमण चाहे वैसे विषयसंयोगोंकी अंदर भी एक क्षनभर समभाव नहीं छांड देते हैं. बाकी स्वच्छंदतासें साधुवेष धारण किये परभी भोगी भ्रमरोंकी तरह विविध विषयवासना विवसहो, तुच्छ आशाके मारे जहां तहां भटकनेवाले तो भीखारी लोगोंसें भी (योगभ्रष्ट

होनेसें) नीचे दर्जेके हैं, किसी रीतिसेंभी उच्च दर्जेके तो हैही नहीं. असे पापश्रमण पवित्र शासनकी प्रभावना यानी उन्नति करनेके बदलेमें हीलना करते हैं. उसी लियेही शास्त्र· में वै अदिष्ट कल्यान करनेवाले कहेजाते हैं. यशकीर्तिकी अभिला· षा न रखतें केवल आत्मार्थीपनेसें वर्त्तनेवाले सुसाधुजन समुदाय तो मान–अपमान या निंदा–स्तुतिकों समानही गिनतेहैं. उस प्रसंगमें हर्ष शोक नहीं करते है. वैसे अवधुत योगीश्वरो सर्वथा वंद्य हैं. वैसे मुमुक्षुयेंही प्रतिदिन अप्रमत्ततासें चलकर गुणश्रेणीपर चडते चडते क्रमशः मोक्षमहालयमें अक्षय स्थिति कर आनंदप्राप्तिसें मग्न होते हैं; परंतु परिग्रह (ममता) के बोजेसें लदेहुवे द्रव्य-लिंगी तो केवल दुःखपात्र होकर अधोगतिकेही भागीदार होते हैं इतनाही नहीं; मगर उन्होंकों फिर उंचा आना अत्यंत कठिन हो पडता है; तदपि केवल मोहके मारे वै बिचारे अति अहितकर उलटे राहस्ते चलकर चारोंगतिमैं गोथे खाते हैं. वहां दीन अनाथ असे उन विचारे नाचार मोंताजकों किसका आलंबन ? कोइ भी नहीं ! सबब यहीके उन्होंने सर्व सुखदायक सर्वज्ञभाषित सत्यधर्मकों स्व-च्छंद वर्त्तनसें धक्का मारा. एक सामान्य भी राजा–अमात्य वगैरः अधिकारीका अपमान करनेसें अपमान करनेहारेकों सख्त शिक्षा सुनानी पडती है, तो फिर त्रिभुवन पति श्री तीर्थंकर महाराजकी परम हितकारी पवित्र आज्ञाका अपमान–अवज्ञा–अनादर–तिरस्कार आपखुदीसें उल्लंघन करनेसें वैसा करनेवालेकी क्या गति होगी

वो सहजही खियालमें आ सकै वैसाहै. बाह्य और अभ्यंतर उभय ग्रंथ (ग्रंथि-परिग्रह)का परिहार करनेसेंही निर्ग्रंथपना सिद्ध होता है. उसविना वो सिद्ध नहीं होता है. वास्तेही परमात्मा-प्रभुकी पवित्र आज्ञाकों अक्षरशः अनुसरनेका कामी-मुमुक्षु जनोंकों द्रव्य और भाव उभय परिग्रह अवश्य परिहरनाही योग्य है. द्रव्यमात्रके त्यागसें अंतरशुद्धि किये सिवाय निर्विषपना प्राप्त नहीं हो सकता है. उसी लियेही परमपदके अभिलाषियोंकों उभयकाही परिहार करना जरुरका है. दीक्षित हुवेपरभी द्रव्यपरकी अनुचित (अघटित) मूर्छा स्वसंयम स्थानको अवश्य अपहरती है. इतनाही नहीं; मगर वो मूर्छित मुमुक्षुकों मोक्षके वदलेमें संसारफल देती है. अहा ! तदपि दारुण दुःखदायी मूर्छा-द्रव्य मूर्छामें शोच विचार करकेंही प्रवृत्ति करे तो उसकों इतनी वडी हानी नहीं सहन करनी पडती है. सच्चे यतीश्वर जगतसें उदासीन रहते है, वे उत्तम प्रकारकी क्षमा, उत्तम प्रकारकी मृदुता (नम्रता), उत्तम प्रकारकी ऋजुता (सरलता), उत्तम प्रकारकी मुक्ति (संतोष), उत्तम प्रकारकी तपस्या, (इच्छा निरोध), उत्तम प्रकारका संयम (इंद्रियादि निग्रह), उत्तम प्रकारका सत्य (हितमित भाषन), उत्तम प्रकारका शौच (पवित्रता), उत्तम प्रकारकी अकिंचनता (सर्वथा परिग्रह रहितता), और उत्तम प्रकारका ब्रह्मचर्य (ब्रह्मचरिता आत्मरतिपना) यह दसविध शुद्ध यतीमार्गकों अक्षरशः अनुसरनेवाले होते हैं. उन्होंकों शत्रु मित्र समान है, परम करुणारससें

उन्होंका हृदय सदा द्रवित (भीगा हुवा) ही होता है, गंभीरतासें सागरके समान होनेसें वे महाशय अन्यजनोंको बोधकारी होते हैं, और अप्रमत्तताके उच्च शिखरपर राजित हो अन्य भव्य समूहको उत्तम दृष्टांतभूत होते हैं. उत्तम महानुभाव कमलकी तरह भोग पंकसें अलग ही रहते हैं, उसीसेंही वे शुद्धाशय मुक्तियुवती (कन्या) का पानीग्रहण करने योग्य होते है. अर्थात् ऐसे संविज्ञ–शुद्धाशय सज्जनकोंही मुक्तिकन्या स्वयं वरमाला आरोपन करती है और कायमके लिये अपना वल्लभ (स्वामी) वत् स्वीकारकें उनकों अनंत–अक्षय अव्याबाधसुखके भोक्ता करती हैं. परंतु जो महाशय इसें विलक्षण स्वभावके हैं उन्सें तो मुक्तिकन्या दूर ही रहती है. जाने गुनके द्वेषीही होय उसीतरह गुणीजनोंका सहवास भी जो लोग नहीं करते हैं, जाने दोषकेही पक्षपाति होय उसी तरह जिनकों दुष्ट मनुष्योंकीही सोबत पसंद है, जो प्रमाणिक पंथ छोडकर अप्रमाणिक मार्गकाही अवलंबन कर रहते हैं. सद्गुणीकी स्तुति न करते अन्यायी और दुराचारी दुर्जनकीही खुशामत किया करते हैं, यावत् आत्मश्लाघा और परापवाद करनेमेंही कुशलता व्यय करते है; वैसे स्वच्छंदी साधुजनपर परम न्यायी प्रभु किसतरह प्रसन्न होवें ? जो शांति–सुखदायक भवभीतीवारक अमूल्य उपदेश दानसें भव्यजनोद्धारक परमशांत मुद्रालंकृत श्री जिनेश्वरादिककी परम समाधिकारक सन्मुर्तिकी उचित भक्ति–सेवा बहुमानादिकका आपमतिसें अनादर करकें उत्प-

धगामी मुग्धजनोंको परिचय—आदर करता है, वैसे स्वच्छंद वर्त्तन-के लिये भवांतरमें उन्हीकाही आत्मा परिताप सहन करेगा. जो मर्यादाकों छोडकर नाना प्रकारके रस ग्रहण करनेमें या मौजमें आवै वैसा आडा टेडा उलटा वेतरडालनेमें (मुखरीपनामें) ही रसना (जीव्हा) की सार्थकता मानते हैं; परंतु ज्ञानीपुरुषोंके हितबोध मुजब भोगकों रोगसमान वा विषयरसकों विष (हालाहल झहर) समान गिनकर उससें किंचित् भी नहीं विरमते हैं; यावत् उच्छृंखल होकें ज्यौं आवे त्यौं मदमत्तकी तरह बकवाद करते हैं, उनोंका भव्य (भला—अच्छा) होना दूरही है. जो आत्माकी सहज (स्वाभाविक) सुगंध (सुवासना) का अनादर करकें केवल कृत्रिम पुद्गलिक सुगंध लेनेकी लालसा रखते हैं, और दुर्गंध प्रति द्वेष (अरुचि) धारन करते हैं; ऐसे मुग्ध मुमुक्षु महोदय—मोक्ष प्राप्त करनेकों किस तरह भाग्यशाली हो सके? जो परमोपकारी और गुणनिधान श्री गौतम सदृश गुरुमहाराजकी द्रव्य और भाव (बाह्य और अभ्यंतर) भक्तिका अपूर्व लाभ छोडकर—तिरस्कारकर विवेक-विकल वनकर नीच अवला (पुंश्चली—कुलटा—कुमति—कुटिला) का संग—परिचयकरकें पूर्व अरिहंतादिक पंच साक्षीसें ग्रहण किये हुवे महाव्रतोंकों उंचे रखदेते है, और पवित्र हंसवृत्ति छोडकर काकवृत्ति धारण करते हैं, यावत् सिंहवृत्ति परित्याग कर स्वानवृत्ति धारन करते हैं, वैसे अधम अनाचारी वेषविडंबक दैवानोंके क्या हाल होवेंगे वो सहजहीमें समझा जाय वैसा है. मन—वचन और कायाके योगोंकों

श्री वीतरागवचनानुसार नियममें रखनेसें क्षणार्द्धमें प्राणी स्वसमीहित (वांच्छित) साध्य कर सकता है. और उससें विरुद्ध वर्त्तन रखनेसें संसारचक्रमें वारंवार छेदन भेदन होता है, उसपर श्रीउपदेशमालामें कंडरिक और पुंडरिकका दृष्टांत खास वोध लेनेलायक है, उसकों आत्मार्थी सज्जन वहांसें पढ लेना. ऐसा समझकर स्वहिताकांक्षी कौन मुमुक्षु सज्जन उक्तयोगोंका दुरुपयोग—स्वच्छंद वर्त्तन कर भवभ्रमण वढाना पसंद करेंगे ? कभि नहीं ! ऐसा कौन मूर्खशिरोमणि होवै कि चिंतामनिरत्न कव्वेकों उडानेके वास्तेही फींक देवेंगा ? ऐसा कौन बुद्धिका बारवटीआ होवैकि गजराजकों छोड गदहेपर स्वारी करनी कबूल करेगा ? ऐसा कौन मतिहीन होगाकि सुवर्णस्थालमें धूल भरेगा ? ऐसा कौन मति अंध होगाकि महासागर पार करनेहारे समर्थ जहाजकों फक्त एक फलककी खातिर भर समुद्रमें भांग डालेगा ? उसी तरह यह दुस्तर दुःखोदधिसें पार कर क्षेमकुशल मोक्षनगर पहुंचानेमें समर्थ सर्व विरति चारित्ररूप प्रवर प्रवहणउपर पूर्व पुण्ययोगसें आरुढ होकर पीछे कौन मंदमति केवल विषयतृष्णाका मारा स्वच्छंद वर्त्तनसें उसकों अधवीच भांगडाल कर अपने आत्माको भी दुःख दरियावमें साथ डुवादे ? ऐसे प्रसंगपर प्रत्येक भवभीरु आत्मार्थी सज्जनकों कितना साओचेत रहनेका है—उसका सुहृदयकों तो खियाल आये बिगर रहेगाही नहीं. वाकी दुर्विदग्ध (अर्धदग्ध) के वास्ते तो समझानेके लिये ब्रह्मा सरीखे भी सफल नहीं हो सकता है; तो फिर अपने जैसोंकी

तो मगदूर भी क्या ? अर्थात् वैसे आडंबरी—पंडितमन्यकों समझा कर—ठिकानेपर लानेका एकभी उपाव मालूम नहीं होता है. अंतमें थक कर "पापः पापेन पच्यते" यही सिद्धांतपर आना पडता है. ऐसा ज्ञानानंदी श्रीमद् चिदानंदजी महाराजजीने अपन अज्ञजनोंको अल्पबोधमें असल निर्ग्रंथ (साधु—अणगार) का स्वरुप समझाकर अपना ध्यान सत्य वस्तुतर्फ खींचा है. जो ऐसे महापुरुषके प्रमाणिक वचनसें अपनको सत्यवस्तुका (अत्र अधिकारे सुगुरु) का भान हो गया तो अपनको अवश्य खोटी वस्तु पर अरुची—त्यागभाव होना चाहियें. " ज्ञानस्य फलं विरतिः " सूर्यका उदय होनेसें अंधकारका नाश होनाही चाहियें, तैसें सत्य ज्ञान प्रकाशसें अनादि अविद्या—अविवेक दूर होनाही चाहिये. जगतमें परीक्षक लोग सुवर्ण रत्नादिक बराबर परीक्षापूर्वकही खरीदते हैं—परीक्षा किये बिगर नहीं लेते है. ऐसा प्रकट व्यवहार अनुभवसिद्ध होनेपरभी तत्त्वपरीक्षामें प्राणी बेदरकार रहवे वो क्या ओछे खेदकी बात है ? ऐसी बेदरकारीसें अनेक मुग्ध और मुग्धाओंने कुगुरुके पासमें पडकर विपरीत आचरणसें आत्माकों मलीन कर अधोगति प्राप्त कीहै. ऐसा पवित्र शास्त्रप्रमाणसें मालूम हो जानेपरभी रागांध हो, विवेकविकल बनकर प्राणी उलटे मार्गपर चढ जावै उसमें क्या आश्चर्य ? इस लिये मध्यस्थतापूर्वक सर्वज्ञकथित आगमानुसारसें तत्त्वपरीक्षा करकें शुद्ध देव गुरु धर्मका निर्णय कर अशुद्धका सर्वथा त्याग और शुद्धका सर्वथा स्वीकार करना विवेकी सज्जनोंकों सर्वदा उचित है. और

बाह्याडंबरी–दंभी मायादेवीके भक्तोंकी तरह धर्मके बहानेसें मुग्धजनोंकों ठगनेमें महा पाप है ऐसा समझकर अच्छे भाग्य योगसें प्राप्त हुवे साधु वेष (भेख) कों भजनेके लिये भवभीरु मुनीजनोंने सतत प्रयत्न करना योग्य है. " उत्तम संगे उत्तमता वधे " ये वृद्धवाक्य प्रमाण कर जिस तरह जयवंत जैनशासनकी प्रभावना होवै उस तरह मुमुक्षुवर्गकों समय अनुसरके चलनेकी प्रार्थना है. और आशा है कि वो (प्रार्थना) सफल ही होवेगी.

जिनके उपर केवल जैनकोमकाही नहीं; किंतु समस्त आलमका आधार है, वैसे महात्माओंका वर्त्तन कैसा उत्तम प्रकारका होना चाहियें ? उन्होंकी रहनीकहनी कैसी एक समान चाहियें ? उद्धत घोडेकी तरह उलटे रस्तेकी तरफ दुटे हुवे मन और इंद्रियोंकों काबूमें रखनेके लिये उन्होंकों कैसा सावध रहना चाहियें ? चिंतामनि रुदश नवकोटि शुद्ध ब्रह्मचर्यका रक्षण करनेके वास्ते नव ब्रह्मवाडी उन्होंकों कैसी शुद्ध पालनी चाहियें ? निर्मल स्फटिकरत्न समान शुद्ध आत्मस्वरुपभाव प्रकट करनेके लिये उन्होंकों चंडाल चौकडी [क्रोध–मान–माया–लोभ] का सर्वथा त्याग करकें कैसी निष्कषाय वृत्ति धारण करनी चाहियें ? निर्मल धर्मधूरीण होकर अहिंसादि पंच महाव्रतोंका अपार भार कैसी साहसीकतासें निर्वहन करना चाहियें ? पुनः पवित्र पंचाचार आप खुदकों पालनेके लिये और और मुमुक्षुवर्गके पाससें प्रतिदिवस पलानेके वास्ते वै कैसे प्रयत्नशील चाहियें ? परम पवित्र प्रवचन

माता [पांच समिति और तीन गुप्ति] का परम आदर करनेकों वै कैसे लब्ध लक्ष्य होने चाहियें ? उसकेवास्ते तो पवित्र जैनागम प्रमाण है-उक्त आगमोंमें सत्य-निर्दंभ मुमुक्षुके लिये जो जो नीति रीति बतलाइ गइ हैं. सो सो तमाम संपूर्ण आदरसें आदरनेसेंही सच्ची निग्रंथता टिक सकती है. उस विगर केवल लिंगधारीपना तो मात्र विडंबनारुपही है. महालब्धिपात्र श्री गौतमस्वामीके समान उत्तम वेष धारण कर लिये परभी जो इंद्रियोंके दास हैं; पवित्र ब्रह्मचर्यके घातकारी-स्त्री परिचयादिककों निःशंकपनेसें सेवना करते है और जो क्रोधादि कषाय तापकों शांत करनेकी एवजीमें उलटे बढाये ही जाते हैं, लोगलाज, धर्मलाज [मर्यादा] कों लोपकें संसारकी वृद्धि करते हुए जीवन गुजारते हैं, श्री अरिहंतादिक पंचकी साक्षीसें पवित्र महाव्रत धारण कर लिये परभी उनसें विरुद्ध वर्त्तन करते है, क्षमादिक दसविध यतीधर्मका आदर नहीं करते हैं, हरामखोरी करनेवाले वहेलकी तरह प्रमादविवश वर्त्तन रखकर पंचाचारका अनादर करते हैं. यावत् अष्ट प्रवचन माताका भी कुपुत्रकी मुवाफिक तिरस्कार करते हैं- ऐसे अनार्य आचरणवालोंका द्रव्य लिंगमात्रसें अच्छा किस तरह हो सके वो समझना कुच्छ मुश्कील नहीं है. तात्पर्य यही है कि सद्गुणोंके सिवाय लिंग मात्रसें कुच्छ भी श्रेय होनेका नहीं, ऐसा सुज्ञ सज्जनमंडल सत्य नीति रीति उपयोगमें लेकर सदा स्वपर उपकार साधनेकों कभी नहीं भूलेंगे.

ऐसी उमदा फकीरी बिगर जींदगी फजुलही समजनी; क्योंकि फजीतीभरी फकीरी या उपरके अमूल्य शब्दोंसें विपरीत कानून मुजबकी फकीरी तदन बकरीके गलेके आंचलकी तरह निकम्मीही है. वास्ते वैसी फकीरीकों करोडो धिःक्कार फिटकार ल्यानत हो, और सच्ची फकीरीकों कोटिशः धन्यवाद हो ! ! !

कवि शुभचंद्रजी विरचित ज्ञानार्णवांतर्गत सवीर्य-ध्यानका सारांश.

ध्यान करनेकी पहिलें कैसी प्रतिज्ञा करनी चाहियें सो कहते हैः

(१) ध्यान करनेमें प्रथम उद्यमवंत हुवा ऐसा बिचार करै कि—अहो ! पूर्वमें ये भवरुपी महावनकी अंदर कर्मरुपी वैरीओंने अनंत गुणरुप कमलकों विकश्वर करनेवाले सूर्य जैसे मेरे आत्माकों ठगलिया. (२) फिर शोचै कि—आपके विभ्रमसेंही उत्पन्न भये हुवे रागादिक निबिड बंधनोंसें बंधे हुवे मेरी ये भयंकर संसारमें अनंतकाल तक विडंबना हुइ. (३) अब कोइ महाभाग्य योगसें मेरा रागज्वर नाश हुवा और मेरी मोहनिंद भी दूर हो गई तो मैं ध्यानरुप तीक्ष्ण खड्गकी धारासें कर्मशत्रुकुं मार डालुं. (४) अज्ञानद्वारा पैदा हुवे अंधकारकों दूर कर मैं मेरे आत्माकोंही देखलुं, और कर्मसें धनके बडे भारी समूहकों जला दुं. (५) मिथ्याज्ञान-रुप ग्राह यानि हाथीकों भी रोक लेनेवाला एक जलजंतु के दांतोंसें जिनका चित्त चर्वण हो गया है ऐसे सकल लोगोंको देखने के

वास्ते अद्वितीय लोचन जैसे मेरे आत्माकों भी मैने न पिछान लिया. (६) शुरूमें भुक्तानेको वख्त रम्य, मगर पीछेसें निरस ऐसे इंद्रियोंके विषयोंनें परमात्मा—परमज्योति और जगज्जेष्ट ऐसे भी मेरेकों ठगलिया. (७) मै और परमात्मा ऐसे दोनु ज्ञानके लोचनरुप हैं तो मै परमात्मा स्वरुप प्राप्त करनेके वास्ते वो परमात्माकों जानना चाहता हुं.

(८) अनंत चतुष्ठय यानि अनंत ज्ञान, दर्शन—चारित्र वीर्य आदि गुणोंका समूह मेरी सत्तामें रहा हुवा है, और अरिहंत सिद्ध परमेष्टिकों वोही प्रकट भया हुवा है. हम दोनूमें—परमात्मा और मेरेमें इतना भेद शक्तिसत्ता और व्यक्ति—प्रकटभावके अभावसें है. शक्तिसें समान और व्यक्तिसें भेद है. कहाहै कि—विशेष रहित—सामान्य और विकार—उत्पाद व्ययादिकसें उत्पन्न होते मतिज्ञानादिक आत्मा के गुण पूर्वमें नहीं थे ऐसे नहीं, और पूर्वकालमें नहीं थे ऐसे कितनेक नये भी पैदा होते हैं; परंतु स्वाभाविक विशेष अनंत ज्ञानादिक अभूतपूर्व—पूर्वकालमें न भये हुवे—नवीन हैं. यानि आत्मद्रव्यमें सामान्य रीतिसें मतिज्ञानादि गुण भूतपूर्व—पूर्वमें विद्यमान भी कहे जावै. अभूतपूर्व—अविद्यमान नवीन भी कहे जावै. इस मुजब नय विभागसें करके वस्तुस्वरुप जानना योग्य है.

पुनः ऐसा शोचैकिः—शुद्ध द्रव्यार्थिक नयकी दृष्टिसें देख लुं तो में नारक नहीं, तिर्यंच नहीं, मनुष्य नही और देव नही; परंतु सिद्धात्मा हुं. नारकादि अवस्था सर्व कर्मका पराक्रम है.

पुनः ऐसी भावना करै कि:—अनंतवीर्य, अनंतविज्ञान, अनंतदर्शन, और आनंदस्वरुपभी मै हुं, तो मै उनके प्रतिपक्षि—शत्रुभूत कर्मविषवृक्षको क्यौं आज जडमूलमेंसे न उखाड डालुं? अवश्य उखाड डालुं!

फिर ऐसी विचारणा करै कि:—आज अपना सामर्थ्य मिलाकर आनंदमंदिरमें प्रवेशकर बाह्य पदार्थोंमें स्पृहारहित भया हुवा मैं अपने स्वरुपसें भ्रष्ट नहीं होउंगा. जब आत्मा अपने स्वरुपमें स्थिर होता है, तब आनंदमय होता है, और अन्य वस्तुओमें स्पृहा गरज—दरकाररहित बनता है. इच्छारहित हुवे बाद अपने स्वरुपसें क्यौं पीछा पडेगा?

कर्मरुपी शत्रुने अनादिकालसें फेलाइ हुइ अविद्या—मिथ्याज्ञान जाळकोंभी छेदकर आजही मेरे मेरे स्वरुपका परमार्थसें निश्चय करना है. इस मुजब ध्यानका उद्यम करनेहारा आपका पराक्रम संभालकर प्रतिज्ञा करता है इस तरह प्रतिज्ञा करके धीर पुरुष सकल रागादि कलंकसें रहित हो चंचलतारहित होकर धर्मध्यानका आलंबन करता है, और विशाल बल होवै, शुक्ल ध्यान योग्य सामग्री होवै तो शुक्ल ध्यानका आलंबन करता है.

निर्मल बुद्धि पुरुष ध्येयवस्तु क्या होवै वो कहते है. ध्यान वस्तुका होता है—अवस्तुका नही होता. वस्तुचेतन, अचेतन ऐसें दो प्रकारकी होती है. चेतन सो जीवद्रव्य है. अचेतन सो पांच प्रकारके धर्मादिक द्रव्य है. पुनः वस्तु उत्पत्ति, विनाश और स्थिति-

युक्त है. सर्वथा नित्य या सर्वथा अनित्य नहीं. पुनः वो मूर्त्त वा अमूर्त्त होते हैं. पुद्गल मूर्त्त है, चेतनादि अमूर्त्त है. शुद्ध ध्यानसें कर्मरुपी आवरण जिनने दूर किये है ऐसे मुक्तिके स्वामी सर्वज्ञ देव–शरीरवाले सर्व उपद्रवरहित अरिहंत भगवान् और दूसरे शरीररहित सिद्धभगवान्–ध्येय है.

ये जीवादिक छःद्रव्य हैं सो चेतन और अचेतन लक्षण लक्षित है. वै सभी धर्मध्यानमें उन्हीके स्वरुपकी अंदर विरोध न आवै उस तरह बुद्धिवंत पुरुषोंको ध्यावने योग्य है.

जब ध्यान पूरा होवै तव बुद्धिवान् पुरुष मनको समाधियुक्त वैराग्ययुक्त या करुणारुप समुद्रमें निमग्न करै.

या दूसरी तरहसें त्रिलोकनाथ–अमूर्त्त–परमेश्वर–परमात्मा–अविनाशी देवका साक्षात् ध्यान करनेका अभ्यास करै.

शक्ति और व्यक्तिकी विविक्षासें त्रिकाल गोचर सामान्य द्रव्यार्थिक नयके मतसें साक्षात् एक ऐसे परमात्माका अभ्यास करै, संसारअवस्थामें शक्तिरुप परमात्मा हैं, मुक्तावस्थामें व्यक्तिरुप परमात्मा हैं. अभेदनयसें आत्मामें भेद नहीं है. अब परमात्मा कैसे हैं सो कहताहुं. प्रथम साकार–शरीरके आकारसहित है, पीछेसें निराकार आकाररहितभी है–यानि पुद्गलके जैसा उन्होंका आकार नहीं है. क्रिया रहित हैं, परमाक्षरस्वरुप हैं, विकल्परहित हैं, निष्कंप–नित्य–आनंदमंदिर–विश्वरुप है, समस्त ज्ञेय पदार्थोंके आकार जिन्होंमें प्रतिबिंबित हैं, जिन्होंका स्वरुप मिथ्यादृष्टिवालोंने

न देखा वैसे हैं, सदाकाल उदयवंत हैं, कृतकृत्य हैं,—जिन्होंको कुछ करनेका बाकी नहीं रहा है, शिव—कल्याणरुप हैं, शांत—क्षोभरहित हैं, निःकल—शरीर रहित, करणच्युत इंद्रियेंविगरके, समस्त भवसें उत्पन्न भये हुवे क्लेशरुप वृक्षकों दग्ध करनेकों अग्निसमान हैं, शुद्ध—कर्म-रहित हैं. अत्यंत निर्लेप है—कभी कर्मका किंचित्‌भी लेप नहीं लगता. ज्ञानराज्य सर्वज्ञपनेकी अंदर स्थापित हैं, निर्मल आयनेकी अंदर दाखिल भये हुवे प्रतिबिंब समान जिन्होंकी प्रभा है, ज्योतिर्मय—ज्ञानप्रकाशरुप हैं, महान् शक्तिमान् हैं, परिपूर्ण हैं, पुरातन हैं, किसीने नये बनाये हुवे नहीं, निर्मल आठगुण सहित हैं, निर्द्वंद्व—रागादि दोषरहित हैं, रोगरहित हैं, अप्रमेय,—अमाप—जिन्होंका प्रमाण न हो सकै वैसे है, विश्वतत्त्वकी अवस्था जाननेवाले हैं, बाह्यभावसें ग्रहणयोग्य नहीं, अंतर्भावसें क्षणमात्रमें ग्रहण करने योग्य हैं, ऐसे स्वभाववाला साक्षात् स्वरुप परमात्माका है. पुनः जो अणुसें भी सुक्ष्म, और आकाशसें भी वडे है, सो सिद्धात्मा जगत्‌वंद्य, अत्यंत निर्वृत्त—शांत सुखमय निष्पन्न हुवे है, जिन्होंके ध्यानमात्रसेंही संसारसें प्राप्त होनेहारे जन्ममरणादि रोगनष्ट होते हैं—अन्यथा नष्ट नहीं होते, सो ये सिद्धात्मा जगत्‌प्रभु अविनाशी परमात्मा हैं. जिन परमात्माकों जान लिये बिगर दूसरा सब जान लिया निकम्मा है, और उन्हीकों जान लेवै तो फिर सब कुछ जान लिया ही है. जिन परमात्माको स्वरुप जाने बिना आत्मतत्त्वका निश्चय नहीं होता आत्मस्वरुपमें रमण नहीं होता, और जिन्होंको जानकर मुनियोंने सा-

र्थात् वही परमात्माका वैभव प्राप्त करलिया है; वास्ते मुक्तिकी चाहतवाले मुनियोंकों वही प्रभुजीका ध्यान करना, और अन्य सर्व शरण छोडकर उन्हीकोही एक शरण ग्रहण कर उनकी अंदर आपके अंतरात्माकों जोडकर उनकोंही विशेष प्रकारसें जानना-दृष्टिगोचर करना.

जो वानीकों अगोचर-न वर्णन किये जाय वैसे-अव्यक्त, अनंत नाश-विगरके, शब्दरहित, अजन्मा और संसारभ्रमणसें रहित है ऐसे परमात्माको विकल्परहित चिंतवन करना. जिनके ज्ञानके अनंत भागमें द्रव्यपर्याययुक्त लोकालोक आ रेहा हुवा है ऐसे परमात्मा तीनलोकके गुरु होवै यानि जिसका ज्ञान अनंत है वही त्रिजगद्गुरु हो सकैं.

ध्यान करनेहारा मुमुक्षु मुनि परमात्माके स्वरुपमें अपना मन लगाकर उनके गुणसमूहसें रंजित भया हुवा आप अपने आत्माकों उनकी अंदर उन्हीका रुप प्राप्त करनेके वास्ते जोड देता है. इस मुजब निरंतर स्मरण करता हुवा और उस परमात्माका जिसने स्वरुप पहिचान लिया है ऐसा योगी ग्राह्य यानि ये परमात्माका स्वरुप मेरे ग्रहण करने लायक है और ग्राहक यानि इनकों ग्रहण करनेवाला मैं हुं, ऐसे भाव भेदरहित तन्मयपणाकों पाता है. द्वैतभाव नहीं रहता है. ध्यान करनेहारा मुनि अन्य सर्व शरण छोडकर यानि उसीकाही एक शरण ग्रहण कर उन परमात्माके स्वरुपमें इस तरह लीन हो जाता है, कि ध्याता यानि ध्यान करनेहारा और ध्यान इन दोनूका

अभाव होनेसें ध्येयकी साथ एकयता प्राप्त होती है; अर्थात् ध्याता —ध्यान—ध्येयका भेद नहीं रहता है; यानि आपही ध्येयरुप होता है. जिस भावमें आत्मा परमात्मामें अभेदपनेसें लीन होते है उसीही समरसी भाव—आत्मापरमात्माका समानता भाव है. वही आत्मा परमात्माका एकीकरण है. समरसी भावसें आत्मा परमात्मा होता है.

एकीकरणमें आत्मापरमात्माके शरण सिवाय दूसरा शरण नहीं लेता. उसीमेंही उसीका मन लीन हो गया हुवा होता है. उसीकेही गुण (परमात्मा जैसे और परमात्मा जितनेही अनंत) उसीमें होते हैं. उसीकाही शुद्ध स्वरुप (बराबर) अपना स्वरुप होता है. वो और ये एकस्वरूपवाले होनेसें ये, वो, वही है इस मुजब परमात्माके ध्यानसें आत्मा परमात्मा होता है.

जिन परमात्माके ज्ञान बिगर प्राणी जरूर जन्मरुपी वनमें भटकते है और जिन परमात्माकों जान लेनेसें तुरंतही इंद्रगुरु—बृहस्पतिसें भी ज्यादे महत्ता मिलती है, वही परमात्मा साक्षात् सकल लोकके आनंदविलास है. उत्कृष्ट ज्ञानरुप प्रकाश है. रक्षक है. परमपुरुष है. जिनका स्वरुप भी न चिंतवन किया जाय वैसे परमात्मा है. इस मुजब ध्यानमें निरंतर भावनासें जन्म जरारहित परमात्माकों ध्यानमें सदा ध्याते है, भावते है, वो सवीर्यध्यान कहाजाता है.

सार शिक्षासंग्रह.

१ "सज्जन मुख अमृत लवै, दुर्जन विषकी खान;"

२ "नारी चित्त देखना, विकार वेदना; जिनंदचंद देखना,
शांति पावना."

३ "जननी जणे तो भक्त जण, कां दाता कां शूर;
नहींतो रहजे वांझणी, मत गुमावे नूर."

४ "ज्ञान विना व्यवहारको, कहा बनावत नाच?
रत्न कहे कोउ काचकों, अंत काच सो काच!"

५ "रवि दूजो तीजो नयन, अंतर भावि प्रकाश;
करो धंध सब परिहरी, एक विवेकअभ्यास."

६ "क्षमा सार चंदनरसें, सिंचो चित्त पवित्त;
दयावेल मंडपतले,—रहो लहो सुख मित्त."

७ "मौनं सर्वार्थ साधनं—सबसें बडी चूप."

८ "बालादपि हितं ग्राह्यं, एक बालकका भी हितकारी वचन
होवै तो उसकों कबूल करना चाहियें."

९ "जनमन रंजन धर्मको, मूल न एक बदाम."

१० "दुखमें सब कोउ प्रभु भजें, सुखमें भजै न कोय;
जो सुखमें प्रभुकों भजे, तो दुख कहांसें होय?"

११ "न प्राणांते प्रकृति विकृति जायते चोत्तमानाम्—उत्तमजनोंकी
प्रकृति प्राणांततकभी विकृतिवंत नहीं होती है!"

१२ "संवेग रंग तरंग झीलै मार्ग शुद्ध कहे बुधा;

तेहनी सेवा कीजियें, जेम पीजियें समता सुधा."

१३ "हीणा तणो जे संग न तजे, तेहनो गुण नवि रहे,
ज्यौं जलधि जलमां भळ्युं, गंगा नीर लूणपणुं लहै."

१४ "बुरा बुरा सब को कहै, बुरा न दीसे कोय!
जो घट शोधुं आपका, (तो) मुझसें बुरा न कोय!!"

१५ "खड्डा खोदै सोही पडै!"

१६ "किसीकीभी निंदा नहीं करनी, यदि करनी चाहो तो खुद आपकी ही निंदा करियो."

१७ "सबका भला चाहो. कबीभी किसीका बुरा नहीं चाहना."

१८ "औगुन पर जो गुन करैं, सो विरले जग जोय!"

१९ "किसीकों मर्मभेदक, कटु या बिभत्स भाषण नहीं कहना."

२० "कोई भी कार्य सहसा—बिगरविचारे मत करियो."

२१ "दगा किसीका सगा नहीं, न किया हो तो कर देखो!"

२२ "गुस्सेबाज और कटु बोलनेहारेकों चांडाल समान गिनो."

२३ "धर्मसें जय और पापसें क्षय होता है."

२४ "परद्रव्यहरनके जैसा कोई भारी पाप नहीं है."

२५ "शीलभूषणके जैसा एक भी दूसरा अमूल्य भूषण नहीं."

२६ "संतोषसें कोई बढिया सुख नहीं है."

२७ "जर बिगर नर खर जैसा है." सदुद्यम समान कोइ बांधव नहि है.

२८ " न्याय, नीति, सत्य, प्रमाणिकता ये प्राणके उदय चिन्ह हैं. "

२९ " दीर्घ दृष्टि–दीर्घदर्शीत्व–अगमचेतीपना ये आते हुवे दुःखोकों रोकदेनेका उत्तम साधन है. "

३० " कुशीलता ये प्रकट दुःखका, और सुशीलता ये सुखका मूल है. "

३१ " विवेकविकल प्राणी पशुकी गिनतीमें गिना जाता है. "

३२ " लोभका थोभ यानि अंत नहीं है. "

३३ " इच्छा आकाशकी तरह अंतबिगरकी है. "

३४ " तृष्णासें उपरांत कोइ जबरदस्त दूसरा दर्द नहीं है. "

३५ " रात्रिभोजनमें महान् पाप है. "

३६ " रागद्वेषका क्षय करके शुद्ध होना ये सब तीर्थंकर श्रीजीका सनातन उपदेश है. वे आप विशुद्ध होकर दूसरोंको विशुद्ध होनेका फरमाते हैं. "

३७ " पंडितोपि वरं शत्रु र्न मूर्खो हितकारकः यानि पंडित शत्रु होवै तो अच्छाः मगर मूर्ख दोस्त होवै सो बहुत बुरा"

३८ " मूर्खके साथ दोस्ती करनेसें कदम दर कदम क्लेश होता है. "

३९ " नारी नरकका द्वार है ! "

४० " कर्मको शरम हैही नहीं ! "

४१ " संप वहां जंप है. कुसंपका मुँह काला करो. "

४२ " कथनी कथैं सब कोय, रहनी अति दुर्लभ होय. "

४३ " कथनी मिसरी सम मीठी, रहनी अति लगै अनीठी; "

४४ " जब रहनीका घर पावै, तब कथनी गिनतिमें आवै. "

४५ " लघुतामें प्रभुता वसै, प्रभुतासें प्रभु दूर. "

४६ " परकी आश सदा निराश. "

४७ " काचा घडा काचकी शीशी, लागत ठणका भागै;
सडण पडण विध्वंस धर्म जस, तसथी निपुण निरागै—
वो घट विणसत वेर न लागै ! "

४८ " मद छक छाक गैल तजी विरला, गुरुकृपा कोउ जागै;
तनधन नेह निवारी चिदानंद, चलियें ताके सागै.
वो घट: "

४९ " कबहिक काझी कबहिक पाजी, कबहिक हुए अपभ्राजी;
कबहिक जगमें कीरति गाजी, सब पुद्गलकी बाजी—
आप स्वभाव मेरे अवधु सदा मगनमें रहना.

५० " शुद्ध उपयोग अरु समताधारी, ज्ञान ध्यान मनोहारी;
कर्मकलंककों दूर निवारी, जीव वरै शिवनारी. आप.अ."

५१ " समताके फल मीठ है ! वास्ते समता रखकर चल ! "

५२ " हाथ सोही साथ—दोगे वैसा पाओगे. बोवोगे वैसा लनोगे.

५३ " क्षण लाखिणा जाय; साधि सकै तो साध ! "

५४ " कलकों कालका भय है; वास्ते जो करना होय सो
आजही कर लै. "

५५ " मरना कदमके नीचे ही है; वास्ते जल्द चेत !

५६ " मरण तणा निशाना मोटा, गाजे छे माथे;
तमे चालोने प्रितमजी प्यारा सिद्धाचल जइयें.
जे करवुं ते वहेलां कीजे; काले शी वातो ?
अणचिंती आवीने पडशे, सवळानी लातो. तमे. "

५७ " शील रहित नर फूटडां जेवां आवल फूल;
शीलसुगंधे जे भर्यां, ते माणस बहु मूल. "

५८ " ममता रांड भांडकी जाइ है वास्ते उसका संग मत करो."

५९ " संतसमागम समान कोइ ज्यादे सुख नहीं है. "

६० " वैराग्य समान कोइ मित्र नहि है. "

६१ " चांडाल दो तरहके है यानि जाति चांडाल और कर्म चांडाल. " जाति चांडालसें कर्मचांडाल आकरा है.

६२ " कौन्वे जैसे परछिद्र गवेषी कर्मचांडाल कहे जाते हैं. "

६३ " जैसी सोवत वैसी असर होती है. "

६४ " सोवत करो तो संत सुसाधुजनोंकी करो. "

६५ " मिथ्यात्व समान कोइ विशेष दुःखदायी रोग नहीं है. "

६६ " समकितको चिंतामणीरत्नसें भी अधिक अभीष्टदाइ समझलो. "

६७ " जयणा धर्मकी माता है. "

६८ " सुज्ञमनुष्य जयणामाताकी हमेशां सेवा कियेही करे. "

६९ " सत्यवचन बोलना सो मुखकी शोभा है. "

७० " परनिंदा समान एक भी दुष्ट पाप नहीं. "

७१ "कर्मकटक जीते सोंही जिन, (और) उनसें त्रास पावे सो दीन."

७२ "पंडित ते जे निराभिमान."

७३ "इच्छारोधन तप मनोहार."

७४ "शक्ति होनेपरभी छुपा देवे सोही चोर."

७५ "अंतरलक्ष्य रहित सो अंध, जानत नहि मोक्ष अरु बंध."

७६ "जो नाहि सुनत सिद्धांत बखान, बधिर पुरुष जगमें सो जान."

७७ "औसर उचित बोल नहि जानै; ताकों ज्ञानी मूक बखाने."

७८ "मोह समान रिपू नही कोइ, देखो सब अंतरगत जोइ."

७९ "डरत पापसें पंडित सोइ, हिंसा करत मूढ सो होइ.

८० "कल्पवृक्ष संयम सुखकार, अनुभव चिंतामणि विचार."

८१ "कामगवी वरविद्या जान, चित्रावेली भक्ति चित आन"

८२ "नयनशोभा जिनबिंब निहालो, जिनप्रतिमा जिनसम करी धारो."

८३ "सत्यवचन मुखशोभा भारी, तजें तांबूल संत ते धारी."

८४ "निर्मल नौपद ध्यान धरीजें, हृदय शोभा इनविध नित कीजें."

८५ "सद्गुरु चरणरेण शिर धरियें, भाल शोभा इणविध भवि करियें."

८६ "अहिंसा परमोधर्मः जीवदया समान कोइ उत्तम धर्म नहीं है."

८७ " मिष्टवचनसहित सो दान, गर्वरहित सो ज्ञान प्रमान. "
" क्षमा सहित सो शौर्यवखान, विवेकसहित वित्त सो जान."
ये चारों अपूर्व चिंतामणि समान जैसे है सो किसी भाग्यशालीकोंही प्राप्त होते हैं. "

८८ " परद्रव्य, परस्त्री और खलपुरुषका कबी भी संग नहीं करना. "

८९ " चलना है जरुर जाकों, ताकों कैसा सोवणा. "

९० " जाग अवलोक निज शुद्धता स्वरुपकी, शोभा नहीं कही जात चिदानंद भूपकी. "

९१ " विषयवासना त्यागो चेतन, साचे मारग लागोरे. "

९२ " आतमध्यान समान जगतमें, साधन नहि कोउ आन. "

९३ " गाफिल मत रहो छिनभर तुम, शिरपर धूमे तेरे काल अरी. "

९४ " थोडेसे जीवनकाज अरे नर! काहेकों छल प्रपंच करो?"

९५ " औसर पाय न चूक चिदानंद, सद्गुरु यौं दरसायारे."

९६ " सम्यग् ज्ञान और क्रिया ये मोक्षवृक्षका अवंध्य बीजहै"
यतः ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः

९७ " जीकों परभव जानेके वख्त फक्त धर्मकाही आधार है."

९८ " जिसका मन पवित्र उसीकोंही पवित्र जानो. "

९९ " मोह समान एक भी मस्त मदिरा नहीं है. "

१०० " विषय समान सर्वस्व चोरनेवाला कोई चोर नहीं है. "

१०१ " तृष्णा समान कोइ विषवल्ली नहीं है. "

१०२ "मरन समान कोइ विशेष भय नहीं है."

१०३ "राग समान कोइ अति दृढ बंधन नहीं है."

१०४ "स्त्रीकटाक्षसें अपना बचाव करनेहारे जैसा कोइ शूर नहीं."

१०५ "सदुपदेश जैसा कोइ अमृत नहीं है."

१०६ "स्त्रीचरित्र समान कोइ गहन चारित्र नहीं है."

१०७ "स्त्रीचरित्रसें न ठगाया जावे उसके समान दूसरा कोइ चतुर नहीं."

१०८ "असंतोषके जैसा कोइ दूसरा दारिद्र्य नहीं और याचनाके जैसी कोइ लघुता नहीं."

१०९ "संजम समान जीवित नहीं है."

११० "प्रमाद जैसी कोइ जडता नहीं."

१११ "धन, यौवन और आयु ये तीनुं अस्थिर हैं."

११२ "सज्जन चंद्रकिरण जैसे शीतल है."

११३ "परवशता जैसा दुःख नहीं, और स्वतंत्रता जैसा सुख नहीं."

११४ "तत्त्वसें स्वपर हितकारी वचनही सत्य है."

११५ "प्यारेमें प्यारी चीज प्राण है."

११६ "पापसें मुक्त करे उसीकों सच्चा दोस्त जानो."

११७ "औसरपर दान देनेके समान दूसरा दानही नहीं"

११८ "गुप्त पाप समान कोइ शल्य नहीं."

११९ "जगत्मात्रके साथ मैत्री रखने समान कोइ आनंद नहीं

१२० " अखंडव्रत पालनेहारे जैसा कोइ भाग्यशाली नहीं. "
१२१ " व्रत खंडन करके जीनेवाले जैसा कोइ कमनसीब नहीं. "
१२२ " सत्य, प्रिय और विनीत भाषण जैसा कोइ उत्तम वशीकरण नहीं है. "
१२३ " मध्यस्थता जैसा कोइ श्रेष्ठ मार्ग नहीं है. "
१२४ " दुर्जनका स्नेह झूंठा—पतंगरंग जैसा समझ लो. "
१२५ " कलिकालमें भी कुलीन पुरुष मेरु जैसे धीर होते हैं. "
१२६ " धनवंत होनेपर भी कृपणता रक्खे सो शोचनेलायक है. "
१२७ " धन थोडासा होवे तोभी उदारता बुद्धि होवै सो प्रशंसनीय है. "
१२८ " यथाशक्ति यतनीयं शुभे—शुभकार्यमें शक्ति गुंजास मुजब यत्न—उद्यम करना. "
१२९ " विवेक जैसा कोइ सन्मित्र नहीं. "
१३० " बहुरत्ना वसुंधरा "
१३१ " भरपूरे होवै सो छिलकाते नहीं. "
१३२ " निंदा करै सो होवै नारकी. "
१३३ " पथ्य आहार समान दूसरा कोइ औषध नहीं. "
१३४ " कर्म समान कोइ कष्टसाध्य रोग नहीं. "—धर्म समान कोइ औषध नहि.
१३५ " पंथ समान कोइ जरा नहीं. "
१३६ " अपमान समान कोइ दुःख नहीं. "
१३७ " क्षुधा जैसी कोइ प्राणघातक पीडा नहीं. "

१३८ " सद्ज्ञान समान कोइ अखूट धन नहीं. " और
" आशा समान कोइ बंधीखाना नहीं. "

१३९ " मोहके जैसी कोइ कठीन जाल नहीं. "

१४० " सद्भावना समान कोइ उत्तम रसायण नहि.

१४१ " चिंता और चिता दोनु मनुष्यदेहको जलानेमें बरोबर है. "

१४२ " चित्तशुद्धिके वास्ते व्यवहारशुद्धिकी खास जरुरत है. "

१४३ " शुद्ध कपडेपर जैसा रंग उमदा चढ सके वैसा मैले कपडे-
पर न चढ सकैगा और उमदाभी मालुम न होवेगा. "

१४४ " आनंदघनप्रभु कारी कामरीआं, चढत न दूजोरंग. "

१४५ " घूट घाटकर आयने जैसी बनाइ गइ दीवारपर जैसा
चित्र निकाला गया सुंदर लगै, वैसा खाडे खड्डेवाली
मैली दीवारपर सुंदर नहीं लगता है यानि बेहुदा लगता
है. धर्मरंगभी उसी तरह यानि उपरके कथन मुजब स्वच्छ
और अधिकारी मनपरही चढ सकता है. " परंतु मलीन
मनपर धर्मरंग नहीं चढ सकता है; वास्ते अवश्य अंतर-
शुद्धि करनेकी सबसें पहिले जरुरत है.

१४६ " जैसें विरेचन—जुलाब लिये बिगर अंतरशुद्धि नहीं होती
है तैसेही समतादिद्वारा कषायमल दूर किये बिगर मन-
शुद्धि नहीं हो सकती है. "

१४७ " राग और द्वेष मोहराजाके पाटवी पुत्र और कषाय-
के भाइ हैं. "

१४८ " राग केसरीसिंह समान और द्वेष हाथी समान गिनाता है. "

१४९ " मद, भय और रोष या विषय, कषाय और आशंसा ये महान् त्रिदोष–सन्निपातरुप हैं, " इनको त्याग कीये विगर कल्याण नहि.

१५० " रोगीकों जैसे गुणकारी दुध, घी विकार करते है, वैसेंही अयोग्य–ना लायक–कुपात्रकों फायदेमंद ज्ञानादिभी विक्रिया करते हैं. वास्ते धर्मके लायक हुवा जाय वैसे सुपात्र होनेकी जरुरत है. "

१५१ " सर्वज्ञकथित गुणोंका सेवन करनेसें जीव धर्मके लायक होता है. "

१५२ " धर्मार्थी जीवोंकों क्षुद्रता यानि पराये छिद्र–दोष देखनेकी बुद्धिका सर्वथा त्याग कर देना. "

१५३ " शरीरके वास्ते योग्य साओचेती रखनी योग्य है; क्यौंकि धर्मार्थकाम मोक्षाणां, शरीरं साधनं यतः "

१५४ " सौम्यता-शीतलता धारन करनी, रौद्र आकृती छोड देनी. "

१५५ " लोकप्रिय हो सकै वैसी अच्छी मर्यादा संभालनेमें न चुकना, लोकविरुद्ध कार्यकों बिलकुल छोड देना. "

१५६ " किंचित् भी क्रुरता न रखनी–दयार्द्र चित्तवंत हो रहना. "

१५७ " पाप और अपवादसें बहुतही डरते रहना. "

१५८ " शठता, छल, प्रपंच, दंभ, विश्वासघात वगैरःका त्याग करना. "

१५९ " दाक्षिण्यता आदरनी गुर्वादिककी मर्यादा लोप नहीं देनी "

१६० " लज्जा, मर्यादा समालनी. "

१६१ " दयालुत्व—हृदयमें कोमलता दया रखनी "

१६२ " मध्यस्थता—निष्पक्षपातता—न्यायबुद्धिसें तटस्थता रखनी "

१६३ " चाहे वहांसें भी गुण ग्रहण करनेके लिये दरकार रखनी और गुणरागी हो रहना. "

१६४ " सत्य, मतलब जितना, और शास्त्रसंमतही बोलना. "

१६५ " स्वपक्ष स्वकुटुंब पुष्ट—धर्मयुक्त होवे वैसी इच्छा रखनी और अमलमें लेनी. "

१६६ " दीर्घदर्शी होना, विना विचारे किसी काममें कूद न पडना, मगर परिणाम—आखिर (Result) क्या होगा वो शोच कर काम करना. "

१६७ " तत्वज्ञान मिलानेके वास्ते पूर्ण यत्न करना और विज्ञान प्राप्त कर लेना. "

१६८ " वृद्ध—शिष्ट—पुरुषोंके कदमानुसार चलना स्वच्छंदी न होना—यतःमहाजनोयेनगतःसपंथाः ":

१६९ " विनय करना—गुणीजन या वयोवृद्ध तपोवृद्धादिककी योग्यता समालकर समयोचित नम्रता मृदुतादि उचित विवेक करना, हृदयमें गुणका बहुमान करना.

१७० " कृतज्ञ—किये हुवे उपकारको न भूल जाना, कभीभी कृतघ्न न होंना. "

१७१ " परोपकाराय सतां विभूतयः, दुसरेका उपकार दुःख दूर करना वगैरः अपनी शक्तिके अनुसार करना—परोपकार बुद्धिमें तत्पर रहना. "

१७२ " लब्ध लक्षता धारन करनी, सुनिपुणता रखकर उचित कार्य प्रवृत्ति करनी. "

१७३ " उपर कहे हुवे शुभ गुणोंके सेवनसें धर्मका अधिकारी हुवा जाता है और उसमें वढताही जाता है. तथा गृहस्थ धर्मकी शुद्धि होती है और शुद्ध श्रावक धर्म प्राप्त हो सकता है. अनुक्रमसें दसविध यतिधर्मकी भी प्राप्ति हो सकती है, और प्रमाद रहित शुद्ध यतिधर्मके आराधनसें बहुत अच्छी आत्मविशुद्धि होती है. क्रमशः शुक्ल ध्यानके योगसें सकल कर्म क्षय करके सिद्धि वधूका हमेशके वास्ते समागम होता है. और पुर्णानंदी होकर अंतरात्मा परमात्माकी दशा प्राप्त करता है. परमात्म दशा प्राप्त होनेसें जन्ममरणादि सब उपाधि दूर होजाती हैं. जैसें दग्ध (जलगये) हुवे बीजसें अंकुर नही उगसकता है, वैसेंही परमात्मदशा पाकर सर्व कर्मका संक्षय करनेसें भव संसाररुप अंकुर नहीं ऊग सकता है यानि उसका पुनर्जन्म होताही नहीं. ऐसी परम सिद्धदशा प्राप्त होती है. "

१७४ " सिद्ध परमात्माको एकांतिक और आत्यंतिक—अव्यभिचारी सुख है. समस्त कर्ममलको क्षय हो जानेसें निर्मल सुवर्ण जैसी विशुद्ध भइ हुइ परमात्मदशा सोही सिद्धदशा कही जाती है. "

१७५ "जो जो जीव वहिरात्मपना छोडकर अंतरात्मपना भजकर परमात्माका दृढ आलंबन पकड लेता है वो वो जीव 'कीडे और भौरीके न्याय मुजब' आखिर परमात्मदशाही पाते हैं."

१७६ "वहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा ये आत्माके तीन भेद है."

१७७ "क्षणिकरूप जड वस्तुमें मोहित होकर राग द्वेषके मलसें आत्माकों मलीन करता है वही मूढ वहिरात्मा कहा जाता है."

१७८ "अंतर लक्ष्य-विवेक-उपयोग जागृत होनेसें जिनकों स्वपर-जड चेतन-गुण दोष-कृत्याकृत्य-हिताहित-भक्ष्याभक्ष्य-पेयापेय वगैरःका यथार्थ भान हुवा होवै वो अंतरदृष्टिआत्मा अंतरात्माके नामसें पहिचाना जाता है."

१७९ "संपूर्ण विवेकद्वारा समस्त भेद भाव दूर करकें शुक्ल ध्यानके जोरसें घातीकर्मका बिलकुल नाश हो जानेसें जिनकों अनंत चतुष्टय यानि अनंत ज्ञान दर्शन चारित्र-वीर्य प्रकट हुवे है वो आत्मा की परमदशा पानेसेंपरमात्मा कहा जाता है."

१८० "कर्मरूप ढंकनसें ढकी गइ हुइ सर्वस्व रिद्धि सिद्धि सम्यग् ज्ञान-दर्शन और संयमकी मददसें प्रकट हो सकती है."

१८१ "समस्त कर्म आवरणके क्षयसें सत्तागत समस्त

गुण समृद्धि संपूर्ण प्रकट होनेसें जिन्हने अचल सिद्धिकी स्वाधीनता प्राप्त करली है वे सिद्ध परमात्माके नामसें पहिचाने जाते हैं. वै अनंत–अक्षय–अव्याबाध शिव-संपत्तिके शाश्वत भोक्ता हैं."

१८२ "सम्यग् ज्ञान, दर्शन और चारित्रके आराधनसें विशुद्ध परिणाम योगद्वारा शुक्ल ध्यानके जोर समस्त कर्म दूर कर परमात्मदशाकों प्राप्त भये हुवे सर्व सिद्ध महाराज-जी सिद्धिस्थानमें एक जैसे शिवसुखके भोक्ता हैं, वै सभी सिद्ध परमात्माओंकों हमारा त्रिकरण शुद्ध निरंतर नमस्कार हो!

हीरप्रश्न और सेनप्रश्नका उध्धरित सार तत्त्व.

१ श्रीजिनप्रतिमाजीकों चक्षु टीके वगैरःका लगाना गरम किये हुवे रालके रससें किया जावै तो आशातना होनेका संभव है; वास्ते निपुण श्रावकोंकों मुनासीब है कि रालकों उमदा घृत अगर तेलमें मिलाके कूटके नरम बनाकर पीछे उसद्वारा टीके चक्षु वगैरः चोंटावें.

२ नींबूके रसकी पुट दिहुइ अजवायन दुविहार पच्चख्खाणमें और आयंबिलमें खा लेनी नहीं कल्पती है यानि न खानी चाहियें.

३ तीर्थंकरजी जिस देवलोकसें च्यवकर मनुष्य गतिमें आवें वहां वो देवलोकके जीवोंकों जितना अवधि ज्ञान होव उतना अव-

धिज्ञान उन तीर्थंकरजीको होता है. यानि गृहस्थ तीर्थंकरोंमें अवधि ज्ञान कम ज्यादा इस सबबसें होता है. (सभीको समान नहीं होता है.

४ वर्षाकालमें साधुजीने जहां चातुर्मासा किया होवै वहांसें पांच कोश तकके संविज्ञ क्षेत्रमें कारण शिवाय चातुर्मासा पूर्ण किये बाद दो महीने तक वस्त्रादिक लेना नहीं कल्पै; यह अधिकार निशिथ चुर्णीमें है.

५ कुमिहर नामसें प्रसिद्ध हुइ अजवायन वृद्ध–ज्ञानी पुरुषोने अचित्त मान ली है.

६ दुपहर और दोनू संध्या समय निर्युक्ति भाष्यादिक तमाम पाठका पठन पाठन करनेका आचारप्रदीपादि ग्रंथमें निषेध किया–मना की है.

७ उपधानमें पहेरी जाती माला संबंधी सुना, चांदी, रेशम या सूत वगैरः द्रव्य देवद्रव्य होवै. यानि उनको देवद्रव्य गिनते हैं.

८ शय्यातर तो जिनकी निश्रामें रहवें वही कहा जाय ऐसा श्रीबृहत्कल्पादिकमें कहा है. बडे कारण के लिये तो उनके घरकाभी व्होरना कल्पता है.

९ एक और दोसें अंतरित परंपरा संघट्ट छोडने योग्य है. तीनसें अंतरित होवै तो संघट नहीं लगै.

१० दिन अस्त होनेके वख्तकी पडिलेहण के समय तिविहारका पच्चखाण किया होवै तो प्रतिक्रमणके समय पाणहारका पच्चखाण लीया जाय; मगर तिविहारका पच्चखाण नहीं किया होवै तो

उसें चौविहारका पच्चखाण करना चाहियें.

११ विकलेंद्रि मरण होकर मनुष्यपणा पावे उस भवमें सर्व विरतीपणा पावे; लेकिन मोक्षमें न जा सकै ऐसा संग्रहणीवृत्तिमें कहा है.

१२ साधुकी तरह साध्वी चारण श्रमण लब्धीवंत नही हो सकती है.

१३ शरीर और दीपक अग्नि आदिकी उद्योत बीचमें चंद्रका प्रकाश पडता होवै तो भी उजेही लगै; मगर यदि शरीरपर चंद्रका उद्योत पडता हो वै तो उजेही न लगै.

१४ प्रातःकालमें मिलाया—जमाया गया दहीं सोलह पहरके बाद अभक्ष्य होवै; मगर कुछ सोलह पहरका नियम नहीं है, किस लिये कि संध्या समय जमाया गया दहीं बारह पहरके बाद भी अभक्ष्य हो जाता है.

१५ श्रीमान् और गरीबकी अपेक्षासें उच्च नीच कुलमें (समवृत्ति) गोचरीके वास्ते फिरनेसें सामुदानी भिक्षा कही जाती है.

१६ मंडलीके आयंबिल वडी दिक्षा दिये बादही करने सूझें.

१७ द्रव्य लिंगीओंका द्रव्य जिनमंदिर तथा जिन प्रतिमाजीके उपयोगमें न आ सकै. जीवदया और ज्ञानभंडारमें उपयोगी हो सकता है.

१८ रात्रिके चौविहार पच्चख्खाण वालेको स्त्रीसेवनमें अधर

चुंबन किया जावै तो उस चुंबनसें पच्चख्खाण भंग होता है, अन्यथा नहीं होता है. ऐसा श्राद्धविधिमें कहा है.

१९ देसावगासिककी अंदर अपनी धारणा मुजब पूजन स्नानादिक और सामायिक किये जाय कुछ एकांत नहीं है.

२० श्री आर्यरक्षित सुरीनें अपने पिता (मुनी) को कटिदोरा बंधायेका श्री आवश्यक वृत्तिमें कहा है, वोही आचरणासें अबो भी बांधा जाता है.

२१ जिनमंदिरकी अंदरके गर्भगृह–गभारेकी द्वारशाखाके आठ हिस्से करकें उसमेंसें एक हिस्सेको बाद दूर कर देना, और सातवे हिस्सेके आठ हिस्से करकें उन आठवे हिस्सेके सातवे हिस्सेमें मूलनायकजीकी दृष्टि मिलानी–जोडनी चाहियें.

२२ पौषधादिक न किया होवै वैसा श्रावक जिनमंदिर या उपाश्रयमें प्रवेश करनेके वख्त निसिही कहवै; मगर निकलनेके वख्त आवस्सही न कहवै.

२३ बीज सहित नारियलमें एकही जीव होता है.

२४ हरे या सुखे सिंघोडामें दो जीव कहे हैं.

२५ पिछली दो घडी आदिशेष रात्रि होय तब पोषह लेना ये मूल विधि है और उस बाद पोषह लेना सो अपवाद स्थानक रूप है.

२६ प्रतिष्ठा–अंजनशलाकामें अंजनकी अंदर मधु शब्दसें अभी मिश्री कही जाती है वास्ते उसें डाली जाती है.

२७ जिसकों यंत्रमें पीषनेसें तेल न निकले और जिसकी दाल बनाते वख्त दानेके दो हिस्से हो जावै वैसे धान्यादिककों आचार्य द्विदल कहते हैं.

२८ जो नास्तिक—श्रद्धाहीन होकर उपधान वहनेसें निरपेक्ष होवे उसकों अनंत संसारी जानना ऐसा श्री महानिशीथजी सूत्रमें कहा है.

२९ चातुर्मासमें साधुकों रोगी साधुके औषधादिक सबबसें चार पांच योजन तक जाना कल्पता है; परंतु कार्य पूर्ण हुवे बाद एक क्षणभर भी वहां ठहरना नहीं कल्पता है.

३० पहिले दूसरे पक्षवालोंने प्रणाम करलिया तो यथावसर वर्त्तना.

३१ मिथ्यादृष्टिकों मिथ्यादृष्टि ऐसा समयकों अनुसरकें कहेना या नहीं भी कहना. यानि जैसा मोका हो वैसा ही कहना. अप्रिय कथन न कहना.

३२ चउशरण पयन्ना साधु और श्रावकोंकों काल वख्तमें भी गुणना—पढना कल्पता है. और अस्वाध्याय वाले दिनमें भी गुणना कल्पता है.

३३ चउशरणादिक चार पयन्ने आवश्यककी तरह प्रतिक्रमणादिकमें बहुत उपयोगी होनेसें उपधान योग वहन सिवाय भी परंपरासें पढाये जाते हैं, उससे वो परंपरा ही उसमें प्रमाणरूप है.

३४ खुल्ले मुंहसें बोलनेसें ईर्यावहीका दंड आता है.

३५ वांदणे देनेकी वख्त विधि संभालने के लिये खुल्ले मुंहसें बोलनेपरभी अप्रमादी होनेके सबबसें इर्यावहीका दंड नहीं आता है.

३६ जो साधु वस्त्रकों थीगडा—कारी देवे या कारी देनेवालेकी अनुमोदना करै उनकों बहुत दोषोंकी प्राप्ति होती है; सबब कि तीन थीगडे के उपरांत चौथा थीगडा देनेवाले मुनिकों श्री निशीथसूत्रजीके पहिले उद्देशमें प्रायश्चित्त कहा है.

३७ निरंतर बहुतसें जीव मुक्तिमें जावै उससें मुक्ति सकडी—संकोचवंत नही होती ? और संसार खाली नहीं होता है ? ऐसा पूंछनेकों यही उत्तर है कि, जैसें बद्दलके जलसें घीसी गइ हुइ पृथिवीकी बहुतसी मिट्टी समुद्रमें चली जाती है; तो भी उससें समुद्र पूरा न गया और पृथिवीपर खड्डे भी नहीं पडे, उसी तर वो भी समझना.

३८ छः महीनेसें ज्यादा केवल ज्ञानीपणेसे रह सके सो अंतमें केवली समुद्घात करै, उनसें ओछी—कम स्थितिवाले करै या न भी करै !

३९ राइ प्रमुख उत्कट द्रव्य मिश्रित होनेसें कांजिक वटकादिक वस्तुका काल मान वृद्ध परंपरासें दो रात्रि या बारह प्रहरादिका कहा जाता है.

४० जो श्रावक मरण समय पर्यंत निरतिचार सम्यक्त्व पालन करै तो वो वैमानिक देवही होता है. उस सिवाय दूसरी यथासंभव गतिमेंभी पैदा होवै या महाविदेह क्षेत्रादिकमें मनुष्यपणाभी पावे.

४१ आश्विन—कुवार महीनेके अस्वाध्याय दिनत्रय (बहुत

करके ८-९-१०) तथा तीन चौमासीके अस्वाध्याय दिनकी अंदर उपदेशमालादिक गिनी पढी जाती है.

४२ स्थापनाचार्यके समीपमें प्रतिक्रमण करनेके समय प्रथम स्थापनाचार्यकों और पीछे वृद्धानुक्रमसें दो चार या छः मुनियोंकों क्षामणा कि जाय दूसरे मुनि न होवे तो मात्र स्थापनाचार्यकोंही क्षामणा कि जावै.

४३ मेथी आंबिलमें कल्प सकै मेथी द्विदल है, और द्विदल आंबिलमें कल्पता है.

४४ सामायिके लेकर स्वाध्यायके आदेश मांगलीए बाद खमासण दे के इच्छाकारेण संदिसह भगवान् मुहपत्ति पडिलेहुं ?' ऐसा कहकर आदेशमांग मुंहपत्ति पडिलेहके पच्चखाण करना.

४५ साध्वीऐं खडी उंची वांचना लेवै.

४६ कुल (कोटा) १०८ पुरुषसें जानना.

४७ इस अवसर्पिणीमें ७ अभव्य प्रसिद्धिमें आये हैं.

४८ म्लेच्छ और मच्छीमारादि श्रावक हुए होवै तो उनकों जिनप्रतिमा पूजनेमें लाभ ही है. यदि शरीर और वस्त्रादिककी शुद्धता होवे तो प्रतिमाजीकी पूजा करनेमें मना है ऐसा लेख सुझमें नहीं आया !

४९ शिष्य अच्छी तरह चारित्र न पाल सके; तदपि गुरु मोहसें करके उनकों योग्य शिक्षा वचन न कहें तो गुरुकों पाप लगै. अन्यथा न लगै.

५० साध्वीकों वंदना करनेके वख्त श्रावक ' अणुज्जाणह

भगवती पसाउ करी, ऐसा पाठ कहेवै. ऐसी मर्यादा है.

५१ यदि एकाशने सह उपवास करे तो ' सूरे उग्गए चउत्थ भत्तं अभत्तठं पच्चक्खाइ ' ऐसा करनेकी अविच्छिन परंपरा मालुम होती है और छट्ठ प्रमुख पच्चक्खाणमें तो पारणेके दिन एकासना करै या न करै तो भी ' सुरे उग्गए छट्ठभत्तं अठ्ठमभत्तं ' ऐसा पाठ कहा जाता है ऐसे अक्षर श्रीकल्प सूत्र समाचारीजीमें हैं.

५२ श्रावक दिन संबंधी पोषह किये बाद भाव वृद्धि होनेसें रात्रि पोषह ग्रहण करै, तब पोषह सामायिक किये बाद ' सज्झाय करुं ? ' ये आदेश मांगनेसें ही काफी है. ' बहु वेल संदिसा हुं ? ' ये आदेश मांगनेका नियम नहीं. सबबके प्रभातके वख्त वो आदेश मांगलिया था.

५३ सौ योजनके उपरांतसें आया हुवा सिंधानोन वगैरः अचित्त होवै—दूसरे नहीं.

५४ श्रद्धा रहितपणेसें योग वहन किये विगर साधु या श्रावकोंको नवकारादिक गुणणे—पढनेमें भी अनंत संसारीपणा कहा जाता है. लेकीन शक्त्यादिके अभावसें योग वहनकी श्रद्धा पूर्वक नवकार मंत्रादि पढनेमें परित्त संसारी पणा ही संभवता है.

५५ केवल श्रावक प्रतिष्ठित और द्रव्यलिंगी के द्रव्यसें बनाया गया और दिगंबर चैत्यकों छोडकर बाकी के सब चैत्य, वंदन पूजनके लायक हैं. और उपर कहे गये चैत्य भी सुविहित मुनिके वासक्षेपसें वंदन पूजनके योग्य होते हैं.

५६ जल मार्गमें सो योजन और स्थल मार्गमें साठ योजन उपरांतसें आइ हुइ सचित्त वस्तु अचित्त हो जाती है.

५७ श्रावक पोसहमें धरके मनुष्योंकों पूंछ करके साधुकों अन्नादिक व्होरावे.

५८ आलोयण संबंधी स्वाध्याय इरियावही पूर्वक सूझ सके. कभी भूल गये होवे तो फिरके—पुनः उपयोग करना.

५९ छठ्ठ करनेकी इच्छावाला यदि पहिले दिन एक उपवासका पच्चख्खाण करे तो दूसरे दिनभी एक उपवासका पच्चख्खाण करे. उसके बदलेमें यदि छठ्ठका करे तो उनकों दूसरे दिन भी उपवास करना युक्त है. ऐसी समाचारी है.

६० केवली समुद्धात किये बाद अंतर्मुहूर्त तक संसारमें रहते हैं, पीठफलकादि गृहस्थकों पीछे—वापिस सोंपकर पीछे शैलेशीकरण करते हैं, क्योंकि अंतर्मुहूर्त आयु शेष रहता है तभी ही समुद्घात करने लगते है.

६१ योगमें रात्रिके वख्त अणाहारी वस्तु लेना न कल्पे. (संघट्टेका अभाव होनेसे न कल्पै.)

६२ योग उपधान और व्रत उच्चरने होवे तो उसमें दिन शुद्धि देखनी महिना वर्ष वगैरः देखनेकी कुछ जरुरत नहीं.

यह प्रश्नोका सार उक्त ग्रंथ वांचनेकी वख्तमें किये गइ यादी मुजब लिखा गया हें, उनमें यदि संदेह पडे तो उक्त ग्रंथोसें उसका निर्णय कर लेना.

समाप्त.

પંચ પરમેષ્ઠિ જાપ યંત્ર.

આ યંત્રમાં એવી ગોઠવણ કરવામાં આવી છે કે વચ્ચે લખેલ 'અ' થી જુદી જુદી '૨૭૦' રીતે **'અર્હત સિદ્ધ આચાર્યઉપાધ્યાય સાધુભ્યો નમઃ'** એ જાપ વાંચી શકાશે. રમુજ સાથે પંચ પરમેષ્ઠીના જાપનું આ અનુપમ સાધન છે.

મૌક્તિક.

મઃ	ન	ભ્યો	ધુ	સા	ય	ધ્યા	પા	ઉ	ર્ય	ઉ	પા	ધ્યા	ય	સા	ધુ	ભ્યો	ન	મઃ
ન	ભ્યો	ધુ	સા	ય	ધ્યા	પા	ઉ	ર્ય	ચા	ર્ય	ઉ	પા	ધ્યા	ય	સા	ધુ	ભ્યો	ન
ભ્યો	ધુ	સા	ય	ધ્યા	પા	ઉ	ર્ય	ચા	આ	ચા	ર્ય	ઉ	પા	ધ્યા	ય	સા	ધુ	ભ્યો
ધુ	સા	ય	ધ્યા	પા	ઉ	ર્ય	ચા	આ	દ્ધ	આ	ચા	ર્ય	ઉ	પા	ધ્યા	ય	સા	ધુ
સા	ય	ધ્યા	પા	ઉ	ર્ય	ચા	આ	દ્ધ	સિ	દ્ધ	આ	ચા	ર્ય	ઉ	પા	ધ્યા	ય	સા
ય	ધ્યા	પા	ઉ	ર્ય	ચા	આ	દ્ધ	સિ	ત	સિ	દ્ધ	આ	ચા	ર્ય	ઉ	પા	ધ્યા	ય
ધ્યા	પા	ઉ	ર્ય	ચા	આ	દ્ધ	સિ	ત	ર્હ	ત	સિ	દ્ધ	આ	ચા	ર્ય	ઉ	પા	ધ્યા
પા	ઉ	ર્ય	ચા	આ	દ્ધ	સિ	ત	ર્હ	**અ**	ર્હ	ત	સિ	દ્ધ	આ	ચા	ર્ય	ઉ	પા
ધ્યા	પા	ઉ	ર્ય	ચા	આ	દ્ધ	સિ	ત	ર્હ	ત	સિ	દ્ધ	આ	ચા	ર્ય	ઉ	પા	ધ્યા
ય	ધ્યા	પા	ઉ	ર્ય	ચા	આ	દ્ધ	સિ	ત	સિ	દ્ધ	આ	ચા	ર્ય	ઉ	પા	ધ્યા	ય
સા	ય	ધ્યા	પા	ઉ	ર્ય	ચા	આ	દ્ધ	સિ	દ્ધ	આ	ચા	ર્ય	ઉ	પા	ધ્યા	ય	સા
ધુ	સા	ય	ધ્યા	પા	ઉ	ર્ય	ચા	આ	દ્ધ	આ	ચા	ર્ય	ઉ	પા	ધ્યા	ય	સા	ધુ
ભ્યો	ધુ	સા	ય	ધ્યા	પા	ઉ	ર્ય	ચા	આ	ચા	ર્ય	ઉ	પા	ધ્યા	ય	સા	ધુ	ભ્યો
ન	ભ્યો	દુ	સા	ય	ધ્યા	પા	ઉ	ર્ય	ચા	ર્ય	ઉ	પા	ધ્યા	ય	સા	ધુ	ભ્યો	ન
મઃ	ન	ભ્યો	ધુ	સા	ય	ધ્યા	પા	ઉ	ય	ઉ	પા	ધ્યા	ય	સા	ધુ	ભ્યો	ન	મઃ